ISSN-2582-6530

अंक: 3-4, जनवरी- दिसंबर 2021 (संयुक्त अंक)

विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका

कंचनजंघा

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का साझा उपक्रम

संपादक : प्रदीप त्रिपाठी

ISSN: 2582-6530

कंचनजंघा : विशेषज्ञ समीक्षित पत्रिका

कंचनजंघा

भाषा, साहित्य एवं संस्कृति का साझा उपक्रम

वर्ष: 02, अंक: 03-04, जनवरी- दिसंबर, 2021 (संयुक्त अंक)

संपादक

प्रदीप त्रिपाठी

पत्राचार का पता

डॉ. प्रदीप त्रिपाठी (संपादक)
ओम साईं कुंज, मंदिर रोड
नीयर रंगीत गर्ल्स हॉस्टल, 06 माइल, गंगटोक
सिक्किम, पिन कोड : 737102

संपर्क : +91 - 6294913900 ईमेल : kanchanjanghapatrika@gmail.com

आवरण और संयोजन : कुमार गौरव एवं कुँवर रवींद्र

वेबसाइट : www.kanchanjangha.in

ISSN: 2582-6530

परामर्श मंडल

रमन शांडिल्य ramanshandilya1943@gmail.com	**राजेश जोशी** rajesh.isliye@gmail.com
देवराज dr4devraj@gmail.com	**शिवमूर्ति** shivmurti.shabad@gmail.com
श्रीप्रकाश मिश्र spm1950@rediffmail.com	**अनामिका** poetryanamika@gmail.com
तेजेन्द्र शर्मा tejinders@live.com	**किरन हजारिका** hazarikakiran68@gmail.com
ओम जी उपाध्याय omjee25@gmail.com	**निर्मला पुतुल** bajateshabd@gmail.com
हरिश्चंद्र मिश्र profharishchandramishra@gmail.com	**वीरेन्द्र परमार** bkscgwb@gmail.com
ए. एस. चंदेल nehushgmzu07@gmail.com	**अनिल राय** anilraigkpu@gmail.com

संपादक मंडल/ समीक्षा समिति

प्रो. भरत प्रसाद
पूर्वोत्तर पर्वतीय विश्वविद्यालय, शिलांग
deshdhar@gmail.com

प्रो. संजय कुमार
मिजोरम विश्वविद्यालय, आइज़ोल, मिजोरम
sanjaykumarmzu@gmail.com

प्रो. जय कौशल
असम विश्वविद्यालय (दीफू परिसर) असम
jaikaushalaudc@gmail.com

प्रो. ब्रज रतन जोशी
लेखक, संपा. (मधुमती), अनुवादक एवं जल-अध्येता
drjoshibr@gmail.com

डॉ. अखिलेश शंखधर
मणिपुर विश्वविद्यालय, मणिपुर
shankhdharak@gmail.com

डॉ. मिलनरानी जमातिया
त्रिपुरा विश्वविद्यालय, त्रिपुरा
milanrani08@gmail.com

डॉ. दीपक पांडेय
सहायक निदेशक, केंद्रीय हिंदी निदेशालय, नई दिल्ली
dkp410@gmail.com

डॉ. आशीष कंधवे
भारतीय सांस्कृतिक संबंध परिषद, विदेश मंत्रालय, भा. स.
vhspindia@gmail.com

डॉ. रूपेश कुमार सिंह
महात्मा गांधी अंतरराष्ट्रीय हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा
dr.roopeshsingh@gmail.com

डॉ. चुकी भूटिया
सिक्किम विश्वविद्यालय, गंगटोक, सिक्किम
cbhutia01@cus.ac.in

डॉ. गोविंद प्रसाद वर्मा
महात्मा गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, मोतिहारी, बिहार
govindvillage@gmail.com

डॉ. अनुज कुमार
नागालैंड विश्वविद्यालय, कोहिमा, नागालैंड
anujkumarg@gmail.com

डॉ. जमुना बीनी तादर
राजीव गांधी केंद्रीय विश्वविद्यालय, ईटानगर, (अ. प्र)
jamunabini@gmail.com

कुँवर रवींद्र
कवि एवं कला संपादक
kunwar.ravindra@gmail.com

डॉ. पंकज कुमार सिंह
अध्येता- गांधी चिंतन एवं तकनीकी विशेषज्ञ
gandhikhadi@gmail.com

डॉ. राहुल
अध्येता- जेंडर स्टडीज़ एवं मीडिया
rahul.or.nishant@gmail.com

डॉ. कुमार गौरव
झारखंड केंद्रीय विश्वविद्यालय, झारखंड
kumar.mishra00@gmail.com

कुमार मंगलम
इंदिरा गांधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय, नई दिल्ली
mangalam1509@gmail.com

आशीष कुमार
संपादक, सृजन समय, वर्धा
baajve@gmail.com

डॉ. अखिल मिश्र
DDU, गोरखपुर
ईमेल – akhilmishra777@gmail.com

डॉ. दीपक कुमार
गोरूबथान गवर्नमेंट कॉलेज, कालिमपोंग, पश्चिम बंगाल
deep.presi@gmail.com

डॉ. अनुशब्द
तेजपुर विश्वविद्यालय, तेजपुर, असम
anushabda@gmail.com

 ISSN: 2582-6530

कंचनजंघा

वर्ष: 02, अंक: 03-04, जनवरी- दिसंबर, 2021 (संयुक्त अंक)

इस अंक में...

संपादकीय

बाकी सब इत्यादि थे...

लोक कथाएँ

अरुणाचल प्रदेश की गालो लोककथा: आबो तानी और मोपिन तुम्बम रीबा 'लिली'

मिजो लोककथा: माऊरुआङी डॉ. कैथी रौह्लूंपुई (अनुवादक)

लेख

घातक इच्छा की अवधारणा: मिज़ो और अंग्रेजी की साहित्यिक कृतियों का तुलनात्मक विश्लेषण अजेय झा

नेपाली साहित्य में आयामिक आंदोलन बिर्ख खडका डुवर्सेली

हिंदी के अनुष्ठान में अर्घ्य बनी एक पत्रिका : अरुण नागरी देवराज

मणिपुरी लोकगीत : परंपरा एवं प्रयोग डॉ. एस. लनचेनबा मीतै

बांग्ला का बाउल और भाटियाली लोक संगीत जमुना देबनाथ

त्रिपुरा की लोक संस्कृति : चरक पूजा और गाजन नृत्य शुभ्रांशु दाम

लोक-साहित्य के बरास्ते अरुणाचल प्रदेश की अकथ कहानी डॉ. राजीव रंजन प्रसाद

पूर्वोत्तर भारत का हिंदी सिनेमा अतुल वैभव

कविताएं

रवि रोदन की दो कविताएं

कविता कर्मकार की तीन कविताएं

भीम ठटाल की तीन कविताएं

मनीषा झा की चार कविताएं

आईनाम इरिंग की चार कविताएं

धनंजय मल्लिक की तीन कविताएं

अनूदित रचनाएँ

सुधा एम. राई की चार कविताएँ (नेपाली से हिंदी) अनुवादक: सुवास दीपक
ब्रजेन्द्र कुमार ब्रह्मा की तीन कविताएं (बोड़ो से हिंदी) अनुवादक: सूर्जलेखा ब्रह्मा
हरेकृष्ण डेका की तीन कविताएं (असमिया से हिंदी) अनुवादक: विनोद रिंगानिया

पूर्वोत्तर भारत का पौराणिक क्षितिज

भारत-नेपाल की सांस्कृतिक निधि है 'रामकथा' (नेपाली से हिंदी) मूल : डॉ. गोकुल सिन्हा
अनुवाद: डॉ. नम्रता चतुर्वेदी

कहानियाँ

अज्ञात यात्रा उषा शर्मा
सुलह रीता सिंह

पुस्तक समीक्षा

अदहन में उबलती स्त्री का सच है 'मिनाम' डॉ. महेश सिंह

संपादकीय

बाकी सब इत्यादि थे...[1]

आजादी के पचहत्तर वर्ष पूरे होने पर हम इसे अमृत महोत्सव के रूप में स्मरण कर रहे हैं। स्वाधीनता संग्राम की अहमियत को समझने के क्रम में बीते पचहत्तर वर्षों में हमने प्रत्येक क्षेत्रों में गुणात्मक स्तर पर क्या प्रगति की है, इसका आत्मालोचन करना कहीं न कहीं इस महोत्सव का ध्येय है। सही मायने देखा जाय तो इस महोत्सव की सार्थकता भी इसी बात में निहित है। हम जानते हैं कि भाषा, साहित्य एवं सांस्कृतिक समृद्धि के कारण पूर्वोत्तर भारत अपनी विशिष्ट पहचान रखता है। यह विसंगति ही है कि साहित्यिक, सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक स्तर पर इतनी समृद्ध विरासत होने के बावजूद भारत का यह अभिन्न हिस्सा लिखित तौर पर इतिहास में उस रूप में दर्ज नहीं हो पाया, जितना होना चाहिए था।

स्वाधीनता आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत की भूमिका बहुत ही अहम रही है। ध्यान देने योग्य है, स्वाधीनता संग्राम की महागाथाओं के जयघोष का आर्तनाद आज भी महात्मा गांधी, सुभाष चंद्र बोस, चंद्रशेखर आजाद, राजगुरु, भगत सिंह एवं सुखदेव इत्यादि तक आते-आते समाप्त हो जाता है। क्या कभी आपने इन जयघोषों में पूर्वोत्तर भारत के किसी सेनानी का नाम सुना है? शायद नहीं। पूर्वोत्तर भारत के सभी राज्य आजादी के संग्राम में समान रूप से सहभागी रहे हैं और इसका एक समृद्ध इतिहास रहा है। यह नाम इतिहासकारों की नजरों से कैसे वंचित रह गए, यह हमारे लिए चिंता और चिंतन का विषय है। इन महत्त्वपूर्ण नामों को 'इत्यादि' शब्द के भीतर समेट देना, कहीं न कहीं इतिहास को प्रश्नांकित करता है। यहाँ राजेश जोशी की कविता 'इत्यादि' सायास स्मरण हो आती है, वे लिखते हैं- "इत्यादि हर जगह शामिल थे पर उनके नाम कहीं भी/ शामिल नहीं हो पाते थे।" निश्चित रूप से इसके पीछे के कारकों का अन्वेषण करना, अनुसंधान के लिए एक महत्त्वपूर्ण विषय-क्षेत्र है।

वर्ष 2020 में प्रकाशन विभाग, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार के सहयोग से प्रकाशित स्वर्ण अनिल की पुस्तक 'पूर्वोत्तर भारत के स्वातंत्र्य वीर' उत्तर पूर्व के सेनानियों को समझने के लिए महत्त्वपूर्ण है। इस पुस्तक में डॉ. स्वर्ण अनिल ने पूर्वोत्तर भारत के 22 स्वतंत्रता सेनानियों की चर्चा की है। इस बीच पूर्वोत्तर भारत के सेनानियों को लेकर कुछ और भी महत्त्वपूर्ण अनुसंधान सामने आए हैं। हाल ही में सिक्किम में अध्यापन कार्य से संबद्ध डॉ. बिनोद भट्टराई और राजेन उपाध्याय ने

[1] संपादकीय का शीर्षक वरिष्ठ कवि राजेश जोशी की कविता 'इत्यादि' से उद्धृत है।

अपने अद्यतन अनुसंधान के जरिये सिक्किम के महत्त्वपूर्ण स्वतंत्रता सेनानी त्रिलोचन पोखरेल की विस्तृत चर्चा की है। यद्यपि छिटफुट तौर पर तो पूर्वोत्तर भारत के सेनानियों पर तो कई लेख उपलब्ध हैं, लेकिन स्वतंत्र रूप से मौलिक और प्रामाणिक कार्यों का आज भी अभाव है।

स्वर्ण अनिल के हवाले से कहें तो "भारत छोड़ो आंदोलन में पूर्वोत्तर के स्वतंत्रता सेनानियों की एक लंबी सूची है, जिसमें एक ओर 17 वर्षीय कनक लता बरुआ हैं तो दूसरी ओर 60 वर्षीय भोगेश्वरी फुकनानी और दोनों ने राष्ट्रीय ध्वज फहराने के लिए अपना बलिदान दे दिया। पुत्र मोह और अपने प्राणों का मोह छोड़कर मातृभूमि का चयन करने वाली मिजो रानी रौपुइलीयानी ब्रिटिश अफसरों की बर्बरता को अपने बेटे के साथ सहते हुए शहीद हुई, पर परतंत्रता नहीं स्वीकारी।" इसी क्रम में पूर्वोत्तर भारत के अलग-अलग क्षेत्रों से कुछ और भी नाम मसलन रजनी देवी, छमू देवी, ओंगबी, हेलेन लेप्चा एवं मोजे रीबा आदि का नाम प्रमुखता से लिया जा सकता है।

गौरतलब है, आजादी की लड़ाई में महिलाओं की भूमिका बहुत ही अहम रही है, लेकिन इतिहास के पन्नों से उनके नाम गायब हैं। स्वाधीनता आंदोलन के ऐतिहासिक अध्ययन के क्रम में यदि हम पूर्वोत्तर भारत के इतिहास को देखें तो इसमें पुरुषों और महिलाओं की समान भागीदारी रही है। एक प्रकार से देखें तो पूर्वोत्तर भारत का इतिहास स्वाधीनता आंदोलन में महिलाओं के हस्तक्षेप और समर्पण का मुकम्मल गवाह है।

इस आंदोलन में पूर्वोत्तर भारत के त्रिपुरा से जितेन पाल, शचिंद्र पाल सिंह, वीरेंद्र दत्त, वंशी ठाकुर, प्रभात राय, देव प्रसाद, सेनगुप्त, अब्दुल गफूर, यतींद्रनाथ आदि का नाम उल्लेखनीय है। 1930 के भारत छोड़ो आंदोलन में असम राज्य की भूमिका को नजरंदाज नहीं किया जा सकता। इनमें हेमराज बारदलै, कलाई कोछ, हेमराज बरा, तिलक डेका, लक्ष्मी हाजरिका, बलोसूथ, राउतराम कछारी, मदन बर्मन, गुणाभि पाटर, मुकुंद काकति तथा तिलेश्वरी बरुआ आदि प्रमुख रूप से शामिल थे। अरुणाचल प्रदेश में मिसमी संगठन का नेतृत्व कर रहे ताजी मिदेरिन ने इस संग्राम को गति दी। इसी प्रदेश में बापू नाम से ख़्यातिलब्ध मीजेरीबा संत की भूमिका अत्यंत उल्लेखनीय है। मणिपुर से टिकेन्द्रजीत वीर सिंह, पाओना ब्रजवासी, वीर बालक चिंलेनसना एवं रानी मां गाइदिन्ल्यू के समर्पण को आज भी लोग कृतज्ञता के साथ स्मरण करते हैं। प्रत्येक वर्ष 23 अप्रैल को खोंगजोम दिवस के रूप में यहाँ के लोग इन शूरवीरों को अत्यंत श्रद्धा के साथ याद करते हैं। इस आंदोलन में नागा जनजाति समूहों का योगदान स्मरणीय है। अपने त्याग और बलिदान के लिए याद किए जाने वालों में वीरों में जादोनांग की अहमियत को पूर्वोत्तर भारत का समाज आज भी आदर के साथ रेखांकित करता है। निश्चित रूप से इतिहास के पृष्ठों पर आज इन सेनानियों की उपस्थिति एवं महत्त्व को विस्तृत रूप में दर्ज करने की आवश्यकता है।

कोविड महामारी की भयावहता और उसके प्रभाव से सामाजिक स्तर पर बड़ी क्षति हुई है। कई जगहें हमेशा के लिए रिक्त हो गईं, जिनकी भरपाई कभी नहीं हो सकती। इन्हीं कारणों से कंचनजंघा पत्रिका का यह अंक विलंब से प्रकाशित हो रहा है, जिसके लिए हमें खेद है। पाठकों एवं लेखकों की ओर से हमें पूर्वोत्तर भारत से बाहर की भी अधिकाधिक सामग्री प्राप्त होती है, लेकिन कंचनजंघा पत्रिका के उद्देश्यों एवं इसकी सीमाओं को ध्यान में रखते हुए हम पूर्वोत्तर भारत से इतर सामग्री का प्रकाशन बहुत कम कर पाते हैं, इसका हमें खेद है। इस अंक की लगभग सामग्री उत्तर पूर्व की रचनाशीलता पर केंद्रित है। इस अंक के आलेख खंड में कई महत्त्वपूर्ण लेख हैं। अरुण नागरी पत्रिका पर केंद्रित देवराज का लेख अरुणाचल की हिंदी पत्रिकारिता और रमण शंडिल्य के साहित्यिक हस्तक्षेप को प्रमुखता से रेखांकित करता है। नेपाली साहित्य का आयामिक आंदोलन हिंदी पाठकों के लिए अनूठी सामग्री है। आगामी अंकों में हम अनुवाद खंड को और भी समृद्ध करने का प्रयास करेंगे। इस अंक के प्रत्येक खंड में पूर्वोत्तर भारत के अलग-अलग हिस्सों से विधागत विविधता के साथ सामग्रियों का समायोजन करने का प्रयास किया गया है। विश्वास है, आपको यह अंक पसंद आएगा। इसी आशा के साथ...

(संपादक)

आबो तानी और मोपिन

अरुणाचल प्रदेश की गालो लोककथा

तुम्बम रीबा 'लिली'

हमारे अरुणाचल प्रदेश के गालो जनजातीय समाज में ऐसी मान्यता है कि प्राचीन काल में जब इस धरती पर सृष्टि की शुरुआत हुई थी तब इस धरती पर जितने भी जीव-जंतु आदि थे, वे एक दूसरे की भाषा समझ सकते थे। यहाँ तक कि हमारे आदिम मानव आबो तानी भी उन सभी से वार्तालाप कर सकते थे और वे भी आबो तानी से बातचीत किया करते थे। उस वक़्त इस धरती पर इंसान के रूप में सिर्फ आबो तानी का ही जन्म हुआ था और कोई इंसान पैदा नहीं हुआ था यहाँ। आबो तानी की ही ज़िंदगी से संबंधित एक घटना के कारण हमारे गालो जनजाति के प्रसिद्ध त्योहार 'मोपिन' की शुरुआत हुई।

एक बार नदी किनारे घूमते-टहलते हुए आबो तानी को 'तोदे-रेने' नामक एक छोटी सी चिड़िया मिली जिसने आबो तानी को यह गोपनीय खबर सुनाई कि 'ताकार-ताजी' नामक अन्य लोक के जीव एक 'दोर्री-पानाम' नामक पारम्परिक विवाह (न्यिदा) समारोह मनाने जा रहे हैं जो बहुत ही भव्य होगा और उसमें दस मिथुनों की बलि चढ़ाई जायेगी। उस समारोह में सभी जीव-जंतुओं को आमंत्रित किया गया था सिवाय आबो तानी के। अब आबो तानी को नाराजगी के साथ हैरत भी हुई कि एक तो उसे आमंत्रित नहीं किया और ऊपर से जब वह धरती के प्रथम इंसान हैं तो धरती के सभी जीव-जंतुओ की मल्कियत उसकी ही हुई। उसके यानी कि मालिक की अनुमति के बिना यह 'ताकार-ताजी' किस तरह से अपने न्यिदा / विवाह समारोह में उसके मिथुनों की बलि चढ़ाने की योजना बना रहे हैं? उसकी हिम्मत कैसे हुई ? आखिर माज़रा क्या है ? यह जानने के लिये आबो तानी ने ठान ली कि वह ताकार ताजी के लोक तक जाकर पता लगाकर ही रहेंगे, और वह चल पड़े।

वहाँ पहुँचकर उन्होंने देखा कि दोर्री-पानाम रिवाज़ के लिये खूब ज़ोर-शोर से तैयारियाँ चल रही थी। जिसमें 'कोजाक' नामक छोटी ख़रगोश और 'पासे-रोदो' नामक चूहा को पुजारी और उसके साथ-साथ मंत्रो के उच्चारण के लिये पुजारी के चेले के रूप में नियुक्त किया हुआ था जिसे हमारी गालो बोली में 'न्यिबो और बो' कहते हैं। पर इस विधि के दौरान अपनी आदतानुसार दोनों के बीच लड़ाई छिड़ गई और दोनों पवित्र मंत्रोच्चारण की जगह एक दूसरे को गंदी-गंदी गालियाँ देने में लग गए। जिसकी वज़ह से उस विधि में व्यवधान पड़ गया और दोनों की जंग इतनी बढ़ गई कि दोनों अपने कार्य अधूरा त्यागकर आपस में लड़ते हुए वहाँ से निकल गये। अब इस कार्य के लिये आबो तानी के सिवाय वहाँ कोई भी अन्य उचित पात्र मौज़ूद नहीं देख ताकार ताजी ने मज़बूरन उन्हीं से आग्रह किया कि वह 'न्यिबो' अर्थात पुजारी बनकर उस रस्म को निभा दे। आबो तानी एक शर्त पर उस ज़िम्मेदारी को निभाने के लिये राज़ी हो गये कि उस रस्म के दौरान उनके सामने

उन सभी देवात्माओं की प्रतिमा उनके सामने रख दें जिसकी उस रस्म के दौरान मंत्रोच्चारण करके वंदना की जाती है। आबो तानी ने उन देवात्माओं के नाम गिनाए मुर्दोम, पोन्यो, इसी-पुक्सी, मोन्यी-तागे, पापुम-पासाक, गुई-पासाक, गुई-गाम्यो आदि की प्रतिमाएँ सज़ाई जाये जिसकी उपासना करते हुए ताकार ताजी के रिंदु-कुम्दु अर्थात विवाह सम्बंधित तमाम रीति-रिवाजों को निभाने के लिये आबो तानी अपनी माता को आमंत्रित कर उनके ही द्वारा प्रमुख विधि को सम्पन्न कराया जायेगा, ऐसा निर्णय लिया। दरअसल, इसके पीछे आबो तानी की ही चाल थी कि वह इस समारोह में बलि देने जा रहे मिथुनों को ताकार ताजी से हथिया ले।

अब आबो तानी की ही योजनानुसार सब कुछ चल रहा था। ताकार ताजी ने आबो तानी की माता को लाने के लिये 'केको-पाई' नामक गिलहरी को कार्य सौंपा। चूँकि आबो तानी की माता को गुज़रे अर्सो बीत गया था इसलिये आबो तानी ने एक चाल चली और एक डण्डे पर कपड़े लपेटकर औरत जैसा रूप बनाया और उसे नदी के बीचो-बीच एक पत्थर के सहारे ऐसे रख दिया कि दूर से वह किसी स्त्री जैसी ही दिखे। उन्होंने केको पाई से कह दिया कि उसकी माता मूक और मौन है अर्थात वह बोल और सुन नहीं सकती अत: उसे 'मुर्ते-कोमो 'अर्थात एक बाँस के डण्डे के द्वारा कोंचते हुए जगाना और निर्देश देना पड़ता है इसलिये वह भी ऐसा ही करे। केको-पाई चल दिये और उन्होंने आबो तानी के निर्देशानुसार ज्यों ही बाँस के डण्डे से कोंचते हुए उसे जगाना चाहा, दुर्भाग्यवश आबो तानी की माता रूपी डण्डे से बंधी कपड़ों की बनी हुई वह पुतली जो नदी के बीचो-बीच खड़ी थी, वह गिर गई और नदी की तेज़ धाराओं में बह गई। आबो तानी की चाल से अनजान केको- पाई बहुत ही दुखी हो गये कि उनके ही कारण आबो तानी की माता नदी में डूब गई वह रोता हुआ गये और आबो तानी से माफ़ी माँगते हुए रोने लगे। अपनी योजनानुसार सब कुछ होते देख आबो तानी मन ही मन बहुत प्रसन्न थे पर झूठी नाराज़गी जताते हुए उन्होंने ताकार-ताज़ी को ही अपनी माता की मौत का ज़िम्मेदार मानते हुए अत्यंत ही रौद्र रूप दिखाने लगे। ताकार ताज़ी ने अपनी गलती मानते हुए आबो तानी से माफ़ी माँगी पर आबो तानी नहीं माने और वे ताकार ताज़ी से दस मिथुन अपनी माता की मौत के बदले जुर्माने के तौर पर वसूलने के लिये अड़े रहे। अंत में काफी मनुहार के बाद ताकार ताज़ी ने आबो तानी को दस से नौ मिथुनों के लिये राज़ी करा लिया और उन्होंने अपनी न्यिदा के नौ मिथुन आबो तानी के नाम कर दिया। अब बची सिर्फ एक मिथुन उसी से ताकार ताज़ी के विवाह रस्म की तैयारी में सब लग गये। अब इतने भव्य विवाह में अपनी शानो-शौक़त के लिये ताकार ताज़ी ने दुनिया के सभी जीव-जंतुओं को तो आमंत्रित कर लिया अब एक ही मिथुन से सब बारातियों और अतिथियों को कैसे खिलाया जाये ? इसलिये उन्होंने उस एक मिथुन के साथ 'पासे दोन्गों-रोदो दोन्गों' यानी कि पाँच-पाँच छोटी चुहियों की भी बलि दे डाली पर वह भी ऊँट के मुंह में ज़ीरा साबित हुई। इसलिए, मेज़बान कोम्ची' अर्थात टिड्डी जिसे ताकार ताज़ी ने मेहमानों की आवभगत का कार्य सौंपा उसने अपने मालिक की इज़्ज़त बचाने के लिये मेज़बानों के लिये 'दुम्पो 'नामक मिथुन की खोपड़ी का पकवान बनाते समय मांस कम होने की वज़ह से अपनी ही खोपड़ी काटकर उसमें मिला दी। और इसी तरह 'हौज़ी' यानी कि गिरगिट जिसे बलि दी गई मिथुन के दिल और जिगर का विशेष भोजन तैयार करना था, उसने जब देखा कि मिथुन के दिल का मांस कम पड़ रहा है तो उसने खुद अपना ही दिल निकालकर उसमें मिलाकर पका दिया। ताकार ताज़ी के न्यिदा/विवाह समारोह के लिये की गई इन्हीं कुर्बानियों

की वज़ह से यह कहा जाता है कि आज भी टिड्डी का सिर गायब है और गिरगिट बिना दिल-दिमाग और होशो-हवाश के जहाँ-तहाँ विचरण करते हुए घुमते फिरते हैं।

उस भव्य समारोह में सभी को हर तरह के कार्य सौंपे गये थे पर किसी ने भी अपना कार्य सही सलामत नहीं निभाया, 'कोचे' यानी कि गिलहरी और 'पिम' यानी कि बाज़ पक्षी को बारातियों को भोजन के दौरान नमक बाँटने का कार्यभार सौंपा गया था पर अपनी आदतानुसार वह दोनों एक दूसरे पर हुक्म चलाते हुए यहाँ भी लड़ने लग गये और अंत में पिम ने उस नमक की पोटली को कोचे के हाथ से छीनकर ले लिया और उड़कर पास के याबी पेड़ पर चढ़कर बैठ गई। ऐसा कहा जाता है कि कोचे गिलहरी आज भी अपने हिस्से के नमक की तलाश में याबी पेड़ के तने से लगी छाल को चाटते फिरते हैं।

इसी प्रकार 'दुम्पु' (हिरण) और 'किपू' (कुत्ते) को 'आग्या- पोसुम' (अर्थात् खमीर के रूप में तैयार किया गया सोया) और 'लोते-पोसुम' अर्थात मिथुन की हड्डियों की पोटली को बाँटने का कार्यभार सौंपा गया था पर दोनों में कुछ नोक झोंक चली जिसमें दुम्पु ने किपू से कहा- "मुझे ऐसा क्यों लगता है जैसे तुम मुझे अपनी त्यौरियाँ चढ़ाकर ही देखते हो ? क्या तेरी सूरत ही ऐसी है ?" उस पर जवाब में किपू ने कहा- "और तेरे गाल इतने पिचके हुए क्यों हैं? और तेरे चेहरे पर गालों की हड्डियाँ इतनी उभरी हुई क्यों है ? क्या तेरी भी सूरत ऐसी ही है ?"

यह सुनना था कि दोनों एक दूसरे से भिड़ गये और दुम्पु ने आग्या पोसुम और लोते पोसुम को लात मारकर हवा में उछलकर फेंक दिया और भाग निकले। गुस्से में आकर किपू उसके पीछे लग गये और उसके पीछे-पीछे दोनों को रोकने की नाक़ाम कोशिश में आबो तानी भी दौड़ते चले गये। भागते-भागते दुम्पु 'कुने लाम्ने' नामक एक पेड़ के पास अपनी मदद की गुहार लगाते हुए गये मगर वहाँ उसे निराशा ही हाथ लगी। इस तरह भागते-भागते वे 'दिगो-पीने 'आम्पीर-दोलू' पहुँच गये। जो कि 'मोपिन-मोजी' का साम्राज्य था। वहाँ भी इसी भागम-भाग के कारण उन्होंने कुछ शुभ रस्म और विधि निभा रहे वहाँ के लोगों के पवित्र रस्मों में व्यवधान डालकर उनकी पूजा भंग कर दिया, जिसके कारण वहाँ के लोग अत्यंत ही क्रोधित हो गये और उन उपद्रवियों यानी कि आबो तानी और उनके कुत्ते किपू को बंदी बना लिया पर दुम्पु को किन्हीं वज़हों से बक्श दिया।

कुछ दिनों तक आम्पीर दोलू में क़ैद रहने के बाद आबो तानी ने वहाँ से रिहा होने के लिये एक चाल चली, उन्होंने एक चुहिया को मार दिया, जब वह चुहिया बदबू मारने लगी तो मोपिन आने यानी कि मोपिन देवी के पास जाकर यह गीत गाते हुए उसे सुनाया- "तानी बेदू सी तानी ओपो सी/बेदू नाम्सी यिबि येके/ओपो नम्बा ए रेया येकू।/न्गो तानी पुम्सी गिबोलो/न्गो तानी रोमो बे हिब्बोलो/न्गोम योगो बे गोसा देदो ये ? /न्गोम होबो बे गोसा देदो ये?" अर्थात- "मैं तानी, मेरा शरीर और आत्मा/अब बदबू मारने लगी है /और अब सड़ने भी लगी है/अगर इस तरह मैं मर गया तो /मैं तानी इस तरह से खत्म हो गया तो /क्या तुम फिर से मुझे जन्म दे सकोगे ? /क्या तुम मेरी कमी की पूर्ति कर सकोगे?"

आबो तानी के इस मार्मिक गीत को सुनकर मोपिन आने को एहसास हुआ कि इस तरह जबरन क़ैद करके रखने से कहीं उसकी मौत न हो जाए और उसकी मौत का ज़िम्मेदार कहीं उसे ही न ठहरा दिया जाय। दिगो-यामो लोक के सभी निवासियों ने भी जब आबो तानी के इस गीत को सुना तो सब के सब डर गये और एकमत होकर सबने माना कि आबो तानी अब बहुत ही बदबू मारने लगी है शायद उसकी मौत होने वाली है इसलिये उसे अब जल्दी से क़ैद से आज़ाद कर दिया जाये। अत: मोपिन आने ने दियी-तामी नामक देवी को आज्ञा दी कि अब आबो तानी को रिहा कर दिया जाये। इस तरह आबो तानी अपनी सूझ-बूझ से रिहा हो गये पर उन्होंने देखा कि दिगो-यामो लोक यानी कि मोपिन लोक में खाने पीने की कोई कमी नहीं है, चारो ओर धन-धान्य से लोग बाग खुशहाल है। इसलिये उन्होंने मोपिन देवी से अपने लोक के लिये भी ऐसी ही खुशहाली और धन-धान्य की माँग की। मोपिन देवी ने आबो तानी को अनाज़ और मकई के कुछ बीज़ दे दिये जिसे आबो तानी ने अपने कुत्ते किपू के कानो में भर दिया। इस तरह वे इस धरती पर लौट आए और उन्होंने उन बीजों को अज्ञानतावश एक बंज़र ज़मीन में बो दिया जिसका नाम है 'अबिन-बिंदू' और 'पोको-लोतो'। लेकिन उन बीजों को बोते ही वन के चिड़ियों ने चुग लिया और परिणाम स्वरूप वे बीज़ कभी उगे ही नहीं। इस बात से निराश आबो तानी फिर वापस मोपिन के पास गये और उनसे फिर बीज़ो की माँग की। इस बार मोपिन देवी ने उन्हें बीजों के साथ 'दिगो-गे-हिग्मेन' नामक कटार दिये और सलाह दिया कि पहले खेती के लिये चुनी हुई ज़मीन के जंगलों कों साफ कर लें, फिर वहाँ की मिट्टी को जोतकर बीज़ बोने लायक बना ले उसके बाद ही बीज़ को ज़मीन के अंदर बोएं। इस बार आबो तानी ने मोपिन देवी की सारी बातों को गाँठ बाँध ली और उन्होंने ठीक वैसे ही किया पर उनकी सारी मेहनत पर पानी फिर गया जब 'कादा- राम्यो' नामक एक जंगली जानवर ने उनके खेत की तैयार खड़ी फसल को पूरी तरह से नष्ट कर दिया। इस बार फिर आबो तानी मोपिन देवी के पास अपनी शिकायत लेकर गये और उनकी नसीहत पर वे 'कोम्दु-पोरा' नामक यंत्र जाल तैयार करने लग गये ताकि 'कादा-राम्यो' को पकड़ सके। कादा-राम्यो को पकड़कर उसे मारकर उसकी खाल को 'गितुम-योकपाक' अर्थात कृषि कार्य के लिये हथियार खरीदने के लिये 'न्यिजो-पोरा' यानी कि हथियारों के मालिक से हथियार के साथ अदला-बदली कर सके। ऐसा उन्हें मोपिन देवी ने सुझाया था।

आबो तानी एक बार फिर अपनी खेती के लिये जंगल साफ करने लग गये और इस बार वह हथियारों से लैस थे। मगर इस बार फिर उनके इस कार्य में अड़चन पड़ने लगी, जंगल के 'यापोम-याज़ी' वहाँ प्रकट हो गये और वे उनके कार्य में बाधा डालने लगे। आबो तानी ने उन्हें भगाने की बहुत कोशिश की मगर वे टस से मस नहीं हुए। हारकर फिर आबो तानी को अपनी मदद के लिये मोपिन देवी के शरण में जाना पड़ा। इस बार मोपिन देवी ने यापोम-याजी को काफी समझाने की कोशिश की और सुलह कराने का प्रयास किया मगर वे नहीं माने। अत: कोई रास्ता न देख उन्होंने आबो तानी को एक युक्ति सुझाई और आबो तानी और यापोम-याज़ी को जंगल में खेती के लिये चुनी हुई ज़मीन पर पेड़ों को काटकर गिराने का आदेश दिया और कहा कि जब वे पेड़ सूख जायेंगे तो उसे जला दिया जायेगा और उस जलती हुई आग में अग्नि की ज़्वाला को सहन करते हुए जो खड़ा रह पायेगा वही उस जंगल और समस्त धरती का मालिक होगा। उन्होंने यह भी फैसला सुनाया कि 'दियी-तामी' ही अग्नि परीक्षा रूपी उस आग को लगायेगी।

क्योंकि मोपिन देवी चाहती थी कि इस धरती पर भी उनके लोक की ही तरह लोग कृषि करें और धन-धान्य से भरपूर यहाँ भी खुशहाली हो इसलिये वे आबो तानी के पक्ष में थी अत: उन्होंने आबो तानी को गोपनीय तरीके से यह समझाया कि अग्नि परीक्षा के वक़्त उसे जिस जगह पर खड़े रहना है वहाँ वह पहले से ही चुपचाप ज़मीन के नीचे गड्ढा खोदकर तैयार रखे ताकि अग्नि की लपटों से बचने के लिये वह वहाँ छुप जाये और इस तरह विजयी घोषित हो जाये। आबो तानी ने जैसे मोपिन देवी ने समझाया ठीक वैसा ही किया। अग्नि परीक्षा के दिन वे और यापोम-याज़ी अपनी-अपनी निश्चित जगहों पर खड़े रहे और तय अनुसार 'दियी-तामी' ने सूखे जंगल में आग लगा दी। जब आग धू-धू कर जलने लगी तो यापोम-याज़ी वहाँ से भाग खड़े हुए जबकि आबो तानी पहले से ही खोदी हुई जमीन में घुसकर बैठ गये और जब आग जलकर खत्म हो गई और बुझ गई तो वहाँ से मुस्कुराते हुए प्रकट हुए और इस तरह वह विजयी घोषित हुए। यापोम याज़ी ने चुपचाप अपनी हार मान ली और वह वहाँ से चम्पत हो गये। मोपिन देवी ने आबो तानी को पूरी धरती लोक का मालिक घोषित कर चारो ओर ऐलान कर दिया।

इस प्रकार आबो तानी के रास्ते की सारे रुकावट दूर हो गई उन्होंने चैन की साँस ली और अपनी खेती तैयार करके उसपर 'मिलि-आम्ली' यानी कि धान बो दिये। यापोम-याज़ी सहित तमाम देवात्माओं ने आबो तानी को सुझाया कि मोपिन देवी की कृपा से ही इस धरती पर कृषि कार्य सम्भव हो पाया अत: उनके सम्मान में मोपिन त्योहार मनाया जाए। इस प्रकार दियी-तामी और पिंकू-पिंते आदि देवियों की सहायता से आबो तानी ने मोपिन देवी की प्रतिमा तैयार की और पूरे विधि-विधान, रस्मों-रिवाज़ और सम्मान के साथ मोपिन त्योहार मनाया गया।

कुछ महीनों बाद आबो तानी अपनी मार्गदर्शिका मोपिन देवी से मिलने गये लेकिन इस बार उनका उद्देश्य कुछ अलग ही था। उन्होंने सादर मोपिन देवी से आग्रह किया कि वह उनकी पुत्री 'दियी-तामी' से विवाह करना चाहते हैं। मोपिन देवी ने अपनी पुत्री दियी तामी से पूछा कि क्या उन्हें यह विवाह प्रस्ताव मंज़ूर है? तो दियी तामी ने प्रत्युत्तर में हामी भरी, फिर क्या था ? धूमधाम से आबो तानी और दियी तामी का विवाह सम्पन्न हुआ जिसमें मोपिन देवी समेत कई देवी देवता उसमें शामिल होकर नव विवाहित जोड़ी पर आशीषों की वर्षा की। मोपिन देवी ने कृषि कार्य में इस्तेमाल करने के लिये कई सारे हथियार और अनाज़ के बीज़ और कई रत्न तोहफा स्वरूप नव विवाहित जोड़ी को प्रदान किया, साथ ही उन्होंने अपनी बेटी दियी तामी को ऐसी एक आलौकिक शक्ति दी जिसके बल पर वह अनाज़ के एक ही दाने से बर्तन भर चावल पका सकेगी। इसके साथ-साथ उन्हें कई पारम्परिक वस्तुओं जैसे 'दोके-दोआक', 'यारी- यापोर', 'दोई-गिंची' को भेंट भी किया। इस तरह हर तरह की जरूरत की चीजों से लैस होकर आबो तानी और दियी तामी दोनों इस धरती पर लौट आए और भरपूर सुखी और सम्पन्न पारिवारिक जीवन बिताने लगे। अब उन्हें किसी तरह की मेहनत-मज़दूरी करने की ज़रूरत नहीं थी और न ही वे खेती करते थे। क्योंकि अब दियी तामी के पास वह आलौकिक शक्ति थी जिसके द्वारा वह अनाज़ के एक ही दाने से बर्तनभर भोजन पका लेती थी, जिसके कारण अब दोनों का जीवन सुखपूर्वक और बड़े चैन से बीतने लगा।

कुछ समय बाद आबो तानी का दिल 'रोसी-तामी' पर आ गया। रोसी-तामी और कोई नहीं बल्कि 'दिरो' (दरिद्र महाराज़) की बेटी थी। आबो तानी जब रोसी-तामी को ब्याह कर लाये तो उसकी धर्म पत्नी दियी तामी बहुत नाराज़ हुई वह किसी भी हाल में रोसी-तामी को अपना सौतन स्वीकार करना नहीं चाहती थी। वह इतनी अधिक नाराज़ हुई कि वह सब कुछ त्यागकर अपने लोक दिगो-पेने लौट गई। उसकी गैर मौज़ूदगी में जब रोसी-तामी पर घर परिवार की ज़िम्मेदारी आ गई। उसे पता ही नहीं था कि उसकी सौत दियी-तामी किस तरह से भोजन पकाती थी अत: अज्ञानता वश उसने जब भोजन पकाने के लिये के लिये चूल्हे पर बर्तन बिठाने क़े बाद उसमें अनाज़ के दो दाने डाल दिये जिससे इतना ज़्यादा चावल बना कि आबो तानी और वह उसे पूरा नहीं खा पाये कोई उपाय न देख उसने बचे हुए भोजन दिर्र-कीबो नामक कुत्ते को खिला दिया। अगले दिन भी जब दियी-तामी नहीं लौटी तो भोजन पकाने की ज़िम्मेदारी निभाने के प्रयास में फिर उसने अनाज़ के दो दाने एक बर्तन में डालकर पकाने लगी मगर इस बार वह दो दाने वैसे ही रहे उसमें पहले जैसा कोई परिवर्तन नहीं हुआ और न ही उसके बर्तन भोजन से भर पाये क्योंकि उसने अनजाने में एक बहुत बड़ी गलती कर दी थी। उसने जो बचे हुए भोजन को दिर्र-कीबो कुत्ते को खिला दिया था उस कुत्ते ने उस बासी भोजन के साथ-साथ दियी-तामी और आबो तानी को आशीर्वाद में मिले आलौकिक शक्ति को भी लील लिया था और यह इसी का परिणाम था। अब आबो तानी के घर में भुखमरी की स्थिति हो गई, उसके पास खाने को कुछ भी नहीं बचा था क्योंकि उसने खेती करना भी छोड़ दिया था। अब गरीबी के कारण उसकी हालत और भी ही दयनीय हो गई।

इस बात की ख़बर दिगो-पेने लोक तक पहुँच गई और जब दियी-तामी को यह ख़बर मिली तो उससे रहा नहीं गया और वह बहुत ही विचलित हो गई मगर वह अपने पति आबो तानी के पास नहीं लौटी। कोई चारा न देख आबो तानी उसे मनाने चले आये, काफी मिन्नतों के बाद घर लौटने को राज़ी हुई मगर एक शर्त पर कि वह रोसी-तामी का त्याग कर दे। रोसी-तामी को नदी में फेंक दे और साथ ही दिर्र-कीबो कुत्ते को हमेशा के लिये मार दिया जाये क्योंकि दारिद्र्य और भुखमरी के लिये ये दोनों ही ज़िम्मेदार हैं। उसके बाद आबो तानी को पूरी रस्मों-रिवाजों के साथ मोपिन देवी और अन्य देवी-देवताओं की पूजा करनी होगी ताकि वे उन्हें क्षमा कर दें और सब कुछ पहले जैसा ही हो जाये। कोई उपाय न देख आबो तानी ने उनकी सब शर्तें मान ली और 'लितुम और लिरो' नामक देवताओं की मदद से उन्होंने ठीक वैसा ही किया जैसा दियी-तामी चाहती थी यानी कि रोसी-तामी को नदी की लहरों में डुबोकर मार दिया और दिर्र-कीबो कुत्ते को मारकर बोटी-बोटी कर उसे भी झरनों में बहा दिया। उसके बाद उन्होंने मोपिन देवी के साथ तमाम देवी देवताओं जैसे 'लोसी-लोरे', 'लोदो-लोरे', 'रिलुम-ताजुम', 'गारे-गापो' आदि की प्रतिमाएं तैयार की और पूरी विधि-विधान के साथ उसका पूजन किया। साथ ही उन्होंने विनती की कि मोपिन देवी अपने साथ दियी-तामी को उनके पास लिवा आए। आबो तानी की पूजन से खुश होकर मोपिन देवी ने उन्हें क्षमा कर दिया और अपने साथ दियी-तामी और सभी देवी-देवताओं को लेकर वह पृथ्वी लोक आये और उन्होंने आबो तानी को वह सब कुछ दिया जो पहले दिया था यानी कि खेती करने के सभी हथियारों के साथ कई तरह के अनाज़ के बीज़ आदि मगर वह आलौकिक शक्ति नहीं दी जिससे अनाज़ के एक ही दाने से पूरे परिवार के लिये भोजन पका सकते थे। लेकिन

उसकी जगह यह कृपा बरसाई कि हर वर्ष तानी के खेतों में अनाज़ की भरपूर पैदावर होती रहेगी। बस उसके लिए आबो तानी प्रति वर्ष कृषि के मौसम में उन्हें याद किया करें। इस तरह से मोपिन त्योहार मनाने की शुरुआत हुई। आज भी हमारी गालो जनजाति के लोग इसी तरह प्रति वर्ष अप्रैल महीने के पाँच से सात तारीख को अत्यंत ही धूमधाम से मोपिन त्योहार मनाते हैं। मोपिन देवी, आन्यी पिंकू-पिंते, दियी-तामी आदि देवियों को पूरी मानवता को कृषि कार्य की ओर मार्गदर्शन करके उन्हें खाद्य संवाहक से खाद्य उत्पादक के रूप में परिवर्तित कर उन्नति के राह पर लाने के लिये शुक्रगुज़ार होते हुए ससम्मान स्मरण के साथ मोपिन उत्सव मनाते हैं।

*(**लेखकीय परिचय:** तुम्बम रीबा 'लिली' देरा नातुंग शासकीय महाविद्यालय ईटानगर, अरुणाचल प्रदेश में सह-प्राध्यापिका पद पर कार्यरत हैं।)*

***

मिजो लोककथा

माऊरुआङी

अनुवादक- डॉ. कैथी रौह्लूंपुई

बहुत समय पहले की बात है। एक गाँव में एक दंपत्ति रहते थे। उनकी एक बेटी थी, जिसका नाम माऊरुआङी था। माऊरुआङी को उसकी माँ बहुत प्यार करती थी। अच्छे से अच्छे और स्वादिष्ट भोजन दिया करती थी। एक दिन माऊरुआङी के माता-पिता लकड़ी लेने जंगल गए। काफी दूर निकलने के बाद उन्हें एक टूटा-फूटा पुल मिला। इसी पुल से उन्हें गुजरना था। पत्नी ने कहा "जिस पुल से हमें गुजरना पड़ रहा है वह पुल काफी पुराना एवं कच्चा है, जब हम वापस लौटेंगे तो लकड़ी के कारण हमारा वजन भी बढ़ जाएगा, कितना खतरनाक हो सकता है।" पति ने उत्तर देते हुए कहा- "वापस लौटते वक्त हम दोनों में जो इस पुराने पुल से गुजरने से डरेगा उसे नीचे नदी में धक्का दे दिया जाएगा। वे पुल पार करने के बाद लकड़ी इकट्ठा करने लगे। लकड़ी को बाँधते वक्त पति ने अपने लिए हल्का और पत्नी के लिए काफी भारी लकड़ी बाँध दिया। उसके बाद दोनों अपनी घर की ओर लौटने लगे।

घर में रह रही माऊरुआङी ने बेसब्री से इंतजार करते हुए कहा- "मेरे माँ-बाप को लकड़ी लेने गए कितनी देर हो गई।" पिताजी को अकेले घर वापस लौटते देखा लेकिन कहीं माँ दिखाई नहीं दे रही थी। पिता से पूछा- पिताजी मेरी माँ कहाँ है? पिताजी ने बड़ी सरल लहजे में जवाब दिया- "नदी में मेरी पगड़ी धो रही है।" थोड़ी देर बाद माऊरुआङी ने फिर दुबारा पूछा- "मेरी माँ कहाँ है? उसने कितनी देर लगा दी? माऊरुआङी बेसब्री से अपनी माँ के लिए टकटकी लगाई रही लेकिन कहीं माँ वापस घर आने का नाम ही नहीं ले रही थी। जब पिता से माँ के बारे में पूछती तो पिता तरह-तरह का बहाना बनाकर बात को टाल देते थे। अंधेरा होने लगा। रात के खाने का समय हो गया उन्होंने फिर पिता से पूछा- "मेरी माँ कहाँ रह गई, कितनी देर हो गई अभी तक वापस नहीं लौटी। अंत में पिता ने बताया कि "हम दोनों ने तय किया था वापस लौटने वक्त जो इस पुल से गुजरने से डरेगा उसे नीचे नदी में धक्का दे दिया जाएगा। तुम्हारी माँ पुल से गुजरने से डरने लगी इसलिए मैंने उसे नीचे नदी में धक्का दे दिया" यह सुनकर माऊरुआङी को बहुत दु:ख हुआ, रो-रो कर बेहाल हो गई। जैसे-तैसे वह दु:खद रात उन्होंने बिताई।

माऊरुआङी जब सुबह उठी, अंगीठी जलाना चाहा, तो देखा कि अंगीठी पूरी तरह बुझी हुयी थी। पिता ने कहा "पड़ोसी से आग मांग लाओ।" उनकी पड़ोसन विधवा थी, उनकी एक बेटी थी जिसका नाम बीङताई था। माऊरुआङी ने पड़ोसन से कहा- "बुआ, क्या अपनी अंगीठी जलाने के लिए आपकी थोड़ी सी आग ले सकती हूँ?" पड़ोसन ने कहा- "तुम अपने पिताजी से मेरी शादी की मंजूरी नहीं दोगी तो मैं तुम्हें अपनी आग नहीं दूँगी।" माऊरुआङी दौड़ी-दौड़ी अपने घर वापस आई और पिताजी को घटित घटना विस्तार से

बताया। पिता ने कहा- "क्या पता हम उनसे शादी कर लें।" माऊरुआङी फिर पड़ोसन के घर गई और पिता द्वारा दिए गए जवाब उन्हें सुनाया। फिर पड़ोसन खुशी-खुशी आग देने को राजी हो गई।

कुछ दिनों बाद माऊरुआङी के पिताजी ने बीङताई की माँ से शादी कर ली। शादी के शुरू-शुरू में तो बीङताई की माँ ने माऊरुआङी पर काफी स्नेह लुटाया, परंतु जैसे-जैसे समय बीतता गया दिनोंदिन माऊरुआङी पर जुल्म एवं अत्याचार बढ़ने लगा। बीङताई पर ही अपना सारा स्नेह लुटाने लगी। माऊरुआङी को अच्छा खाना भी नहीं देती थी, केवल धान के छिलके की खिचड़ी बनाकर देती थी। माऊरुआङी ऐसा खाना नहीं खा सकती थी, इसलिए वह भूख से व्याकुल रहती थी। भूखी होकर भी कठिन से कठिन कार्य माऊरुआङी से करवाया जाता था। बीङताई से कुछ भी कार्य नहीं करवाया जाता था। वह बैठे-बैठे जोर-जोर से हँसती रहती थी। जैसा मन करता वैसे ही रहती थी। सोना, बैठना और घूमना यही बीङताई का काम था। कुछ दिनों बाद पौष्टिक भोजन न मिलने से माऊरुआङी काफी दुबली-पतली व कमजोर हो गई। माँ की याद में रोती रहती थी। एक दिन वह उस नदी में गई जहाँ उसकी माँ गिरकर मर गई थी। उसकी माँ एक बड़ी मछली (मिजो भाषा में थाइछोनीनू कहते हैं) का रूप धारण करके उसके सामने आई। माऊरुआङी ने उसे अचरज भरी निगाहों से देखा। माँ ने माऊरुआङी से पूछा- "मेरी प्यारी बेटी। तुम यहाँ क्या करने आई हो? मैं तुम्हें बहुत याद करती हूँ। जो पल हम दोनों ने साथ बिताया है उसे मैं भूली नहीं हूँ। तुम्हारे पिताजी कैसे हैं? क्या उन्होंने दूसरी शादी कर ली? तुम दोनों अब कैसे रहते हो?" माऊरुआङी को बहुत खुशी हुई जब उसने यह जाना कि वह बड़ी मछली उसकी माँ है। उसने माँ को सब कुछ बता दिया कि पिताजी ने दूसरी शादी कर ली है और सौतेली माँ उस पर अत्याधिक अत्याचार करती है। ढंग का खाना न देकर केवल धान के छिलके से बनी खिचड़ी ही देती है। यह सुनकर माँ को बहुत दु:ख हुआ, उसने माऊरुआङी को मछली और तरह-तरह का पकवान देकर भरपेट भोजन कराया। माँ ने माऊरुआङी से कहा "जब भी तुम्हें भूख लगे तुरंत मेरे पास आ जाना।"

माऊरुआङी बेमन से अपने घर वापस लौट आई। घर पहुँचने पर सौतेली माँ ने कटु स्वर से माऊरुआङी से कहा "तुम इतनी देर से कहाँ गई थी? घर में कितना काम पड़ा है, लो अपना खाना खा लो" कहते हुए धान के छिलके से बनी खिचड़ी उसके सामने रख दिया, लेकिन माऊरुआङी ने उसे खाने से इनकार कर दिया। इस तरह वह रोज सौतेली माँ द्वारा दिये जाने वाले खाने से इनकार करने लगी। चुपके से नदी में जाकर माँ से मिलती थी। उसकी माँ तरह-तरह के स्वादिष्ट भोजन अपनी बेटी को रोज खिलाती थी। रोज ऐसे स्वादिष्ट भोजन खाने के कारण माऊरुआङी दिनोंदिन मोटी होने लगी। यह देखकर सौतेली माँ को काफी आश्चर्य हुआ, क्योंकि वह जानती थी कि उसके द्वारा दिए जाने वाला खाना खाकर कोई मोटा नहीं हो सकता था। वह सोचने लगी कि "माऊरुआङी हमसे छुपकर कुछ चीजें जरूर खाती होगी, क्योंकि मैं तो इसे धान के छिलके की खिचड़ी ही देती हूँ, लेकिन यह लड़की दिनोंदिन मोटी होती जा रही है। अब तो इसका राज ढूँढ़ना ही पड़ेगा कि यह लड़की मुझसे छुपकर क्या खाती है? और मुझे उस राज को नष्ट करना ही होगा।" यह सोचती हुई वह अपनी बेटी बीङताई से कहने लगी- "बीङताई आज चुपके से माऊरुआङी का पीछा करना और देखना कि यह लड़की हमसे छुप-छुपके क्या खाती है और कहाँ खाती है।"

शाम होते-होते माऊरुआङी को भूख लगने लगी। रोज की तरह ही वह अपनी माँ से मिलने नदी में गई। माँ ने उसे स्वादिष्ट भोजन कराया। बीङताई ने दूर से यह नजारा चुपके से देखा। घर आकर सारा किस्सा अपनी माँ को सुनाया। "मैंने सब-कुछ अपनी आँखों से देख लिया है कि किस कारण माऊरुआङी दिनोंदिन मोटी होती जा रही है। पिता ने माऊरुआङी की माँ को नदी में धकेलकर उसकी हत्या कर दी थी, वह बड़ी मछली बनकर अपनी बेटी को रोज स्वादिष्ट भोजन खिलाती है। ऐसा स्वादिष्ट भोजन खाकर माऊरुआङी क्यों मोटी नहीं होगी?" सौतेली माँ ने बीङताई की प्रशंसा करते हुए कहा- "मेरी प्यारी बेटी कितनी चतुर हो गई है कि माऊरुआङी के दिनोंदिन मोटी होने का राज ढूंढ़ निकाला। अब देखना माऊरुआङी को कैसे दुबली-पतली करती हूँ।" उसके बाद सौतेली माँ ने माऊरुआङी के पिता से कहा- "आप सभी गाँव वालों से अनुरोध कीजिए कि पूरे गाँववालों को एक साथ बड़ी मछली को पकड़ने के लिए जाना चाहिए।" फिर सभी गाँव वालों को बुलाया गया, सभी लोग बड़ी मछली को पकड़ने के लिए अपने-अपने घर से निकल पड़े।

जब यह बात माऊरुआङी को पता चला तो वह दौड़कर माँ के पास नदी में गई। उसने माँ से कहा- "माँ तुम्हें पकड़ने के लिए गाँव वाले आएंगे। जब मैं कहूँ, माँ तुम नदी की सतह में जाओ तो तुम नदी के स्त्रोत की ओर चली जाना। यदि मैं कहूँ नदी के बीच में तो आप नदी के किनारे चले जाना। यदि मैं कहूँ नदी के किनारे तो आप नदी के बीच में चली जाना। कुछ देर बाद सारे गाँव वाले सामूहिक रूप से मछली पकड़ने आ गए। बड़ी मछली को पकड़ने की थान लगाकर आए थे। माऊरुआङी ने जैसा माँ को समझाया वैसा ही करती जा रही थी। वे सभी थाईछोनीनू को पकड़ने में असफल हुए। अंत में खिन्न होकर गाँव वालों ने कहा- "इस लड़की के कारण ही हम लोग थाईछोनीनू को पकड़ नहीं पा रहे हैं अतः उसके मुँह में कपड़ा ठूँसो और इसे कहीं और ले चलो।" गाँव वाले माऊरुआङी को वहाँ से कहीं दूर ले गए। फिर क्या था, माँ अकेली पड़ गई, इसलिए गाँव वालों ने उसे पकड़ लिया। बड़ी मछली को टुकड़े-टुकड़े कर आपस में बाँट लिए। माऊरुआङी ने अपनी माँ यानी थाईछोनीनू के माँस को खाने से इनकार कर दिया और कहा- "मुझे तो नहीं खाना, बस मुझे बड़ी मछली की काँटे या हड्डियाँ ही दीजिए।" सारे काँटे उसे दे दिए गए। माऊरुआङी ने माँ की हड्डियों अर्थात काँटों को एक बर्तन में रख दिया। उसके ठीक तीन दिन बाद बर्तन को खोल कर देखा तो वह सारे काँटे बहुत सुंदर और बहुमूल्य मोतियों में तब्दील हो गए। माऊरुआङी ने उन्हें धागे में पिरोकर माला बनाकर उसे अपने गले में डाल लिया। सुंदर माला देखकर बीङताई की माँ ईर्ष्या से जल-भुन गई। उसने माऊरुआङी से कहा- "बीङताई को भी दे दो।" सौतेली माँ की बात मानकर जब उसने बीङताई को माला पहनने के लिए दिए, जैसे ही वह माले को पहनने लगी वह सुंदर और बहुमूल्य माला कोयले में बदल गई।

माऊरुआंगी ने बड़ी मछली के दिल को भी जमीन में गाड़ दिया था। उसमें भी एक सुंदर फूल (जिसे मिजो भाषा में 'फुनचोङ' कहा जाता है) में तब्दील होकर कई बड़ी-बड़ी डालियाँ निकाल आयी। बेचारी माऊरुआङी को अब भी सौतेली माँ द्वारा विभिन्न अत्याचार एवं यातनाएँ देना जारी था। उसे फिर से धान के छिलके की खिचड़ी ही खाने को मिलती थी। फिर से माऊरुआङी दिनोंदिन दुबली-पतली होने लगी, किन्तु जब उस फुनचोङ पेड़ में फूल निकलने का समय आया तो पूरा पेड़ फूलों से लद गया। फुनचोङ के फूल का

रस बहुत ही मीठा होता है अर्थात मधु भरा हुआ था। उन मधुओं या रसों का पान माऊरुआङी करती और उसी से अपनी भूख-प्यास मिटाती थी। चूंकि माऊरुआङी का हाथ ऊपर तक पहुँच नहीं पाता था, इसलिए यह गीत गाकर फुनचोङ पेड़ अर्थात माँ को संबोधित करती थी:-

"माँ अपनी डालियों को नीचे झुका, झुका/मेरी प्यारी माँ नीचे झुक जा, झुक जा।"

इस गीत से डालियाँ नीचे की ओर झुक जाती थी और माऊरुआङी पेट भर फुनचोङ फूलों के रस को चूसती थी। एक बार फिर उसके शरीर में निखार आने लगा। सौतेली माँ यह देख जल-भुन गई और सोचने लगी माऊरुआङी को जरूर कोई खिला-पिला रहा है, जिसके चलते वह अच्छी दिखने लगी है। फिर उसने बीङताई को पीछा करने के लिए कह दिया। पीछा करते-करते वह उस राज को फिर जान गई और माँ से कहा- "माँ, हमारे घर से कुछ दूरी पर फुनचोङ का बहुत बड़ा पेड़ है जिस पर खूब सारे फूल लदे हैं। उन्हीं फूलों का रस-पान कर माऊरुआङी की सेहत अच्छी होने लगी है। यह सुनकर सौतेली माँ ने पति अर्थात मऊरुआङी के पिता से कहा- "हमारे घर से कुछ दूर पर फुनचोङ का पेड़ है उसे काट कर गिराना है। अपनी मदद के लिए पड़ोसियों को बुलाओ।" माऊरुआङी के पिता न चाहते हुए भी पत्नी के डर से इनकार नहीं कर सका और पड़ोसियों को मदद के लिए बुलाया। गांव वालों ने अपनी-अपनी कुल्हाड़ी का धार तेज किया और फुनचोङ पेड़ काटने निकल पड़े। माऊरुआङी भी पीछे-पीछे चलने लगी। वहाँ पहुँचकर उसने पेड़ से कहा-

"माँ मजबूत बन, मजबूत बन/ मेरी अच्छी, प्यारी माँ मजबूत बन, मजबूत बन।"

जैसे ही गाँव वाले उस पेड़ को काटने लगते यही गाना माऊरुआङी दोहराती। इस तरह वे लोग उस पेड़ को काट पाने में असफल हो होते रहे। अर्थात पेड़ में शक्ति आ जाती वह और मजबूत हो जाता था। अंत में उन लोगों ने कहा, "जब तक माऊरुआङी यहाँ रहेगी, इस पेड़ को नहीं काट पाएंगे। इसलिए इसके मुँह में कपड़ा ठूँसो और इसे यहाँ से हटाओ।" इस तरह उसे दूर ले गए। उसके बाद पेड़ को काटने में कामयाब हो गए। माऊरुआङी की दशा पुनः दयनीय हो गई। बेचारी माऊरुआङी की हालत पहले जैसी हो गई पर जैसे-तैसे वह भी बड़ी हो गई और किशोर अवस्था में कदम रखना शुरू कर दिया। बीङताई भी किशोरी अवस्था में पहुँच गई। एक दिन सौतेली माँ ने कहा- "अब तो तुम दोनों बड़ी हो गई हो और अलग-अलग खेती-बारी संभालने के लिए सक्षम हो गई हो। अतः अब तुम दोनों अपना अलग-अलग खेती-बारी शुरू करो। हम देखते हैं कि कौन अच्छी तरह से देखभाल करता है। माँ के कहे अनुसार दोनों ने अपना अलग खेत बना लिया। झूम खेती के लिए जमीन तैयार कर लिया। (मिजोरम पहाड़ी इलाका होने के कारण यहाँ झूम खेती की जाती है। झूम खेती में बीज बोने से पहले खेत में पेड़-पौधों को काटकर सुखाया जाता है फिर जलाया जाता है) खेती के लिए जमीन तैयार होने पर माँ ने दोनों को बोने के लिए मक्के, कद्दू आदि के बीज दिए। सौतेली माँ ने माऊरुआङी को कीड़े लगे खराब बीज दिए। दोनों बीज लेकर खेत पहुँची। माऊरुआङी ने मेहनत करके बीज बोए, किन्तु बीङताई ने मक्के के आधे बीज को भुन कर खा लिया और खेत में बनी कुटिया में लेटी रही। बचे-खुचे बीज को भी नहीं बोए। शाम को दोनों घर लौटे। घर पहुँचते ही बीङताई ने मऊरुआङी की शिकायत

करते हुए माँ से कहा- "माँ जो मक्के के बीज आपने दिए थे, मैंने बहुत अच्छी तरह बोया, किन्तु माऊरुआङी ने तो कुटिया में सब भुनकर खा लिया और पूरे दिन लेटी रही।"

माँ ने "माऊरुआङी तुम बहुत आलसी हो" कहकर उसकी खूब पिटाई की। किन्तु माऊरुआङी चुप रही। वह रोज खेत में जाती और खेत को खूब साफ रखती। चूंकि बीङताई आलसी थी, इसलिए उसका खेत झाड़ियों से भरा था। माऊरुआङी के मक्के खूब बढ़ने लगे और खाने लायक हो गए। माऊरुआङी की कड़ी मेहनत रंग लाई।

एक बार हिंदी भाषी राजा को पत्नी की तलाश थी। पत्नी तलाश करने के लिए राजा ने अपने कई नौकरों को विभिन्न स्थानों में भेजा। चूंकि माऊरुआङी का खेत रास्ते के किनारे पड़ता था, इसलिए वे लोग वहाँ पहुँच गए। उन्होंने देखा कि माऊरुआङी के खेत में भरपूर मात्रा में मक्के और खीरे आदि फल-फूल रहे थे। राजा के नौकरों ने कहा- "हमें बहुत भूख लगी है, क्या हम आपके मक्के और खीरे खा सकते हैं? माऊरुआङी ने कहा- "जाकर खाईए, अच्छे-अच्छे को छाँटकर पेट-भर खाईए। वैसे आप लोग कहाँ जा रहे हैं?" नौकरों के दिल को माऊरुआङी की दयालुता और सहिष्णुता व अच्छाई ने जीत लिया। मन ही मन उसे राजा की पत्नी के लिए पसंद कर लिए। "हमारे राजा बहुत महान राजा हैं। उन्होंने हमें पत्नी की तलाश में जगह-जगह भेजा है। हमें आप पसंद हैं, क्या आप हमारे राजा की पत्नी बनना पसंद करोगी? यदि आप हमारे राजा की पत्नी बनेंगी तो आपको अच्छी-अच्छी चीजें खाने को मिलेगी और जो मर्जी कपड़े पहनोगी, जब चाहे सो सकोगी और किसी काम को करने की जरूरत नहीं पड़ेगी।" माऊरुआङी ने कहा, "मुझ जैसी नाचीज को यदि तुम्हारे राजा पसंद करेंगे तो मैं कैसे इनकार कर सकती हूँ। लेकिन मैं अपने माता-पिता की मर्जी के खिलाफ़ नहीं जा सकती।" नौकरों ने पूछा- "क्या आपको लगता है कि आपके माता-पिता हमारे राजा से शादी करने के लिए राजी नहीं होंगे?" माऊरुआङी ने जवाब दिया- "बिल्कुल नहीं होंगे। क्योंकि मेरी माँ सौतेली माँ है, उनकी बेटी का नाम बीङताई है। आप लोग ऐसा कीजिए कि मेरी माँ-बाप से मेरा हाथ न माँगकर बीङताई का हाथ माँग लीजिए। राजा से शादी के लिए मेरे माता-पिता राजी हो जाएँगे। बीङताई को ले जाते समय मैं आप लोगों को छोड़ने आऊँगी और गाँव की सीमा पर पहुँचने पर बीङताई को छोड़कर मुझे ले जाना।" नौकरों ने हामी भरी और कहा- "हम उसी तरह करेंगे जैसा तुमने कहा।" शाम हुई घर जाने का समय हुआ तो माऊरुआङी मेहमानों के साथ घर आयी। माऊरुआङी ने उन मेहमानों का जिक्र नहीं किया।

रात्रि के भोजन के बाद राजा द्वारा भेजे गए नौकर माऊरुआङी के घर पहुँच गए। बीङताई की माँ ने कहा- "आप लोग कहाँ से आएँ हैं और क्या चाहते हो?" उन्होंने आने का मकसद बताते हुए कहा- "राजा ने हमें उनकी पत्नी की तलाश में भेजा है। यदि आप लोग अपनी बेटी बीङताई को राजा की पत्नी बनाने के लिए राजी हों तो हमें आपकी बेटी पसंद है।" यह सुनकर माँ को बहुत खुशी हुई। "हमें अपनी बेटी का हाथ आपके राजा को देना मंजूर है। बीङताई, माऊरुआङी की तरह नहीं है, वह बहुत ही अच्छी और मेहनती है। शादी करके आप लोग बिल्कुल नहीं पछताएँगे।" माँ ने कहा, "माऊरुआङी जा, सूअरों का चारा ढूँढ़ते हुए बीङताई को छोड़ आओ। तुझ जैसे नालायक को तो कोई नहीं पूछता।"

माऊरुआङी (पुराने जमाने का बक्सा, जिसमें मिजो लोग सामान ढोते हैं) भी अपने साथ ले गई और उनके साथ रवाना हो गई। गाँव की सीमा पर पहुँचकर नौकरों ने बीङताई को काँटों के बीच ढकेल दिया और माऊरुआङी को अपने साथ ले गए। बीङताई अत्यंत लज्जित होकर बेबस अपने घर लौट आई। सारी बात सुनकर और बीङताई की हालत देखकर माँ को बहुत गुस्सा आया। किन्तु माऊरुआङी को पहले की तरह नहीं सता पाई और अपना गुस्सा यूं ही पी लिया। नौकर माऊरुआङी को साथ लेकर राजा के पास आ गए। राजा उन्हें देखकर बहुत खुश हुआ। राजा ने माऊरुआङी को नए-नए वस्त्र पहनने को दिए। माऊरुआङी अपनी मर्जी से स्वादिष्ट खाना खाकर आराम से अपना जीवन व्यतीत करने लगी। इसी बीच सौतेली माँ बदला लेने की ताक में थी और माऊरुआङी को जान से मारना चाहती थी।

एक बार बड़ी चालाकी से माऊरुआङी को मायके आने के लिए बुलाया। सौतेली माँ ने राजा को संदेश भेजा कि- "माऊरुआङी को कुछ दिनों के लिए मायके भेजो, मैं उसके लिए सूअर काटूँगी। (किसी खास मेहमान की खातिरदारी के लिए सूअर काटना मिजो समाज में अच्छा माना जाता है) माऊरुआङी सौतेली माँ की चाल न भाप सकी और अपने मायके चली आई। मायके पहुँचकर सौतेली माँ ने कहा- "माऊरुआङी कई दिनों बाद तुम आई हो, मेरे सिर में जुए देखो। (गाँव में स्त्रियों, लड़कियों का एक दूसरे के बालों को हाथ लगाना, जुए देखना आम बात है) माऊरुआङी ने माँ की बात मान ली और माँ का जुआ देखने लगी। फिर माँ ने कहा- "माऊरुआङ, मेरा क्लिप/काँटा (जिसे मिजोउ भाषा में 'दोहकिलह' कहा जाता है) घर के नीचे गिर गया है, उसे उठाकर लाओ।"

माऊरुआङी माँ के काँटे (जिसे बाल बाँधने के लिए सिर पर लगाया जाता है) को उठाने के लिए नीचे गयी। बहुत ढूँढ़ने पर भी उसे नहीं मिली तो उसने माँ से पूछा "माँ तुम्हारा काँटा कहाँ गिरा है?" असल में माँ झूठ बोल रही थी। माँ ने कहा- "वहीं कहीं होगा, ढंग से ढूँढ़ो।" माऊरुआङी ढूंढ़ती रही, किन्तु उसे कहीं नहीं मिला। जैसे ही माऊरुआङी नीचे झुकी सौतेली माँ ने उबला हुआ पानी उस पर उड़ेल दिया। बेचारी माऊरुआङी जलकर मर गई। माऊरुआङी के पार्थिव शरीर को उठाकर सौतेली माँ ने गाँव के सीमा में फेंक दिया। कुछ देर बाद शव को नीलगाय ने उठाया और फिर से जीवित किया। उसे अपने बच्चों की देखभाल करने के लिए अपने साथ ले आई। माऊरुआङी हर रोज नीलगाय के बच्चों की निगरानी करने लगी।

कई दिनों बाद भी माऊरुआङी के घर न लौटने पर राजा को उसकी चिंता हुई। राजा ने नौकरों को माऊरुआङी के मायके में कुशल-हाल पूछने भेज दिया। नौकर रानी की तलाश में निकल पड़े। मायके पहुँचकर नौकरों ने माऊरुआङी की सौतेली माँ से पूछा "माऊरुआङी कहाँ है?" सौतेली माँ ने बीङताई की ओर इशारा करते हुए कहा- "वो रही।" नौकरों ने कहा- "यह तो हमारी मालकिन लग नहीं रही है।" सौतेली माँ ने कहा- "क्या आप लोग अपनी मालकिन को भी नहीं पहचानते? पागल हो गए हो क्या?" इसे ले जाओ यही तुम्हारी मालकिन है।" वे अनमने मन में शक करते हुए बीङताई को उठाकर ले गए।

माऊरुआङी का अंगूठा छोटी सी चिड़िया बन गई थी, जब वे बीङताई को उठा रहे थे उनके पास उड़ कर आई और कह कर गाने लगी-

"उसे मत उठाओ, मत उठाओ।/ माऊरुआडी नहीं है, बीङताई है/ उसे जमीन पर पटक दो।"

नौकरों ने बीङताई को नीचे ज़ोर-ज़ोर से पटका। इस तरह पूरे रास्ते पटकते रहे। इस पर बीङताई को बहुत गुस्सा आया। उसने छोटी चिड़िया को खूब गाली दी। जैसे ही बीङताई को उठाकर चलने लगते थे, छोटी चिड़िया पहले की तरह चिल्ला उठती थी। जब वे लोग राजा के पास लौट आए तो राजा ने कहा "मेरी पत्नी को क्या हुआ। यह तो बिल्कुल अलग लग रही है, इनकी नाक इतनी लाल-लाल क्यों है? मेरी पत्नी तो बहुत ही होनहार थी, कलाकार थी, शक दूर करने के लिए इससे कपड़ा/लुंगी बुनवाना चाहिए। यह सुनते ही नौकरों ने बीङताई से कहा "मालकिन आप अपने कठधरे (एक प्रकार के चरखे जैसा सूक्ष्म यंत्र) से कपड़ा बुनिए। बीङताई को पता नहीं था कि माऊरुआडी ने अपना कठधरा कहाँ रखा है, तो उसने कहा "मेरा कठधरा कहाँ है? नौकरों ने कहा, 'मालकिन आपको क्या हो गया है, आपको नहीं मालूम नहीं कि आपका कठधरा कहाँ है? शायद आपने चारपाई के किनारे रखा था।" बीङताई ने कहा- "अरे हाँ, मैं तो भूल गयी थी।" लेकिन मेरा पानी (कपड़ा/लुंगी बुनते समय बीच-बीच में औरतें पानी लगाती हैं।) कहाँ है? नौकरों को सब चीज बतानी पड़ी। जब वह कपड़ा/लुंगी बुनने के लिए बैठी तो उसे बुनना नहीं आया। छोटी चिड़िया उड़कर आई और कहने लगी-

"निचले हिस्से, निचले हिस्से को ऊपर लाइए।

ऊपरी हिस्से, ऊपरी हिस्से को नीचे लाइए।

मैं कह रही हूँ, बार-बार कह रही हूँ।"

इस तरह चिड़िया चिल्लाती रही। बीङताई को बहुत गुस्सा आया और वह चिड़िया को लकड़ी से मारने लगी। चूंकि बीङताई को लुंगी बुनना नहीं आता था, अंत में हारकर उसे रख दिया और वहाँ से उठ गई।

एक दिन राजा के नौकर शिकार करने जंगल गए। उसी समय एक गुफा में माऊरुआडी नीलगाय के बच्चे को लोरी सुना रही थी-

"पहले तो, पहले तो मैं राजा की पत्नी हुआ करती थी।

अभी तो, अभी तो अपने मालिक नीलगाय के बच्चों को झूला झुलाकर लोरी सुना रही हूँ। आय.....ओ.....ए

नौकरों को यह आवाज मालकिन की आवाज लगी और गुफा के अंदर झाँककर देखा तो सचमुच उनकी मालकिन थी। उन्होंने पूछा- "वह इस अवस्था में वहाँ कैसे आई? और यहाँ क्यों हैं?" माऊरुआडी ने आप बीती सारी किस्सा सुनाया। नौकरों ने कहा "मालकिन हम आपको राजा के पास घर ले चलेंगे, फिर से आप हमारी रानी बन जाइए। उसने कहा "यहाँ अब मेरी मर्जी नहीं चल सकती। अब मेरा मालिक नीलगाय है। मैं उनके बच्चों की देखभाल करती हूँ। यदि आप लोग मुझे यहाँ से ले जाना चाहते हैं तो नीलगाय के वापस

घर लौटने पर उनसे बात कीजिए। उनके आज्ञा के बिना मैं कही भी नहीं जा सकती।" फिर नौकरों ने नीलगाय का इंतजार किया। जब नीलगाय घर लौटे तो वे घर के अंदर घुसने की हिम्मत नहीं जुटा पाया। नौकरों ने नीलगाय से कहा- अंदर आइए, हम आपसे कुछ कहना चाहते हैं- हम लोग आपका इंतजार कर रहे थे।" यह सुनकर नीलगाय गुफा के अंदर घुस गया। नौकरों ने कहा- "आपके बच्चों की देखभाल करने वाली यह औरत हमारी मालकिन है अर्थात हमारे राजा की पत्नी है। कृपया आप माऊरुआङी को हमें सौंप दीजिए, बदले में हम आपको मालामाल कर देंगे।" नीलगाय ने कहा- "वाकई में यह आप लोगों की मालकिन हैं, तो आप इन्हें वापस ले जाइए। रुपए-पैसे की कोई जरूरत नहीं है, बस बदले में मुझे कुछ केले दे दीजिए। उतना मेरे लिए काफी है।" यह बात सुनकर नौकरों ने नीलगाय को केले के गुच्छे दिए और वे खुशी-खुशी अपनी मालकिन को घर ले आए।

माऊरुआङी को देखकर राजा बहुत खुश हुए। पुनः उन्हें पत्नी का दर्जा दिया। राजा ने दोनों पत्नियों से कहा- "तुम दोनों लड़ो जो जीतेगा, उसे मैं अपनी पत्नी बनाऊँगा।" यह कहकर राजा ने माऊरुआङी को नए, मोटे कम्बल से लपेटा और तेज धार वाली तलवार दिया। बीङताई को पुराना और पतला कम्बल से लपेटा और लकड़ी का बना चाकू पकड़ा दिया। माऊरुआङी ने बीङताई से कहा, "तुम मुझ पर पहले वार करो।" यह सुनकर बीङताई ने माऊरुआङी पर वार किया माऊरुआङी को कुछ चोट नहीं लगी। माऊरुआङी ने बीङताई से कहा "अब मेरी बारी है, मैं तुझ पर वार करती हूँ कहकर माऊरुआङी ने बीङताई पर ज़ोर से वार किया। बीङताई दो टुकड़ों में बँट गई और वह मर गई।

बीङताई के मर जाने के बाद माऊरुआङी और राजा खुशी-खुशी रहने लगे।

(**लेखकीय परिचय**: *अनुवादक डॉ. कैथी रौह्लूंपुई गवर्नमेंट आईज़ोल कॉलेज आईज़ोल, मिज़ोरम में सहायक आचार्य के पद पर कार्यरत हैं। यह लोककथा कुमत्लुआङ पुस्तक में संकलित है।)*

***

घातक इच्छा की अवधारणा : मिज़ो और अंग्रेजी साहित्य की कृतियों का तुलनात्मक विश्लेषण

अजेय झा

इतिहास विश्वासघात के उदाहरणों से परिपूर्ण है। जूलियस सीजर को ब्रूटस द्वारा धोखा दिया गया था। डोना मरीना उस गद्दार के रूप में जानी जाती है, जिसने स्पेनिश आक्रांताओं के साथ मिल कर अपने लोगों के साथ ही विश्वासघात किया था। ग्वालियर के राजा द्वारा झांसी की रानी को धोखा दिया गया था। सूची अनंत है। पौराणिक कथाओं में भी विश्वासघात बहुतायत व्याप्त है। मेडिया ने जेसन को ग्रीक पौराणिक कथाओं में धोखा दिया था। इन लोगों ने मिनाटौर को मारने में मदद करने के बाद एरैडेन का साथ छोड़ दिया। हिंदू पौराणिक कथाओं में भी शल्य ने कर्ण को धोखा दिया था। सुग्रीव ने बाली को धोखा दिया था। यहां तक कि भगवान राम ने सीता, उनकी पत्नी को धोखा दिया था। विश्वासघात पूरे मानव इतिहास और कल्पना में एक बहुचर्चित विषय रहा है। यह आश्चर्य की बात नहीं है, क्योंकि हर तीसरा अपराध एक ऐसे व्यक्ति द्वारा किया जाता है, जो अपने शिकार का विश्वासपात्र होता है। जब हम विश्वासघात की बात करते हैं, तो हम पीड़ितों के प्रति असीम संवेदना अनुभव करते हैं। शायद ही हमें इस बात का एहसास हो कि विश्वासघाती स्वयं अपने विश्वासघात का शिकार भी होता है। दार्शनिक मन अक्सर इस एहसास पर विचार करते हैं और हम उन कहानियों में आते हैं, जहां विश्वासघात करने वाले को अपनी करनी के कारण नरक में जलते देखा जाता है। हम दो कहानियों को लेते हैं, जो पीड़ित के विश्वासघात के साथ-साथ धोखेबाज द्वारा आत्म-विश्वासघात के विषय पर आधारित है। एक लोककथा को पावी, एक मिजो जनजाति, और दूसरी अगाथा क्रिस्टी की सर्वश्रेष्ठ क्राइम थ्रिलर 'एंडलेस नाईट' से ली गई है। दोनों पूरी तरह से अलग समय और संस्कृतियों में बुने जाने के बावजूद आश्चर्यजनक रूप से सशक्त समानता दर्शाती हैं।

इच्छाएं मत करो। क्योंकि दुर्भाग्य से आपकी इच्छाएं पूरी हो सकती हैं। इस कहावत में निहित सावधानी आश्चर्य के रूप में आती है क्योंकि इच्छाओं के पूरा होने से कैसे नुकसान हो सकता है? एक बार मिजोरम में पावी लोगों का एक गाँव था। गाँव का राजा शक्तिशाली और बुद्धिमान था। इसलिए गाँव में शांति थी। राजा का एक बेटा था। जो अपने पिता की तरह ही बहुत सुंदर और साहसी था। जब वह बड़ा हुआ तो उसने अपने पिता से बाहर जाने और दुनिया देखने की अनुमति मांगी। "मैं गाँव में जीवन से काफी ऊब गया हूँ और मैं अपने लिए कुछ रोमांच चाहता हूँ" उसने अपने पिता से कहा। पिता ने कुछ देर सोचा और फिर कहा "अच्छा आप एक राजकुमार हैं- भविष्य के राजा- आपको बाहर जाना चाहिए और जितना संभव हो उतना सीखना चाहिए। तभी आप एक बुद्धिमान और न्यायपूर्ण शासक बनेंगे। हालाँकि, आपको सावधान रहना चाहिए। क्योंकि गाँव के बाहर आप खुद अकेले ही होंगे।" यह कहते हुए राजा और रानी ने उसे गले लगा लिया और एक सुरक्षित और रोमांचक साहसिक कार्य के लिए आशीर्वाद दिया।

अगले दिन बेटे ने अपनी यात्रा शुरू की। जल्द ही वह अन्य जानवरों और पुरुषों को चुनौती देने लगा। उसने उन सभी को हराया। क्योंकि आखिर क्या वह एक शक्तिशाली और बहादुर राजकुमार नहीं था? कुछ महीने बाद, उसने खुद को एक घने जंगल में पाया। उसे यहां एक भी आदमी या जानवर नहीं मिला। वह हैरान था। उसे पता नहीं था कि वह जिस जंगल में है, वह एक वन दैत्य के आधीन था। जिसने किसी भी जीवित व्यक्ति को अपने जंगल में प्रवेश करने की अनुमति नहीं दी थी। राजकुमार को जंगल में कोई भोजन और कोई आश्रय नहीं मिला। कुछ दिनों तक वह खाने के लिए कुछ नहीं पाया। वह भूख से कमजोर हो गया और एक दिन वह जंगल के फर्श पर गिर गया।

"आह! मैं अब मर रहा हूं। मेरी गरीब माँ और पिता मेरे लिए अनावश्यक रूप से प्रतीक्षा करेंगे क्योंकि मैं उनके पास कभी वापस नहीं जा पाउँगा। जल्द ही वह मूर्छित हो गया। थोड़ी देर बाद वह उठा और उसने पाया कि एक सुंदर युवती उसके पास बैठी थी। वह झटके से उठा लेकिन वापस गिर गया क्योंकि वह अभी भी बहुत कमजोर था। "कृपया लेट जाओ। तुम ठीक नहीं हो" युवती ने मीठी आवाज़ में कहा। तीन दिन और तीन रात तक उसने बड़ी सावधानी से उसकी देखभाल की। उसने उसे स्वादिष्ट भोजन और शीतल जल पिलाया और जल्द ही राजकुमार स्वस्थ हो गया।

वह उस लड़की के बारे में जानने को उत्सुक था और उससे पूछा कि वह कौन थी और वह इतने घने जंगल में क्या कर रही थी? कन्या ने उसे बताया कि वह जंगल के देवता की बेटी थी। उसने यह भी बताया कि उसके पिता को जंगल में आने वाले किसी भी व्यक्ति से बहुत जलन थी। "जो कोई भी यहां आता है मेरे पिता उसका वध कर देते हैं।" उसने दु:ख के साथ कहा। राजकुमार डर गया लेकिन लड़की ने उससे कहा कि उसे चिंता करने की ज़रूरत नहीं है क्योंकि अब उसके पिता उसे नहीं मार सकते। राजकुमार को उसके आश्वासनों से राहत मिली और उसने उससे शादी करने की भीख माँगी। युवती शरमाते हुए उनके अनुरोध पर सहमत हो गई। दोनों ने शादी की और वन दैत्य ने उन्हें आशीर्वाद दिया।

राजकुमार ने अपने ससुर से अनुरोध किया कि वह अपनी दुल्हन को अपने माता-पिता का आशीर्वाद लेने के लिए अपने घर ले जाने की अनुमति दें। वन दैत्य सहमत हो गए और तुरंत उनका जादू टूट गया और जादुई रूप से जंगल तेज धूप के साथ जीवित हो गया। चिड़िया चहकने लगी और जानवरों को इधर-उधर भागते देखा जा सकता था। पेड़ों ने हल्की हवा में नृत्य किया। सात दिनों और सात रातों के लिए वे चले और आखिरकार वे राजकुमार के गाँव पहुँचे। उन्हें बहुत उत्साह और खुशी के साथ अपनाया गया। उसके माता-पिता की खुशी कोई सीमा नहीं थी। इतनी प्यारी बहू पाकर वे बहुत खुश हुए।

वे सभी आनंद-पूर्वक रहने लगे। एक साल आनंद में बीत गया। एक दिन, राजकुमार ने एक खूबसूरत गांव की लड़की को देखा और उससे प्यार हो गया। वह शादी का प्रस्ताव लेकर उसके पास पहुँचा। लड़की मान गई लेकिन उससे शादी करने के लिए एक शर्त रखी। "मैं तुमसे शादी करूँगी पर तभी जब तुम अपनी पहली पत्नी को छोड़ दोगे" राजकुमार को नहीं पता था कि वह ऐसा कैसे कर सकता है। उसने अपने माता-

पिता से उसकी दुविधा के बारे में पूछा। ऐसा शर्मनाक सुझाव सुनकर माता-पिता हैरान रह गए। "आप अपनी पत्नी को छोड़ने के बारे में कैसे सोच सकते हैं? वह आपकी पत्नी है और वह हमेशा हम सभी के प्रति इतनी दयालु और प्रेमपूर्ण रही है। नहीं, आपको ऐसे अनुचित अनुरोधों के बारे में सोचना भी मना है। " उन्होंने गरज कर कहा।

राजकुमार जानता था कि उसके माता-पिता उसकी दलीलों पर विचार करने के लिए कभी नहीं झुकेंगे। वह एक बार फिर उस लड़की के पास वापस चला गया। पर लड़की अपनी शर्त पर अड़ी हुई थी। राजकुमार ने इसके बारे में सोचा और महसूस किया कि वह तभी शादी कर पाएगा, जब उसकी पत्नी किसी तरह से मर जाएगी। उसने उसे मारने की योजना बनाई। वह जानता था कि यह गाँव में नहीं हो सकता क्योंकि उसके माता-पिता किसी भी हालत में इस तरह की दुष्ट हरकतें नहीं होने देंगे। उसके नए प्रेम ने उसे कहा कि वह पत्नी को पास के जंगल में ले जाए और उसे मार डाले और दिखावा करे कि किसी जानवर ने उसे मार डाला है। उसने चालाकी से अपनी पत्नी से अनुरोध किया कि वह उसके साथ जंगल जाए। आश्वस्त पत्नी स्वेच्छा से पति के साथ चली गई। एक बार गाँव के बाहर पहुंचते ही राजकुमार ने चाकू निकाला और इससे पहले कि पत्नी को कुछ पता चल सके कि उसके दिमाग में क्या है। उसने उसके हृदय में छुरा भोंक दिया।

पत्नी को तेज दर्द हुआ और उसके गहरे घाव से खून बहने लगा। लेकिन यह क्या था? राजकुमार भी नीचे गिर गया और उसके दिल पर रहस्यमय तरीके से बने घाव से खून बह निकला। उसने अपनी पत्नी की तरफ देखा जो उसे बहुत दुःख के साथ देख रही थी और वह बोली "हे मेरे प्राणप्रिय पति ये तुमने क्या किया है? उस दिन मेरे पिता के जंगल में तुम मर गए थे। मैं अपना आधा हृदय आपके साथ साझा करके आपको जीवित किया था- यही कारण है कि मेरे पिता आपको नहीं मार सकते थे। अब आपने मुझे मारकर खुद को मार लिया है क्योंकि हमारे पास सिर्फ एक हृदय है।

मिचेल रोजर्स-अगाथा क्रिस्टी की 'एंडलेस नाईट' कथा का मुख्य किरदार एक युवा व्यक्ति है, जिसने कई तरह के पेशों एवं उद्यमों पर हाथ आजमाया है। लेकिन किसी भी तरह से वह सफल नहीं हुआ। अपने अनदेखे, अनजाने स्वप्नों से वह बेचैन है।

उसे नहीं पता कि वह क्या ढूंढ़ रहा है। वह अपना व्यवसाय, अपना स्थान और यहां तक कि अपनी प्रेमिकाओं को बदलता रहता है। वह दृढ़ता से महसूस करता है कि उसे अभी तक वह नहीं मिला है, जिसकी उसे तलाश है। यह प्रेम हो सकता है, यह एक घर हो सकता है या यह एक चमत्कार हो सकता है। लेकिन उसे यकीन है कि एक दिन वह उसे पा लेगा। किसी भी अन्य व्यक्ति की तरह, वह एक अच्छे, सुखी जीवन का सपना देखता है। एक अच्छी लड़की और एक खूबसूरत घर। जिसमें वह दोनों एक साथ खुशी से रह रहे हैं। वह जिप्सी के एक्रे नामक एक सुंदर घर में आता है और स्थानीय निवासियों द्वारा यह कहे जाने के बावजूद कि वह घर शापित है। वह तुरंत ही उसमें अपना भविष्य देखना शुरू कर देता है। वह इस तरह की हर एक चेतावनियों को नकारता जाता है और इसे अपना घर बनाने के लिए तत्पर रहता है। लौटते समय, वह अचानक उस चेहरे

को देखता है जो उसके मन-मस्तिष्क में बसा है और जिसकी उसे बरसों से तलाश है- एक ऐसा चेहरा जो हमेशा से उसका सपना था। उसका अपना था। चेहरा एक प्यारी लड़की ऐली का है। दोनों तुरंत एक दूसरे की तरफ आकर्षित होते हैं और उनकी बातचीत शुरू होती है। दोनों सहज रूप से जानते हैं कि वे एक-दूसरे के लिए हैं। रोजर्स उसे अपने बारे में, अपने सपने और जिप्सी के एक्रे के बारे में तथा अपनी योजनाओं के बारे में बताता हैं। ऐली खुद के बारे में बात करती है। विशेष रूप से ग्रेटा का उल्लेख करती है, जो उसकी एक प्रिय मित्र और निरंतर सखी, जिस पर ऐली को संपूर्ण विश्वास है। रोजर्स और ऐली अक्सर मिलने लगते हैं और जिप्सी के एक्रे उनके घर पर चर्चा करते हैं! इस बीच जिप्सी के एक्रे को एक अज्ञात नीलामीकर्ता द्वारा खरीद लिया जाता है।

रोजर्स की माँ उसमें हुए बदलाव को देखती है और सावधानी से इस बदलाव के कारण को पूछती है। हिचकिचाते हुए रोजर्स इस स्वप्न सुंदरी के बारे में बताता है और उससे विवाह करने की इच्छा व्यक्त करता है। माँ उसके इस निर्णय से प्रसन्न नहीं होती है और अपने बेटे से इस निर्णय पर पुनः विचार करने को कहती है। उसके ऐसा बोलने पर माइक रोजर्स नाराज हो जाता है और वह अपनी मां से दूर चला जाता है।

इस बीच ऐली अपनी पेरिस यात्रा से लौटती है। दोनों फिर से मिलते हैं और वह उसे बताती है कि उसकी मुलाकात सेंटोनिक्स- एक पूर्णतावादी वास्तुकार से हुई (जो चमत्कारिक दृष्टि रखता है) और जो उनका सपनों के घर बनाने के लिए तैयार है। तब माइक दु:खी हो कर बताता है कि जिप्सी एक्रे पहले से ही बेच दिया गया है। ऐली मुस्कुराती है और उसे बताती है कि वह ऐली ही है जिसने इसे खरीदा है। तब माइक को पता चलता है कि एली एक अत्यंत समृद्ध उत्तराधिकारी है। वह उनसे उनके बीच के इस अंतर को नजरअंदाज करती है और उम्मीद करती है कि यह अंतर उनके बीच कोई मायने नहीं रखना चाहिए। दोनों अगले सप्ताह ही विवाह बंधन में बंध जाते हैं। माइक आखिरकार वह सब कुछ पा लेता जिसकी उसने कभी आशा की थी। उसका घर और उसका प्यार दोनों उसे मिल जाते हैं। दोनों सहमत हैं कि यह उनके जीवन का सर्वाधिक आनंदमय पल है। तब ऐली माइक को सूचित करती कि है उसकी सखी उनके साथ रहने के लिए आ रही है। माइक रोजर्स के लिए ये दु:खद समाचार रहता है क्योंकि वह सिर्फ और सिर्फ एली के साथ रहना चाहता है। लेकिन एली की ख़ुशी का ध्यान रखते हुए वह ठंडेमन से स्वीकृति दे देता है और ग्रेटा उनके घर का एक हिस्सा बन जाती है। माइक और ग्रेटा के बीच एक गहरा अविश्वास पनपता है और जिससे एली खुश नहीं है।पर इस संबंध में वह कुछ भी नहीं कर सकती है। माइक सदैव महसूस करता है कि एली पर ग्रेटा का प्रभाव एली के लिए अहितकर है।

ऐली माइक को अपनी सौतेली माँ से मिलवाना चाहती है और खुद माइक की माँ से मिलने के लिए बहुत उत्सुक है। पर माइक नहीं चाहता है। ऐली जिप्सी के अभिशाप को थोड़ा गंभीरता से लेती है और आश्चर्यजनक रूप से एक भयानक वातावरण उन्हें घेर लेता है। मौसम भयानक है और फिर वे पाते हैं कि उनकी खिड़कियों पर पत्थर फेंके जा रहे हैं। ऐली चिंतित है। हालांकि माइक उसे बताता है कि यह किसी गांव के लड़के की शरारत है। उन्हें यकीन है कि वे कभी घर नहीं छोड़ेंगे।

वे नए घर में अच्छी तरह से बस जाते हैं और गाँव के अन्य लोगों से परिचित हो जाते हैं। क्लाउडिया हार्डकैसल और ऐली अच्छे दोस्त बन जाते हैं क्योंकि उन्हें घुड़सवारी में आम दिलचस्पी है। इस बीच माइक और ग्रेटा के बीच में बड़ा झगड़ा हो जाता है। बाद में एली की ख़ुशी का ध्यान रखते हुए दोनों झगड़ा ख़त्म करने की कोशिश करते हैं। सेंटोनिक्स माइक से कहता है कि वह ग्रेटा से छुटकारा पा ले क्योंकि वह दुष्ट है। माइक अपने घर में ग्रेटा को नहीं चाहता है लेकिन वह एली को चोट नहीं पहुंचाना चाहता है।

एक दिन माइक की माँ चल बसती है और फिर माइक को पता चलता है कि ऐली पहले ही अकेले और बिना माइक की जानकारी के उसके घर जा चुकी है और उसकी माँ से मिली भी है। माइक इससे खुश नहीं हैं। एक दिन ऐली सवारी के लिए जाती है और वापस नहीं आती है। बाद में उसकी लाश मिलती है। जिसमें उसे कोई बाहरी चोट नहीं लगी। ये समझा जाता है कि हृदयगति रुकने से ही उसकी मृत्यु हुई है। लगता है जिप्सी का अभिशाप सच हो गया है। ऐली को अमेरिका में दफन किया जाना था। इसलिए उसके अंतिम संस्कार और अन्य कानूनी मुद्दों की व्यवस्था के लिए माइक वहां जाता है। इस कठिन समय में ग्रेटा बहुत बड़ी मददगार साबित होती है।

इस बिंदु पर पर आकर पाठकों को माइक और ग्रेटा द्वारा किये गए भद्दे और घृणित विश्वासघात का एहसास कराया जाता है। ऐली के ज़िन्दगी में आने से पहले ही माइक और ग्रेटा लंबे समय से प्रेमी थे। वे शादी करना चाहते थे। लेकिन दोनों अमीर होने का सपना भी देखते थे। ग्रेटा को पता था कि ऐली कितना भरोसेमंद और निःसहाय थी। उन्होंने जिप्सी के एक्रे के पास रोजर्स और ऐली की पहली बैठक की योजना बनाई थी। वहां जान बूझकर ऐसा वातावरण निर्मित किया गया कि एली माइक से प्यार कर बैठे और योजना के अनुसार उसे माइक से प्यार हो गया। दोनों का विवाह भी एक सुनियोजित षड्यंत्र का हिस्सा ही था। जिप्सी का अभिशाप भी षड्यंत्र का ही हिस्सा था। जिसे माइक और ग्रेटा ने बड़ी दुष्टता से निष्पादित किया था। यहां तक कि उसकी मौत, बल्कि उसकी हत्या की योजना रोजर्स और एली से मिलने से पहले ही बनाई गई थी। अब माइक और ग्रेटा के पास वह सब कुछ था जो वे चाहते थे। उसके पास ग्रेटा, उसके सपनों का घर और उसके पास मौजूद सारी दौलत थी।

माइक जिप्सी के एक्रे में वापस आता है और हर जगह उसे एली की छाया दिखाई देती है। जिसकी आँखों में कोई क्रोध या दुःख नहीं है। वो सिर्फ प्रेमपूर्ण नज़रों से उसकी तरफ तो देखती हैं पर उसे नहीं देखती है। इस बात से वो अत्यंत अशांत हो उठता और उसे अपने पाप का आभास होने लगता है। उसे समझ आता है कि वो एली से सच्चा प्यार करता था। परन्तु अपनी योजना के चक्रव्यूह में स्वयं फंस कर वो इस हृदय की इच्छा को समझ ही नहीं पाता है और अपने साथ ही विकराल विश्वासघात कर बैठता है। वह एली से प्यार करता था और ग्रेटा से नहीं। इसके साथ ही उसे एक और झटका तब लगता है जब वो ऐली के अभिभावक और ट्रस्टी का पत्र खोलता है। जिसमें उसकी और ग्रेटा की उस समय की फोटो है जब वो एली से मिला भी नहीं था। उन लोगों का अपराध पकड़ा गया था। एली की लाश की जांच से उसकी हत्या भी सिद्ध हो गयी थी।

इस दोहरे झटके से उसका दिमाग चकरा गया और उसने ग्रेटा की गला दबाकर हत्या कर दी। जब वह उसे मार रहा था तो वह अत्यंत आनंदित था।

गाँव के लोग भी समझ चुके थे कि वह एली का हत्यारा है। वह उन्हें बताता है कि वह ऐली से सच्चा प्यार करता था और ये कि उसको मार कर कर वो खुद भी ज़िंदा नहीं रह सकता। दोनों कहानियों की विषय-वस्तु में गहरी समानता है। पहला समानांतर 'द एंडलेस नाइट' में प्रमुख पात्रों माइक रोजर्स की मौलिक बेचैनी और मिज़ो कहानी में राजकुमार से संबंधित है। माइक रोजर्स तत्वतः एक अशांत पुरुष है- आज यहां और कल वहां; लगातार अपनी नौकरियों को बदलते हुए, अपने रोमांटिक रिश्तों में प्रतिबद्ध नहीं है और यह निश्चित नहीं है कि क्या चाहता है या वो क्या खोज रहा है। क्या कुछ उसकी अंतहीन भटकन को रोक सकता है? मिज़ो कहानी में राजकुमार के पास सब कुछ है और फिर भी वह बेचैन है और साहसिक कार्य पर निकल जाता है। फिर वो भी यह नहीं जानता कि भाग्य ने उसके लिए क्या लिख रखा है। एक घुमंतू मनुष्य को अक्सर ईर्ष्या से देखा जाता है।उन्हें भाग्यशाली कहा जाता है क्योंकि वह स्वतंत्र जीवन जीते हैं। हमारी कहानियों के लेखक अनावश्यक भटकने वाली अच्छाई के बारे में आश्वस्त नहीं हैं। वे इसे चरित्र में एक दोष के रूप में व्याख्या करते हैं। उनकी नज़रों में भटकने वाले लोग वो हैं जो शायद दिन-प्रतिदिन के जीवन की कठिनाइयों से बच रहे हैं। और शायद छल-कपट उनका स्वाभाविक स्वरूप है। उनका मानना है कि उनकी दूसरों के प्रति कोई ज़िम्मेदारी नहीं है तथा दूसरों का शोषण करने का उन्हें अधिकार है। बेचैनी, उथल-पुथल, उदासी और नाराजगी का दोष हमारे आस-पास की दुनिया पर नहीं मढ़ा जा सकता। ये आंतरिक शून्य से पैदा हुए राक्षस हैं। वो मानते हैं की उन्हें "जो अच्छा लगता है" वो "जो उनके लिए अच्छा है" से ज़्यादा महत्वपूर्ण है और अखंडता और चरित्र के बनिस्बत सुविधा और अधिकार उनके जीवन का आधार है। उनका साहस और घुमन्तू स्वभाव छद्म है, छलावा है।

इन कथाओं में दूसरी समानता उस स्वप्न सुंदरी की है जिसे हमारे नायक खोज रहे हैं और जो उन्हें प्राप्त होती है। दोनों को अपना प्यार अकस्मात और अचानक मिल जाता है। उनकी प्रेम कहानी एक सामान्य परी-कथा जैसी सादगी का अनुसरण करती है। चीजें सहजता से होती हैं और कुछ ही समय में उनकी शादी हो जाती है। वे खुशी से विवाहित होने के लिए किसी भी प्रकार की बाधाओं का सामना नहीं करते हैं।

तीसरी समानता दूसरी प्रेमिका के आगमन में निहित है। रोजर्स के मामले में यह ग्रेटा है और राजकुमार के मामले में यह गांव की सुंदर लड़की है। क्या यह घुमन्तु जीवन का स्वाभाविक भाग्य है? क्या वे एक रोमांस (साहसिक) से दूसरे में जाने के लिए नियत हैं? लेखकों के अनुसार घुमन्तू स्वभाव का मूल दुष्टता में है और किसी निर्दोष साहसिक इच्छा में नहीं। चौथी समानता विश्वासघात है। विश्वासघात भी परम विश्वासघात है। छल भी उस भोले-भाले इंसान के साथ जो अपना सर्वस्व समर्पण कर चुकी है! और जो अब आने वाली दुष्टता में पूरी तरह से निस्सहाय है! यह पाप में लिखा गया विश्वासघात है। राजकुमार और रोजर्स बिना किसी ग्लानि के सुनियोजित रूप से हत्या की योजना बनाते हैं और वे इसे पूरी निर्दयता से अमल भी करते हैं।

पाँचवी समानता यह है कि अंत में उन्हें समझ आता है कि धोखा तो उन्होंने खुद को ही दिया है। मिज़ो कहानी में राजकुमार को देर से पता चलता है कि उसका अपना हृदय तो पत्नी के हृदय की धड़कनों से जीवित था। जैसे ही वह उसे मारता है वह खुद मर जाता है। रोजर्स के मामले में एली के मृत होने के बाद उसे पता चलता है कि एली उसका निर्विवाद प्रेम थी। यह देर से ये अनुभव की गयी सच्चाई। उसे असहाय और आशाहीन क्रोध से भर देती है। वह ग्रेटा को और खुद को भी नष्ट कर देता है।

कहा जाता है कि इच्छाएं न करें क्योंकि दुर्भाग्यवश आपकी इच्छाएं पूरी हो सकती हैं। यह एक गहन कथन है। क्योंकि जैसे-जैसे मनुष्य की कामनाओं का परिणाम स्वाभाविक रूप से उसके सामने आता है तब हम समझ पाते हैं कि हमारी कामनाएं कितनी विनाशकारी थी- औरों के लिए भी और अपने लिए भी। ये शायद मानव जीवन की सबसे बड़ी त्रासदी है। इस कहावत का मूल अर्थ यही है कि हमारी अपनी कामनाएं ही हमारे अभिशाप का स्रोत हैं, इसलिए कामनाएं गहन सोच विचार के बाद ही करनी चाहिए। घातक इच्छा की अवधारणा प्राचीन युगों से समझी जाती रही है। शायद सबसे प्रसिद्ध मिदास की कहानी है। मिदास एक राजा था। जो सोने से प्यार करता था। उसने देवता से निवेदन किया कि वह उसे ऐसी शक्ति दे, जिससे उसका स्पर्श पा कर सभी कुछ सोने में परिवर्तित हो जाये। देवता ने उसे आगाह किया और ऐसी इच्छा करने से पहले उसे फिर से सोचने के लिए कहा। पर मिदास के निरंतर निवेदन से हार कर देवता ने उसे वह शक्ति अंततः प्रदान कर दी। मिदास अत्यंत प्रसन्न हुआ और उसने सब कुछ सोने में बदल दिया। जल्द ही उसका महल बगीचे के पेड़ और पौधे और बहुत कुछ स्वर्ण में परिवर्तित हो गया। मिदास दुनिया में सबसे अमीर व्यक्ति होने के लिए खुश था और उसमें और भी स्वर्ण बनाने की इच्छा प्रबल थी, लेकिन फिर वह थका हुआ महसूस करता है। वह बैठ गया और यहां तक कि उसने पानी को टटोलने की कोशिश की। पानी उसके स्पर्श से सोने में बदल गया। घबराकर उसने खाना खाने की कोशिश की जो फिर से सोने का हो गया। उसे अब ऐसी भयानक इच्छा करने की मूर्खता का एहसास हुआ। इससे पहले कि वह अपना स्पर्श खोना चाहता उसकी बेटी आ गई और दुर्भाग्य से उसने उसे गले लगाने का प्रयास किया। वह भी सोने में बदल गयी। अब वह आँसू के साथ पश्चाताप करने लगा। देवता ने उस पर दया की और उसे अपने सुनहरे स्पर्श से स्वतंत्र किया।

ऐसे विषय आम हैं। हम ऐसी कहानियों में आते हैं जहाँ एक नायक अमरता की तलाश करता है लेकिन फिर से अमर होने का पछतावा करता है। हाल ही में एक फिल्म में नायक ईश्वर बनना चाहता है और एक बार उसके पास अचानक ईश्वर की शक्ति आ जाती है।तब उसे समझ आता है कि ईश्वर होना कितना असंभव है और जल्द ही वह ईश्वरत्व का त्याग करना चाहता है।

हमारी दो कहानियाँ भी इच्छाओं के घातक परिणामों पर बनी हैं। अंग्रेजी अपराध की कहानी में रोजर्स ऐली की मृत्यु के बाद ही समझ पाता है कि उसकी अपनी ख़ुशी एली के साथ रहने में निहित थी। न कि एली की मृत्यु में। वही उसकी कामना थी और वही उसका जीवन भी। अपनी भद्दी योजनाओं में उलझ कर उसे ये सत्य समझ ही नहीं आया था। कहानी की अंतिम पंक्तियों में लिखा है कि "कुछ लोग मीठे आनंद के लिए पैदा होते हैं तो कुछ अंतहीन रात में तड़पने के लिए पैदा हुए हैं।" कहानी के अंत में ये स्पष्ट है कि एली तो

मीठे जीवन के लिए पैदा हुई थी। उसके साथ धोखा हुआ पर वो अपनी छोटी ज़िन्दगी और मौत में भी आनंदित थी- उसने जो चाहा वो पाया था। इसके विपरीत रोजर्स जो अपने आप को चतुर समझता था। अँधेरी रातों में तड़पने के लिए बना था। जो चाहता था वो अपने हाथों से खुद खो देने के लिए अभिशप्त था। माइक रोजर्स देर से समझ पाता है कि धोखा उसने सिर्फ एली को नहीं वरन अपने आप को भी दिया था। मिज़ो लोक कथाओं के लिए भी यही सच है। राजकुमार ने अपनी प्यारी पत्नी की हत्या करते हुए उसकी जान ले ली। बिना ये समझे कि उसकी अपनी ज़िन्दगी तो उसकी पत्नी की ज़िन्दगी पर आश्रित थी। दोनों नायक बुद्धिहीन थे। उन्होंने अपना आनंद फेंक कर अनंत दु:खों को अपना लिया। जब हम हृदय से नहीं बल्कि स्वार्थ से देखते हैं तो भूल और पाप का ही परिणाम प्राप्त करते हैं।

सिक्किम की एक सुंदर तामांग लोककथा में बताया गया है कि कैसे भगवान पेंग दोरजय एक गोरल (पहाड़ी बकरी) की हत्या कर देते हैं। अपनी पत्नी की झिड़कियों से उन्हें अपने कृत्य की निरंकुशता की अनुभूति होती है। तब प्रायश्चित के लिए वो संगीत और नृत्य का निर्माण करते हैं तथा आखेट को मनोरंजन के माध्यम के रूप में पूरी तरह अस्वीकार कर देते हैं। आज भी तमांग लोग गाते हैं:

''हे नृतक तुम नृत्य करो

यदि पृथ्वी हिलती है तो उसे हिलने दो

अगर आसमान कंपकपाता है

तो उसे कांपने दो

परन्तु ध्यान रहे तुम्हारे नृत्य से

किसी को क्षति न हो जाए

हे नृतक तुम नृत्य करो''

तात्पर्य यही है कि हम सभी को अपने आनंद पाने का अधिकार वहीं तक है जहाँ तक किसी और को चोट या कष्ट न पहुंचे। जब तक हम इस सत्य को नहीं स्वीकारते और नहीं प्रतिगृहित करते तब तक हम अपने आप से विश्वासघात कर काली रातों में तड़पने के लिए अभिशप्त रहेंगे। कहानियों में कुछ और भी समानताएं हैं। उनकी माताएँ उनके दुष्ट स्वाभाव को देखती और समझती हैं। रोजर्स की मां उसे एली से शादी करने से हतोत्साहित करती हैं क्योंकि उन्हें ज्ञात है कि मस्तिष्क में जो विचार हैं वो एली के हित में तो कदापि नहीं हैं। कोई माँ अपने पुत्र-पुत्रियों के अमंगलकारी कृत्यों से भयभीत रहती है क्योंकि उसे ज्ञात है कि उन अमंगलकारी कृत्यों का साया देर-सबेर उनके बच्चों पर भी पड़ेगा। मिजो कहानी में भी माता-पिता अपनी बहू को छोड़कर गांव की लड़की के साथ पुत्र के प्रेम का कड़ा विरोध करते हैं। कहानियों में अपने-अपने बेटों की बुराई न

केवल स्वीकार की गयी है बल्कि उन बुरे कृत्यों को रोकने के असफल प्रयास भी माता-पिता करते हैं। इसका तात्पर्य यह है कि बुराई का अस्तित्व मनोभावों में होता है और ये वंशानुगत नहीं है। अंततः अपने कर्मों का दायित्व हम स्वयं पर है- चाहे अच्छा हो या बुरा।

अंत में हम यह निष्कर्ष निकालते हैं कि हमने जो दो कहानियाँ चुनी हैं। वे एक दूसरे की सटीक प्रतिकृति हैं। जबकि उनकी उत्पत्ति अलग-अलग हुई है। सामयिक और भौगोलिक दृष्टि से दोनों में कोई साम्य नहीं है। घातक इच्छा की अवधारणा जिसने समय-समय पर मानव मानस को छुआ है। दोनों कथाओं का केंद्र-बिंदु है। यह सिखाता है कि विश्वास की कीमत विश्वासघात है। विश्वासघात तभी हो सकता है जब आप प्यार करते हैं। ये कथाएं सिखाती हैं कि जब आप युवा होते हैं तो यह कल्पना करना आसान होता है कि आप जिस चीज की आकांक्षा करते हैं।आप उसके लायक भी हैं और उस पर आपका ईश्वरीय अधिकार भी है। यही कारण है कि जब आप कुछ पाने के लिए अनैतिक योजना बनाते हैं और उस पर अमल करते हैं। तब आप अपनी कब्र स्वयं खोद लेते हैं। अपने हित में किये गए कर्मों में अनैतिकता का कोई स्थान नहीं होता है। परम आनंद चरित्रहीन व्यक्ति के लिए संभव नहीं है। यह इस तथ्य को भी रेखांकित करता है कि जब सेवा और कृतज्ञता की भावना के स्थान पर पात्रता की भावना को प्रतिस्थापित की जाती है तो हम वास्तव में रिश्तों, समाज और मानवता को मार डालते हैं।

यहाँ हम कह सकते हैं कि उत्तर-पूर्व की कथाएं सिर्फ मनोरंजन के लिए नहीं गढ़ी गयी थी। उनमें वही परिपक्वता है जो हम विकसित साहित्य से अपेक्षा रखते हैं। उनका दर्शन उतना ही परिपूर्ण है जितना कि विश्व के सर्वश्रेष्ठ साहित्य में मिलता है। उनकी कथाओं को सिर्फ कथा समझना एक भूल है और जो हम अहंकार में सदैव करते आए हैं। आवश्यकता है कि हम उत्तर पूर्व की लोक कथाओं का पुनः अवलोकन कर उनकी गहराईयों को समझें। ये तभी संभव है जब हम इन आदिवासियों की आस्थाओं को आत्मसात करें। क्या हम ऐसा करने के लिए उन्मुख हैं?

*(**लेखकीय परिचय:** प्रोफेसर अजेय झा पूर्वोत्तर भारत के लोकवृत्त के विशेषज्ञ हैं। इस क्षेत्र में उनके द्वारा कई महत्त्वपूर्ण और उल्लेखनीय कार्य संपन्न हो चुका है। वर्तमान में SMIT, सिक्किम में अध्यापन कार्य से संबद्ध हैं।)*

नेपाली साहित्य में आयामिक आंदोलन

बिर्ख खडका डुवर्सेली

बीसवीं सदी के सातवें दशक के प्रारंभ में हिंदी साहित्य में नई कहानी, नई कविता, अकविता, आधुनिक कहानी की चर्चा जब जोर पर थी, तब नेपाली साहित्य में एक नया वाद या प्रयोग 'आयामवाद' के नाम से फलने-फूलने लगा था। दार्जिलिंग में सन् 1963 के अप्रैल महीने में "तेस्रो आयाम" पत्रिका का प्रकाशन बहुत बड़ी साहित्यिक घटना थी। यहीं से नेपाली साहित्य में आयामिक लेखन की विधिवत घोषणा हुई। कवि, कथाकार, कहानीकार, निबन्धकार, आलोचक खेमों में बँट गए। एक बड़ा खेमा आयामिक लेखन का पक्षधर बना और आगे बढ़ता ही गया।

आज से लगभग छह दशक पहले तीन उत्साही ऊर्जावान युवा साहित्यकारों ने "तेस्रो आयाम" (तीसरा आयाम) पत्रिका का प्रकाशन शुरू किया। एक सुनियोजित और परिकल्पित आंदोलन को जन्म दिया, जिसने नेपाली साहित्य में भाषा-शिल्प, विषय-चयन तथा प्रस्तुतिकरण की दृष्टि, सोच में नवीन प्रयोग और विचार को सुनिर्दिष्ट राह दिखायी। यह आयामिक आंदोलन के नाम से विख्यात हुआ। इस आंदोलन ने नेपाली साहित्य में ऐसी जगह दखल किया कि इसका जिक्र किये बिना नेपाली साहित्य का इतिहास पूर्ण नहीं हो सकता है। ये तीन उत्साही ऊर्जावान युवा थे- इन्द्र बहादुर राई, बैरागी काइँला और ईश्वर वल्लभ। इन तीन विभूतियों में केवल बयासी वर्षीय बैरागी काइँला आज भी लेखन में सक्रिय हैं। यहाँ यह उल्लेख करना सांदर्भिक होगा कि बैरागी काइँला की कविताओं का हिंदी अनुवाद प्रकाशित हो गया है। "बैरागी काइँला की कविताएं" नाम से यह संग्रह उपलब्ध है। इस संग्रह के संपादन का दायित्व मैंने ही लिया है और अनुवादकों में मेरे अलावा काडमांडौ, नेपाल के प्रतिष्ठित विद्वान एवं विदुषी डॉ. रामदयाल राकेश और डॉ. संजीता वर्मा हैं।

यूँ तो समयकाल में, इसके पहले या बाद में नेपाली साहित्य में कई आंदोलन और प्रयोग हुए, जिनमें चर्चित हैं- 'बूट पालिस आंदोलन', 'अमलेख अभिव्यंजना', 'असंतुष्ट जमात', 'सडक-कविता-क्रांति', 'कोलाज अभियान', 'तरलवाद', 'विचलनवाद', 'समावेशी'और 'हस्तक्षेपी' आदि। सभी आंदोलनों में अजीबोगरीब प्रयोग परोसे गए। सरल सवालों की खोज में बहस के जटिल मुद्दे उठाए गए, पर सब आए-गए हो गए। लेकिन आयामिक आंदोलन की छाप गहरी पड़ी क्योंकि आंदोलन के फलस्वरूप लेखन संसार में उथल-पुथल ही मच गई। साहित्य लेखन में अध्ययन-मनन-चिंतन के प्रभाव और प्रतिफलन परिलक्षित होते गए। नई जमातों ने लेखन की नई जमीन खोज ली, नए पाँव पसारे, राग भी बदलने लगे, विविधता के साथ नवीनता का समावेश हुआ। कृतिकारों के स्वर और सुर भी बदलते गए।

जब कवि बैरागी काइँला और ईश्वर वल्लभ की कविताएं चर्चित होती गयीं तो आयामवादी लेखन में आयामों की चर्चा होने लगी जिसके फलस्वरूप समकालीन कविताएं परंपरावादी रूढ़ मान्यता की पटरियों से

निकलने लगीं और रचना-प्रक्रिया में व्यापक बदलाव दिखने लगा। कवियों और कहानीकारों के नज़रिए बदलते गए। विश्व में हो रहे बदलाव के समरूप दृष्टियां वैश्विक होती गयीं। स्वभावत: रूढ़ बिम्बों का प्रयोग थमता गया, तुकबंदी बंद हो गई और कविताओं में दूर दृष्टि नजर आने लगी। इतना ही नहीं, प्रतीक-योजना और मिथक-प्रयोग, बिंब-विधान तथा विषय-चयन में तब्दीलियां ही नहीं आयीं बल्कि नए आकाश और नयी धरती की खोज भी होने लगी।

दूसरी तरफ आख्यान लेखन में इन्द्र बहादुर राई ने भाषा और विचार के विस्तार को साहित्य में तवज्जो दी और स्थूलता से सूक्ष्मता की ओर जाने की राह में पूर्णता दिखायी। एक से बढ़कर एक कहानियां लिखकर उन्होंने जीवन की सूक्ष्म अनुभूतियों में छुपी या दबी संपूर्णता को उजागर करने का बीड़ा ही नहीं उठाया बल्कि खुद को लेखन में संपूर्ण और सशक्त होने के सबूत भी दिए। रचना-विधान के बदलाव के साथ रूढ़िगत मानदंडों में परिवर्तन लाकर सामाजिक, पारिवारिक, मानसिक तथा शारीरिक समस्याओं से जुड़ी संवेदनाओं को लेखन में मान्यता देना ही उनके लेखन का लक्ष्य और सार है। इन्द्र बहादुर राई आधुनिक या उत्तर आधुनिक नेपाली साहित्य में मूर्धन्य कथाकार एवं समालोचक हैं। समीक्षा की उनकी कृति 'नेपाली उपन्यासका आधारहरू' के लिए उन्हें सन् 1977 में साहित्य आकादमी पुरस्कार से सम्मानित भी किया गया।

कविता के क्षेत्र में बैरागी काइँला (असली नाम तिलविक्रम नेम्वाङ) और ईश्वर वल्लभ ने परंपरागत रूढ़ मान्यताओं को नकारा और नई मान्यताएं स्थापित करके अपने अनुगामियों के लिए नए रास्तों का निर्माण किया। 'तेस्रो आयाम' पत्रिका के अगस्त-सितंबर, 1963 के अंक के संपादकीय में अपना पक्ष रखते हुए कवि काइँला ने लिखा है- "आयामिक लेखन यह विश्वास रखता है, बीसवीं शताब्दी की अस्त-व्यस्तता तथा जटिलता पुराने लेखन के ढाँचे के भीतर समाहित नहीं होती है.....आयामिक लेखन की आस्था है- आधुनिक लेखन से ही आधुनिक मनुष्य की जिंदगी से संलग्न अभिव्यक्ति प्रस्फुटित होती है।" कवि का मानना है कि- "विचार पक्षाघात की मार पड़े हाथ हो गए हैं/ मैं कुछ न होने जैसा ही हो गया हूँ।"

कवि काइँला की कविताओं का पाठक और अनुवादक तथा कविता-संग्रह के हिंदी अनुवाद का संपादक होने के नाते इतना कहने का हक मेरा बनता है कि कविताएं सरल तथा सहज नहीं हैं और विश्व के विख्यात दर्शनशास्त्रियों और चिंतकों की वैश्विक जीवन-दृष्टि और सभी धार्मिक मान्यताओं और आस्थाओं से परिपूर्ण हैं, साथ ही भाषा में प्रचुर क्लिष्टता और जटिलता भी है।

कवि काइँला और ईश्वर वल्लभ की कविताओं में ऐतिहासिक कालखंडों से आज तक के जीवन-संघर्ष की परत-दर-परत खोज है ताकि जीवन का तात्पर्य समझ में आए।

"वह संघर्ष जो शिलाखंड में चिपकता है/ वह स्वतंत्रता जो पत्थर में उकेरी जाती है/ वह मनुष्यता जो परत-दर-परत सदियों से लूटी जा रही है।" ('प्लांचेटको टेबुल'- बैरागी काइँला)

"कंधे पर सिर झुलाते हुए/ इस सड़क पर चलते हैं/ घसीटकर चलते हैं इन्हें/ बिना चेहरे के मनुष्य/ अंधेरे के पैर रोपकर/ रात रात भर इस सड़क पर / फलत: आज सड़क घट गयी है/ चुराता है कौन सड़क के किनारों को?/ सड़क क्यों घटती है/ प्रत्येक रात के आगमन के साथ।"(मातेको मान्छेको भाषण:मध्य रात पछिको सडकासित---बैरागी काइँला)

"मृत्यु, आज जिंदगी के करीब होकर गयी।/ छोटी दुर्घटना को छुट्टे पैसे से खरीद न पाकर ।/ मृत्यु , आज जीवन के बाजार-भाव/ का पता लगाकर गयी।" (बैरागी काइँला)

"चट्टान पर ले जाकर फेंक दो/ यह दूब की जड़/ कुछ दिन प्रतीक्षा करो/ देखो, वहीं पनपती है।"

(बंद कुहिरोमा नानीको पाइला - ईश्वर वल्लभ)

"नए जन्म लेने वालों की/ प्रतीक्षा कर रहा हूँ/ बूढ़ा पेड़/ देख रहा हूँ मैं/ हाइड्रा के सिर गिन रहा हूँ!"

(आयतन एक टुक्रा जिंदगी- ईश्वर वल्लभ)

'संदर्भ ईश्वर वल्लभका कविता' की समीक्षा करते हुए इन्द्र बहादुर राई ने ईश्वर वल्लभ की कविताओं के संदर्भ में आए सैद्धांतीकरण का क्रमबद्ध विवरण देने की सफल चेष्टा की है और अनुभूति के अनुरूप लिखने की बात का जिक्र करते हुए कविता में 'सम्पूर्णता' और 'वस्तुतता' भरपूर परोसने का खुलासा भी किया है। वस्तुतता भी स्थिति है जीवन और कला की। आयामिक लेखन के आख्यानकार इन्द्र बहादुर राई का के अनुसार वस्तुतता देखने की दो विधियाँ हैं- प्रत्यक्षता की विधि और परोक्षता की विधि।

'तेस्रो आयाम' के मई 1963 अंक के संपादकीय में आयामवाद की वकालत में राई ने कहा है कि- "अब साहित्य लेखन में मनुष्य की संपूर्णता को उठाने के लिए देखना होगा कि मनुष्य आँख मात्र, कान मात्र, मन मात्र नहीं है। वह सब इन्द्रीय, हृदय, मस्तिष्क का पुंज है और अब लिखे जाने वाले वाक्य और पंक्ति में उसकी संपूर्णता को पकड़ना होगा। ऐसा करके ही हम अपनी प्रत्येक कृति को तीसरे आयाम में ला सकेंगे।"

विभिन्न कृतियों में अभिव्यक्त विचार तथा अंतर्वार्ताओं में बातों को आयामिक लेखन के संबंध और संदर्भ में अध्ययन और विश्लेषण करने पर डॉ. राई के स्पष्टीकरण में ये तथ्य उभरकर आते हैं:

- आयामिक साहित्य सिद्धांत की विवेचना है।
- आयामिक साहित्य अमूर्त साहित्य में पहुँचा है।
- दु ख:पाने वाले आदमी की कथा या कविता उस एक आदमी के दुख की कथा या कविता में मात्र : सीमित न रहे। उससे भी ऊपर उठकर उसमें विशाल दर्शन हो, एक दर्शन का आकाश फैले, एक अंश राजनीति भी रहे और सामाजिक भाष्य बने। यह 'केवल' से 'बहुत' कुछ हो। यही तीसरा आयाम है।
- सामाजिक लेखन को 'आंदोलन' मात्र कहना, प्रयोग मात्र कहने जैसा ही मनचाहा नहीं लगता है।

- हमें विश्वास है, आयामिक लेखन के भीतर ठोस चीज है। देने योग्य कोई 'वस्तु' है।
- प्रत्यक्षण और अनुभूति हम एक 'तत्क्षणता' में बोध और अनुभूत करते हैं।
- आयामिक लेखन ने चित्रकला से प्रशस्त सहायता ली है।
- अभिव्यक्ति और दर्शन से ऊपर उठना हमारा लक्ष्य है।

आयामवाद के परिणाम के रूप में परोसे गए साहित्य के विभिन्न पक्षों को उकेरकर की गयी असंख्य चर्चा-परिचर्चा तथा समालोचना को गौर से विचार करने पर और सूक्ष्म विश्लेषणों का अध्ययन करने पर ऐसा भी लगता है कि आयामिक लेखन के तीनों प्रवक्ता या प्रवर्तक अलग-अलग दिशा की ओर निकल पड़े हैं, तो कभी लगता है वे सम बिंदु हैं। जो भी हो यह तो स्वीकार करना ही पड़ेगा कि आयामिक आंदोलन ने नेपाली साहित्य के लेखन में समय-सापेक्ष नए रास्ते की खोज की है, जिसके फलस्वरूप साहित्य-सृजन में नए नियम निर्धारित होने लगे और चिन्तन और लेखन की दिशा में नए मानदंड का निर्माण भी हुआ। संभवत: इसी कारण तीसरे आयाम के प्रवर्तकों और उनके अनुयायी लेखकों और कवियों की कृतियों में भिन्न और अलग साहित्यिक विशिष्टता परिलक्षित होती है और नए कलात्मक मूल्य स्थापित होते हैं।

आयामवादी प्रवृत्ति के समर्थक और अनुयाइयों की कृतियों में निरंतर गद्य या पद्य लेखन कभी पुरानी रुढ़िग्रस्त मान्यता के पक्ष की ओर नहीं गया। वह उत्तरोत्तर आगे की ओर बढ़ता ही गया। अंततोगत्वा यह कहना ही सर्वथा उचित होगा कि समय के साथ ही साहित्य की विधाएं नए रूप और रंग में सजती संवरती गयी, जिसमें नयी चीज की खोज चलती रही। संभवत: यही नयी खोज नेपाली साहित्य संसार के लिए आयामिक लेखन है।

(**लेखकीय परिचय:** *लेखक नेपाली साहित्य के चर्चित साहित्यकार एवं गंभीर अध्येता हैं। नेपाली-हिंदी के सेतु के रूप में बिर्ख खडका डुवर्सेली की उपस्थिति बहुत ही उल्लेखनीय है।*)

***

हिंदी के अनुष्ठान में अर्घ्य बनी एक पत्रिका : अरुण नागरी

देवराज

अरुण नागरी (अरुणाचली भाषा साहित्य की त्रैमासिक पत्रिका) का प्रवेशांक सन् 1995 में प्रकाशित हुआ था। इसके संपादकीय में कहा गया था, "'नागरी लिपि' को विश्व नागरी का नाम देने वाले सर्वोदयी संत आचार्य श्री विनोबा भावे का यह जन्म शताब्दी वर्ष है। अरुणाचली भाषाओं को जितनी स्पष्टता और सरलता से नागरी लिपि में लिखा जा सकता है, उतनी स्पष्टता से रोमन में नहीं। आचार्य भावे समस्त देश को नागरी के द्वारा जोड़ना चाहते थे। देश को जोड़ने और देश को जानने की दिशा में किया जाने वाला हमारा प्रयास कैसा रहता है, वह भविष्य के गर्भ में छोड़ते हैं।" (पृ. 4)। प्रवेशांक की मुख्य सामग्री में कविताओं के पश्चात 'अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं, बोलियों के लिए संपर्क लिपि का प्रश्न' शीर्षक से अरुणाचल प्रदेश के तत्कालीन राज्यपाल श्री माता प्रसाद का वह लंबा पत्र छपा है, जिसे उन्होंने 25 मार्च, 1994 को उस राज्य के सभी मंत्रियों, विधायकों, उपायुक्तों और सामाजिक संस्थाओं को भेजा था। यह एक अर्ध शासकीय पत्र है, जिसे पत्रिका में इस प्रकार प्रस्तुत किया गया है, कि ध्यान से न देखने पर उसके आलेख होने का भ्रम होता है। यह पत्र माता प्रसाद जी की सन् 1995 में ही प्रकाशित अति महत्वपूर्ण पुस्तक "मनोरम भूमि अरुणाचल" के परिशिष्ट के रूप में (पृ. 299 पर) विद्यमान है। अरुण नागरी का प्रवेशांक जनवरी-मार्च अंक है, अत: इस बात की संभावना अधिक है, कि वह पुस्तक का अंश बाद में बना होगा। इसका कलेवर पत्रिका के ढाई पृष्ठ में समाया हुआ है, जिसमें माता प्रसाद जी ने नौ बिंदुओं में अपना मंतव्य प्रकट किया है। पहले ही वे इस पत्र को लिखे जाने की पृष्ठभूमि स्पष्ट करते हैं- "यह पत्र आपको लिखने का मेरा उद्देश्य मेरे इस दृष्टिकोण से आपको अवगत कराना है, कि हमारी जनजातियों की भाषा अथवा बोली के लिए 'देवनागरी' लिपि ही सर्वोत्तम है। यद्यपि मैं किसी विशेष लिपि का समर्थक अथवा विरोधी नहीं हूँ, परंतु मेरे दृष्टिकोण के पीछे कुछ ठोस तथ्य हैं।" (पृ. 18)। इसके पश्चात वे अपने पत्र में विभिन्न बिंदुओं के अंतर्गत अरुणाचल प्रदेश में सामान्य संपर्क-माध्यम के रूप में हिंदी भाषा की व्यापक स्वीकृति तथा वहाँ की जनजातियों की भाषाओं के संदर्भ में देवनागरी लिपि की भाषावैज्ञानिक उपादेयता समझाते हैं। अंत की ओर बढ़ते हुए आठवें बिंदु में कहते हैं- "... आप विद्वज्जन को मैं यह यकीन दिलाना चाहता हूँ, कि मैं किसी भी रूप में अपने विचारों को किसी पर थोपना नहीं चाहता। मैं तो केवल अपने मत अथवा पक्ष को आप बुद्धिजीवियों के समक्ष गंभीरतापूर्ण विचार-विमर्श के लिए रखना चाहता हूँ। मेरी धारणा है कि देवनागरी ही केवल ऐसी लिपि है, जो पूरी तरह से विकसित और संपन्न है, जो हमारी बोलियों को सच्चे अर्थों में व्यक्त कर सकती है; क्योंकि यह लिपि किसी भी अन्य लिपि से अधिक वैज्ञानिक है। हमारे इतिहास और परंपराओं में इसकी जड़ें हैं।"(पृ. 20)। पत्र के नौवें बिंदु से पता चलता है कि माता प्रसाद जी अरुणाचल की राजनीति, प्रशासन और सामाजिक संस्थाओं से जुड़े लोगों के साथ एक ऐसी बैठक की योजना बना रहे थे, जिसमें लिपि-विहीन भाषाओं के लिए अधिकतम सही और वैज्ञानिक-लिपि के चयन पर विचार करके किसी ठोस निष्कर्ष पर पहुँचा जा सके। पत्र में एक महत्वपूर्ण

तथ्य यह भी है, कि किसी भाषा और लिपि के संबंध का प्रश्न जितना वैज्ञानिकता और व्यावहारिकता से जुड़ा होता है, उतना ही इतिहास और संस्कृति से। इनमें से एक की भी उपेक्षा करके भाषा व लिपि के प्रश्न का स्थाई समाधान नहीं खोजा जा सकता।

प्रवेशांक में धर्मराज सिंह का शोधपरक आलेख, "अरुणाचल की भाषाओं बोलियों के लिए देवनागरी लिपि" तीन दशकों से भी अधिक वहाँ के जनजातीय जीवन और उनकी भाषाओं के अध्ययन का परिणाम है। इस आलेख में दो स्पष्ट धाराएँ हैं, एक- अरुणाचल की समस्त जनजातीय भाषाओं के ध्वनि-साम्य के आधार पर वर्गीकरण की धारा और दो- उन जनजातीय भाषाओं के लिए देवनागरी लिपि की व्यावहारिकता।

अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं के अपने अध्ययन का निष्कर्ष बताते हुए धर्मराज सिंह कहते हैं, कि "भाषा-अध्ययन के क्रम में ऐसा पाया जाता है कि यद्यपि एक भाषा दूसरी भाषा से मेल नहीं खाती, फिर भी कुछ भाषाओं की ध्वनि-प्रवृत्तियाँ एक-दूसरे से काफी मिलती-जुलती हैं। इसी ध्वनि-साम्य को ध्यान में रखते हुए ऐसी कई बोलियों को मिलाकर कई जनजातियों के लिए एक भाषा बनाई जा सकती है।"(पृ. 24)। इसके पश्चात शोधकर्ता ने अरुणाचल की समस्त जनजातीय भाषाओं के चार वर्ग निर्मित किए हैं-

क. "एक- तावांग, दो- ईस्ट कामेङ्, तीन- कामेङ्और चार- मेप्पा की बोलियों की ध्वनियों में काफी साम्य है।
ख. एक- सुवनसिरि, दो- लोअर सुवनसिरि, तीन- पापुमपारे, चार- वैस्ट मियाङ्, पाँच- ईस्ट मियाङ्, छः - दिवाङ् वैली के कुछ हिस्सों में रहने वाले लोगों कीध्वनियों में काफी समानता है।
ग. एक- दिवाङ् वैली के ईदु मिसमी और दो- लोहित के दिगारु मिसमी की बोलियों की ध्वनियों में समानता है।
घ. एक- तिराप और दो- चाङ्लाङ् के लोगों की ध्वनियों में काफी समानता है।" (पृ. 24-25)।

इस वर्गीकरण के आधार पर धर्मराज सिंह ने प्रस्ताव किया है कि "यदि भाषा-वैज्ञानिक तथा अन्वेषण विभाग मिल कर काम करें, तो अरुणाचल प्रदेश के लोगों के लिए मुख्यतः चार भाषाएँ उभर कर सामने आएँगी और उन्हीं में असंख्य बोलियाँ मिल जाएँगी।" (पृ. 25)। यहाँ यह स्पष्ट कर देना अनिवार्य प्रतीत होता है, कि यह एक भाषावैज्ञानिक का प्रस्ताव भर है, जिसमें एक प्रदेश विशेष की मूलत: छब्बीस जनजातियों और ऐतिहासिक व राजनैतिक कारणों से उनके अंतर्गत स्वीकृत एक-सौ से अधिक जनजाति-समूहों की छोटी-बड़ी भाषाओं के बारे में एक भाषा-वैज्ञानिक अभिकल्पना तो विद्यमान है, किंतु सामाजिक-सांस्कृतिक पहचान की विविधता का ध्यान नहीं रखा गया है। शोधकर्ता-लेखक अपने आग्रहों के कारण यह भूल गया है, कि अरुणाचल की मूल छब्बीसों जनजातियाँ अपनी स्वतंत्र सामाजिक और भाषाई पहचान के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं तथा उनमें से किसी को भी अपनी भाषा का किसी अन्य भाषा में विलीन होना स्वीकार करना कठिन होगा। इसलिए वर्तमान परिस्थितियों में इस प्रस्ताव की उपादेयता भाषाओं के मध्य साम्य के अध्ययन तक ही सीमित है।

इस आलेख में धर्मराज सिंह का अरुणाचल की लिपि-विहीन भाषाओं को लिखने के लिए देवनागरी लिपि के प्रयोग के संबंध में किया गया अध्ययन विशेष महत्वपूर्ण है। यह एक 'केस-स्टडी' अध्ययन है, जिसमें आदी-भाषा (आदी जनजाति की भाषा) को आधार बनाया गया है तथा इसके आधार पर अन्य भाषाओं के समान-अध्ययन की सशक्त पृष्ठभूमि उपलब्ध हुई है। इस अध्ययन में पाया गया है, कि 'आदी भाषा में 8 (आठ) स्वर हैं, जबकि देवनागरी में स्वरों की संख्या 12 (बारह) है। आदी भाषा में 18 (अठारह) व्यंजन हैं, जबकि देवनागरी में 31 (इकतीस) व्यंजन हैं। इन तथ्यों के अतिरिक्त एक तथ्य यह है, कि आदी भाषा में कुछ ध्वनियाँ अवश्य ही ऐसी हैं, जिनके लिए देवनागरी लिपि में चिह्न उपलब्ध नहीं हैं। लेखक का सुझाव है कि ऐसी ध्वनियों के लिए उच्चारण-संकेत निर्मित किए जा सकते हैं।' अपने इस अध्ययन में शोधकर्ता-लेखक ने अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं के लिए रोमन-लिपि के प्रयोग की व्यावहारिकता की परीक्षा भी की है। रोमन-लिपि में केवल 5 (पाँच) स्वर हैं, अत: लेखक के मतानुसार- "रोमन-लिपि में इतने कम ध्वनि-संकेत होने के कारण यह समस्त स्वर-ध्वनियों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त नहीं कर सकते।" (पृ. 26)। इसी के साथ "रोमन-लिपि के वर्णों के नाम तथा उच्चारण में साम्य नहीं है। इतना ही नहीं, एक वर्ण के अनेक उच्चारण हैं, जैसे--- जी (G) से 'ज' और 'ग'। सी (C) से 'स' और 'क'। कई व्यंजन वर्णों को एक साथ मिला कर नई ध्वनि पैदा की जाती है और एक ही संयुक्त व्यंजन कहीं पर कुछ ध्वनि पैदा करता है, तो कहीं पर कुछ। जैसे--- ch से कहीं 'च', तो कहीं 'क'...। रोमन-लिपि में अनेक ध्वनियाँ मौन रहती हैं, जो पढ़ते समय कठिनाई पैदा करती हैं। जैसे--- Pslam (साम), Calm (काम)... ।"(पृ. 26-27)। आश्चर्य नहीं, कि इसी प्रकार की अराजक स्थिति से परेशान होकर जॉर्ज बर्नार्ड शॉ ने अपनी वसीयत में यह इच्छा व्यक्त की थी, कि उनके धन का एक हिस्सा रोमन-लिपि को सुधारने में लगाया जाए, ताकि वह अंग्रेज़ी भाषा के लिए एक सुविधाजनक लिपि बन सके। जहाँ तक अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं में उपलब्ध उच्चारण-ध्वनियों का प्रश्न है, उनके लिए रोमन-लिपि नितांत अव्यावहारिक है। धर्मराज सिंह ने आदी भाषा का जो विवेचन प्रस्तुत किया है, उससे स्पष्ट है कि यदि जनजातीय भाषा-विशेषज्ञों की सहमति से विशिष्ट ध्वनि-चिह्नों को निर्मित करके लिपि में समाहित कर लिया जाए, तो इस भाषा को रोमन-लिपि की अपेक्षा देवनागरी-लिपि में ही सर्वोत्तम ढंग से लिखा जाना संभव है। अरुणाचल की न्यिशी तथा कुछ अन्य जनजातियों की भाषाओं के संबंध में भी ऐसे अध्ययन किए गए हैं और उनके निष्कर्ष भी इससे भिन्न नहीं हैं।

अरुण नागरी के प्रवेशांक में डिब्रुगढ़ विश्वविद्यालय (असम) के तत्कालीन कुलपति, मुकुंद माधव शर्मा का जनजातीय भाषाओं के लिए सुसंगत लिपि के प्रयोग पर विचार करने वाला एक आलेख प्रकाशित किया गया है। 'जनजातीय बोलियों के लिए उपयुक्त लिपि की तलाश और देवनागरी लिपि की प्रासंगिकता' शीर्षक यह आलेख मूलत: अंग्रेज़ी में लिखा गया था, पत्रिका के लिए जिसका हिंदी अनुवाद, शासकीय महाविद्यालय, ईटानगर के प्राध्यापक वैद्यनाथ सिंह ने किया है। मुकुंद माधव शर्मा ने अपने इस आलेख में असम राज्य की जनजातियों की भाषाओं को लिखने के लिए असमिया, देवनागरी और रोमन लिपि का विवेचन किया है। वे रोमन-लिपि के वैश्विक-विस्तार, प्रौद्योगिकी व तकनीकी क्षेत्रों में उसके प्रवेश, उसके माध्यम से समृद्ध अंग्रेज़ी साहित्य की सुलभता आदि की चर्चा करके कहते हैं--- "अंग्रेज़ी लिपि का चुनाव

सर्वप्रथम होना चाहिए। लेकिन जहाँ तक अंग्रेज़ी लिपि का संबंध है, यह 'लेकिन' अंग्रेज़ी की तमाम विशेषताओं के बावजूद एक बहुत बड़ा 'लेकिन' है।" (पृ. 22)। इसके पश्चात अपने गहन, किंतु सूत्रात्मक-विवेचन के आधार पर वे रोमन लिपि को असम की जनजातीय भाषाओं के लिए न तो लिपि की वैज्ञानिक-व्यावहारिकता की दृष्टि से उपयुक्त मानते हैं और न ही सांस्कृतिक आधार पर। लिपि-विज्ञान के स्तर पर उनके अधिकांश तर्क वही हैं, जिनका उल्लेख धर्मराज सिंह के आलेख के संदर्भ में किया जा चुका है।

मुकुंद माधव शर्मा ने असम की जनजातीय भाषाओं के लिए असमिया लिपि के व्यवहार पर भाषाई और साहित्यिक के साथ ही सामाजिक, सांस्कृतिक तथा आर्थिक आधारों पर विचार किया है। वे इन सभी दृष्टियों से असम की जनजातियों और बहु-संख्यक असमिया भाषियों के मध्य स्वाभाविक निकटता मानते हैं और कहते हैं-"... असम की प्रगति और शांति काफी हद तक बहु-संख्यक असमिया भाषी समुदाय और विभिन्न जनजातीय समुदायों की भावनात्मक एकता पर निर्भर करती है। इसलिए जनजातीय समुदाय की तरफ से असमी-लिपि के प्रति एक सहयोगात्मक रवैया तमाम संबंधित लोगों के लिए एक सराहनीय कदम होगा।" (पृ. 23)। लेकिन यहीं, मुकुंद माधव शर्मा दो बहुत महत्वपूर्ण पक्षों की ओर हमारा ध्यान खींचते हैं। इनमें से एक पक्ष असमिया लिपि के क्षेत्र-विस्तार और उसकी लिपि-विज्ञान संबंधी सीमाओं से जुड़ा है, जबकि दूसरा पक्ष स्वयं उन्हीं के शब्दों में- "लेकिन कुछ लोगों का कहना है कि आदिवासियों को डर है कि अगर वे असमी लिपि को अपनाएँगे, तो इसका मतलब होगा, अधिक शक्तिशाली असमी संस्कृति के अधीन हमेशा रहना। आदिवासी लोग अपनी स्वतंत्र और निर्बाध अभिव्यक्ति चाहते हैं और अपनी संस्कृतियों को स्वतंत्र रूप से विकसित होते हुए देखना चाहते हैं। विशालकाय वृक्ष की छाया में छोटा पौधा कभी भी फलफूल नहीं सकता। यही कारण है कि आदिवासी लोग असम की बहुसंख्यक असमिया भाषा संस्कृति से अपने आप को दूर (अलग) रखना चाहते हैं।"

हमें ध्यान रखना होगा कि यह कटु-यथार्थ एक असमिया भाषी विद्वान की लेखनी से ही प्रकाश में आया है, जिसमें उपनिवेशवादी-साम्राज्यवादी और कुछ विशिष्ट धार्मिक शक्तियों द्वारा बहुसंख्यक असमिया भाषियों और आदिवासियों के बीच खड़ी की गई दीवार (जो भारत के अन्य क्षेत्रों के बारे में भी सच है) का संकेत छिपा हुआ है। विवेचनीय विषय की सीमाओं के कारण मुकुंद माधव शर्मा इस यथार्थ का विस्तार नहीं करते। वे अपने को भाषा और लिपि के सांस्कृतिक सरोकारों पर केंद्रित करते हुए एक तटस्थ अभिमत प्रस्तुत करते हैं- "असम के सभी लोगों के लिए यह वांछनीय होगा कि अगर उनके मस्तिष्क में सही विचार प्रस्फुटित हों, तो वे आपसी समझदारी के माहौल में एक-दूसरे के साथ मिल-जुल कर परिवार के सदस्य के रूप में बिना किसी द्वेष-भाव के शांति और भाईचारे के साथ रहने का एक रास्ता ढूँढ़ निकालें। परंतु अगर आदिवासी लोग असमिया लिपि अपनाने की वांछनीयता से अपने आप को आगाह नहीं कर पाते हैं, तो हिंदी (देवनागरी) लिपि को अपनाने के सुविचार से अपने आप को अवगत कराना होगा। इसका कम से कम यह लाभ होगा कि अगर वे अपने सर्वाधिक समीप की संस्कृति के पास नहीं रहेंगे, तो देश की मूल संस्कृति के सन्निकट अवश्य होंगे। अंग्रेज़ी लिपि को अपनाने से कुल मिला कर वे भारत की पारंपरिक संस्कृति से बिल्कुल अलग-थलग

पड़ जाएँगे। इससे जनजातीय समुदाय का अवांछित अलगाव बढ़ेगा, जो उनके अपने हित को ही नुकसान पहुँचाएगा और उनका सांस्कृतिक स्वास्थ्य प्रभावित होगा।" (पृ. 23)।

यह अभिमत देवनागरी-लिपि के उन सभी समर्थकों को मार्ग दिखाने वाला है, जो लिपि-विहीन भाषाओं के लिए देवनागरी के व्यवहार के समर्थन में केवल इस लिपि की वैज्ञानिकता का महिमा-मंडन करते रहते हैं, जबकि जनजाति विशेष अथवा क्षेत्र विशेष के सांस्कृतिक विकास में देवनागरी-लिपि की भूमिका समझने-समझाने में कोई रुचि नहीं लेते।... असम के साथ ही अरुणाचल का संदर्भ भी जोड़ें, तो पाएँगे कि सभी जनजातियाँ लिपि के प्रश्न को संस्कृति के परिप्रेक्ष्य में सुलझाने के प्रति अत्यधिक संवेदनशील हैं। इसका एक उदाहरण तानी-लिपि के निर्माण की घटना है। अरुणाचल की 'तानी' जनजाति के अंतर्गत पाँच जानजाति-समुदाय हैं- आदी, गालो, आपातानी, तागिन और न्यिशी। इन सभी की अपनी-अपनी भाषाएँ हैं और वर्तमान में उन्हें लिपि की आवश्यकता है। गालो जनजाति के एक शोधकर्ता विद्वान, तोनी कोयु ने सभी तानी भाषाओं के लिए एक लिपि का निर्माण किया और उसे 'तानी-लिपि' नाम दिया। जब उन्होंने इस तानी-लिपि का प्रचार किया और तानी भाषाओं के लिए उसके व्यवहार पर बल दिया, तो आश्चर्यजनक रूप में जनजातीय समूहों ने इस लिपि को स्वीकार करने में कोई रुचि नहीं दिखाई। फलत: तोनी कोयु अपने तमाम प्रयासों के बावजूद अपनी योजना में असफल रहे। यह कोई प्राचीन नहीं, बल्कि बीसवीं शताब्दी के अंतिम चरण से लेकर इक्कीसवीं शताब्दी के प्रथम चरण की ही घटना है।

लगभग दस वर्ष पूर्व आदी जनजाति के एक हिंदी विद्वान, ओकेन लेगो ने मुझे बताया था कि तोनी कोयु की तानी-लिपि की ध्वनि-चिह्नों की दृष्टि से परीक्षा नहीं हो सकी। मेरा अनुभव है कि यह इसकी अस्वीकृति का एक कारण है, इसका दूसरा कारण सांस्कृतिक है। तानी जनजाति-वर्ग के जनजातीय-समुदाय अपने धार्मिक अनुष्ठानों में कुछ लिपि-चिह्नों का निर्माण करते हैं। उनका विश्वास है कि उनकी पूर्वज-परंपरा में लिपि विद्यमान थी, जो समय और परिस्थितियों के कारण नष्ट हो गई। यह भी मान्यता है कि जो लिपि-चिह्न बचे रह गए, उन्हें अनुष्ठानों में निर्मित किया जाना अपनी पूर्वज-परंपरा का सम्मान करना और उससे जुड़े रहने के संकल्प को जीवित किए रखना है, क्योंकि अपनी संस्कृति और पूर्वज-परंपरा से कट कर जीवन नहीं जिया जा सकता। इसी के साथ यह मान्यता भी है, कि प्रत्येक लिपि-चिह्न में पूर्वजों का कोई-न-कोई संदेश निहित है। अरुणाचल प्रदेश की हिंदी कथाकार, जोराम यालाम नाबाम (जो स्वयं न्यिशी जनजाति में जन्मी हैं और पूर्वज-परंपराओं के अध्ययन में लगी हैं) के अनुसार तानी-लिपि के निर्माता ने पूर्वज-परंपरा के बचे रह गए इन लिपि-चिह्नों को कोई महत्व नहीं दिया। उन्होंने तानी समूह के जनजातीय समुदायों के बौद्धिकों को भी लिपि-निर्माण के अभियान से नहीं जोड़ा। न उनके साथ कोई विचार-विमर्श किया और न उन्हें अपनी बात समझाई। परिणामस्वरूप लिपि-निर्माण का उनका यह अभियान किसी सार्थक परिणति को प्राप्त होने के पूर्व ही निष्प्रभावी हो गया।

प्रवेशांक में हिंदी के विद्वान और भारत के महामहिम राष्ट्रपति, शंकरदयाल शर्मा की अनुवाद के संबंध में एक अत्यंत उपयोगी टिप्पणी (जो संभवत: उनके किसी भाषण अथवा लेख का अंश है) प्रकाशित

हुई है, जिसमें वे कहते हैं- "... भारतीय भाषाओं का हिंदी में अनुवाद सीधे-सीधे होना चाहिए, अन्य भाषा के माध्यम से नहीं। यदि तमिल साहित्य का अनुवाद हिंदी में होता है, तो वह सीधे तमिल से हिंदी में आए, न कि अंग्रेज़ी या अन्य किसी भाषा के माध्यम से। भारतीय भाषाओं और हिंदी भाषा के बीच किसी अन्य भाषा की आवश्यकता नहीं होनी चाहिए। तभी उस अनुवाद में जान आ सकेगी और तभी दोनों भाषाएँ एक-दूसरे से कुछ ग्रहण कर अपने आप को समर्थ कर सकेंगी।" (पृ. 6)। शंकरदयाल जी ने यह अभिमत भारत की राजभाषा, हिंदी की भूमिका के संदर्भ में प्रकट किया है। संदेश स्पष्ट है, जैसे अन्य भाषाभाषी हिंदी सीख कर अपनी-अपनी भाषाओं से हिंदी में अनुवाद करते हैं, वैसे ही हिंदीतर भाषी क्षेत्रों में (और हिंदी क्षेत्रों में भी) रहने वाले हिंदी-प्रेमी विद्वान कोई-न-कोई भारतीय भाषा सीख कर उससे सीधे हिंदी में अनुवाद करें, तभी हिंदी के तृणमूल-विकास को गति प्राप्त होगी। कहना होगा, यही अनुवाद-प्रक्रिया हिंदी से अन्य भाषाओं में अनुवाद के संबंध में भी व्यवहार में लाई जानी चाहिए। साहित्यिक आदान-प्रदान की इस प्रक्रिया से समस्त भारतीय भाषाओं का विकास संभव होगा तथा भारत की सामूहिक-चेतना अपने वास्तविक रूप में प्रकट हो सकेगी।

अरुण नागरी के प्रवेशांक में 'आंतर भारती' नाम से एक खंड की प्रस्थापना है, जिसमें गालो भाषा-भाषी हिंदी लेखक (जो अरुणाचल के पहले हिंदी लेखक हैं), जुमसी सिराम द्वारा एक कविता का गालो भाषा में किया गया अनुवाद देवनागरी-लिपि में प्रकाशित किया गया है। साथ में हिंदी-पाठ भी है। इसका एक अंश है- "मैं करूँगा सुरक्षा अपनी मातृभूमि की/और लड़ूँगा भेड़ियों के विरुद्ध/ दुर्भिक्ष के विरुद्ध/लूट-खसोट करने वाले/व्यापारियों के विरुद्ध/तथाकथित न्यायालयों के विरुद्ध/और करूँगा सुरक्षा अपनी मातृभूमि की/मैं खो बैठूँ भले ही/अपने पशु, अपने/खेत, अपने वन और उपवन/भले ही खो बैठूँ/अपना लाभांश/अपनी आय, अपना ब्याज/परंतु करूँगा सुरक्षा/अपनी मातृभूमि की।" (पृ. 16)। यहाँ उल्लेखनीय है, कि इसे प्रकाशित करते हुए कहीं इसकी मूल भाषा का संकेत नहीं किया गया है और गालो अनुवाद के साथ हिंदी-पाठ भी दिया गया है, अत: यह भ्रम होता है कि मूल कविता हिंदी में रची गई होगी। उधर संपादक ने इसे जर्मनी के प्रो. फ्रांसिस जे. को 1985 के पूर्व ही भेजने की सूचना भी दी है। इससे भ्रम और भी बढ़ जाता है। इस लेखक ने इस विषय में संपादक से ही बात करने का निश्चय किया, तो अरुण नागरी के संपादक, रमण शांडिल्य से 18 अगस्त, 2020 को हुई चर्चा में पता चला, कि मूल कविता जर्मन भाषा की है, जिसका उन्हें अंग्रेज़ी अनुवाद मिला था। उन्हें यह कविता इतनी पसंद आई, कि उन्होंने इसका हिंदी अनुवाद कर डाला और तत्कालीन पश्चिमी जर्मनी के प्रोफेसर के अनुरोध पर जुमसी सिराम से गालो भाषा में अनुवाद करवा कर (अपने हिंदी अनुवाद सहित) उन्हें भेजा। इसके बाद जब अरुण नागरी प्रकाशित हुई, तो इसके हिंदी और गालो अनुवाद को प्रकाशित कर दिया। निस्संदेह कविता बहुत प्रभावशाली है और जर्मनी के साथ ही वर्तमान भारतीय संदर्भ में भी प्रासंगिक है, किंतु इसके संबंध में दिया गया स्पष्टीकरण भविष्य में किए जाने वाले शोध-कार्य के लिए आवश्यक होने के साथ ही इसलिए भी आवश्यक है कि प्रवेशांक में ही शंकरदयाल शर्मा ने दो भाषाओं के बीच किसी तीसरी भाषा को लाए बिना सीधे अनुवाद का आग्रह किया है, जबकि उपर्युक्त अनुवाद इस पद्धति का पालन नहीं करता। इस सबके बावजूद, आंतर भारती योजना अपने आप में एक अनूठी शुरुआत थी।

हिंदी कवियों की कई कविताएँ भी प्रवेशांक में हैं, जिनमें अरुणाचल के महत्व को प्रस्तुत करने वाली वहाँ के तत्कालीन राज्यपाल माता प्रसाद जी की कविता उल्लेखनीय है- "पर्वतराज हिमालय-सुत सा/शोभित अरुणाचल है/स्नात: सूर्य किरण से प्रात:/इसका तन निर्मल है/सज्जन-सरल सुपुत्र यहाँ के/राष्ट्र भक्ति में अविचल/भारत माता गर्व करे/इसका ऐसा अंचल है।" (पृ.11)

देवनागरी लिपि, हिंदी और अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं के संबंध में प्रवेशांक में जिस दृष्टिकोण और दिशा की उपस्थापना की गई थी, अगले सभी अंकों में उसका विस्तार देखने को मिला। दूसरे अंक के संपादकीय में लिपि के संबंध में भीतर तक हिला देने वाला रहस्योद्घाटन किया गया- "... अंग्रेज अरुणाचल के पासीघाट नामक स्थान में जब आए, तो उन्होंने उस क्षेत्र में बसने वाली एक जनजाति, पादाम की भाषा-लिपि के लिए एक नया शब्द गढ़ा-'पादाम आखर'। यह पादाम भाषा को रोमन में लिखने-प्रचारित करने की एक सुनियोजित साजिश थी।" रोमन-लिपि को पादाम आखर कह कर प्रचारित करने का लक्ष्य आदिवासी समुदायों के सहज विश्वासी मानस को भुलावे में डाल कर एक ऐसी लिपि को लागू करना था, जिसमें उनकी भाषा को सही-सही नहीं लिखा जा सकता था और न जिसके माध्यम से उनकी सांस्कृतिक आवश्यकताओं को पूरा किया जा सकता था। बरसों पहले आदिवासियों को अंग्रेजी भाषा की वर्णमाला सिखाने के लिए ऐसे ही प्रयास नागालैंड में दिखाई पड़े थे। वहाँ दु:खद ढंग से अंग्रेज भाषा प्रचारकों ने धर्म का सहारा लिया था।यह प्रसंग फिलहाल यहीं तक...

देवनागरी लिपि के संबंध में अरुण नागरी के तीसरे अंक में अति महत्वपूर्ण सामग्री प्रकाशित की गई। यह बापू लक्ष्मण श्रीधर वाकणकर 'लिपिकार' की पुस्तक, 'साइंटिफिक नागरी फोनोग्रेफी' के एक अंश का अनुवाद है, जिसे 'नागरी लिपि की वैज्ञानिकता और उसकी कंप्यूटर युग में सार्थकता' शीर्षक आलेख के रूप में छापा गया है। इस सामग्री में अनेक ऐसी जानकारियाँ हैं, जिसने सामान्य हिंदी पाठक प्राय: अनभिज्ञ रहते हैं। वाकणकर देवनागरी लिपि के बारे में कहते हैं- "पश्चिमी लोगों ने जिसके लिए 'देवनागरी नाम' लोकप्रिय किया, वह प्राचीन नहीं है। पद्म पुराण में उसे 'देवलिपि भारती' ऐसा कहा जाता है। वातुलागम में उसे 'नागर' यानी शहर की लिपि कहा है। ऋग्वेद के पाणिनि मुनि (ने) प्रचलित 'शिक्षाध्याय' में उसे 'शंभु' मते यानी माहेश्वरी कहा है। संत विनोबा भावे उसके लिए केवल 'नागरी' नाम ही पर्याप्त मानते थे। बौद्ध-जैन काल के प्रारंभ में शिलालेखों ताम्रपत्रों पर उत्कीलन के लिए जो लिपि सुधार हुआ, 'ब्राह्मी' नाम से लोकप्रियता प्राप्त हुई।" (पृ. 14-15)। यहीं लिपि के इतिहास के संबंध में प्रचलित भ्रम का वाकणकर द्वारा किया गया निवारण भी उल्लेखनीय है। वे कहते हैं-"ब्राह्मी पूर्वकालीन अभिलेखों की उपलब्धि गत (19वीं) शताब्दी में नहीं हुई थी, इस कारण से प्रथम कल्पना यह प्रसूत की गई, कि 'वेद-काल में लेखन-विद्या नहीं थी' और ब्राह्मी लिपि ही सभी भारत जन्य लिपियों की जननी थी। जब सिंधु नदी की उपत्यका से सैंधवी अभिलेख प्रकाश में आए, तो ब्राह्मी लिपि का संबंध उससे जोड़ने के प्रयत्न होने लगे।... 1966 में ऋग्वेद की एक ऋचा में स्पष्ट मिला कि 'अश्वारूढ़ इंद्र के लिए रचा हुआ नया काव्य (ब्रह्म) हम गौतम वंश वाले उत्कीलन (अतक्षत्) कर रहे हैं' (सनायते गौतम इंद्र नव्यं अतक्षत् ब्रह्म हरियोजनाय। ऋ. 1.62.13)।..... गीली ईंट पर सूची से उत्कीलन करने

का वर्णन कृष्ण यजुर्वेद की तैत्तिरीय संहिता तथा अथर्ववेद में मिलते हैं (यस्यां आद्रायां इष्टकायां त्रिपुंड्रवद् रेखायां क्रियते.... तद् देवानां चिह्नम्- तै. सं. 4.2.9..... ऋग्वेद संहिता में 'लिख' धातु से बना एक शब्द भी है।...)।" (पृ. 15)।

इस आलेख से पता चलता है, कि "चिकने बनाए हुए स्लेट पत्थर पर उल्टी अक्षर पंक्तियाँ खुदवा कर उसमें गेरुआ रंग भरने के बाद कपड़े पर श्लोक छापने का प्रयत्न ईसा की 11वीं शताब्दी के प्रारंभ में धारा नगरी के राजा भोज ने किया था। उसका प्रमाण आज उपलब्ध है।" (24)। लेकिन पश्चिम में टंकण प्रौद्योगिकी आधारित खोजें पूरी तरह रोमन लिपि की अनुकूलता को ध्यान में रख कर की गईं। वही टंकण मशीन जब पश्चिम से भारत आई, तो नागरी लिपि में एक ऐसे सुधार-युग का प्रारंभ हुआ, जो इस भय पर टिका हुआ कहा जाता था, कि यदि नागरी लिपि में टंकण मशीन के अनुसार बदलाव न किए गए, तो हमें रोमन-लिपि अपनानी होगी। वाकणकर ने कहा, कि "इस डर के कारण सन् 1914 से 60 तक 'लिपि सुधार' का आंदोलन भारत में चला।" (पृ. 24)। कहना होगा, कि यह अभी तक चल रहा है, क्योंकि भारत में कंप्यूटर-क्रांति आने के बाद से शासन के स्तर पर नागरी-लिपि में निरंतर बदलाव की कोशिशें हो रही हैं। इस बदलाव का आधार किसी प्रकार की तार्किकता-अतार्किकता न होकर केवल कंप्यूटर के लिए अनुकूलता है। इस संदर्भ में वाकणकर का कथन आँखें खोलने वाला है, वे लिपि सुधार युग का मूल्यांकन करते हुए कहते हैं- "यंत्र में सुधार करने के बजाय लिपि को तोड़ना-मरोड़ना इस आंदोलन का स्वरूप बन गया था। 21 जनवरी, 1960 को भारत के शिक्षा मंत्रालय ने जब 'मानक देवनागरी' अक्षरों के नियम बनाकर उसे जारी किया, तो उस दिन से आंदोलन की समाप्ति हो गई। अब प्रश्न आया, कुंजी-पटल के सुधार का। एक विशेष व्यक्ति के हठ के कारण कुंजी-पटल इतना दोषपूर्ण बना, कि बाएँ हाथ तथा उसकी सबसे छोटी उँगली पर श्रम-भार सबसे अधिक पड़ने लगा, परंतु वही दोषपूर्ण कुंजी-पटल आज भी सरकारी हठ के कारण वैसा ही दोषपूर्ण रह गया है।" (पृ. 14)।

लक्ष्मण श्रीधर वाकणकर के इस आलेख में सबसे संघर्षपूर्ण और रोमांचक अभियान की जानकारी कंप्यूटर में देवनागरी-लिपि के व्यवहार को संभव बनाने की है। कंप्यूटर का संकेतक-कोष्ठक रोमन-लिपि के अनुकूल बनाया गया था, जिस कारण उसमें देवनागरी के सभी लिपि-चिह्न, अर्धाक्षर और संयुक्ताक्षर समायोजित नहीं हो सकते थे। वाकणकर को अचानक सूझा, कि "यदि हमारी लिपियाँ वैज्ञानिक दृष्टि से 'ध्वन्यात्मक' हैं, तो आकृतियों को अंत: प्रेरित करने के बजाय, यदि हम ध्वनि-परमाणुओं (photonic-atoms) को अंत: प्रेरित करें तो क्या होगा?" (पृ. 25)। यही वह शोध-प्रश्न है, जिसने वाकणकर को 'टाटा इंस्टीट्यूट ऑफ फंडामेंटल रिसर्च' नामक प्रख्यात संस्थान के वैज्ञानिक एस. पी. मुदूर के साथ मिलकर प्रयोगों की एक शृंखला पर अहर्निश जुट जाने के लिए प्रेरित किया। काफी परिश्रम के बाद, "…जब अवयवों के 'अकात्मक' (digital) चित्र बना कर कंप्यूटर की स्मरणिका में बैठाए गए, उसका ध्वन्याकृतिक (phonographic) कुंजी-पटल बनाया, उसकी आज्ञावली (software) बनी, और वह निरपवाद बनी, तब चल कर एक दिन कंप्यूटर के पर्दे पर संस्कृत वाक्य प्रकट हुए।"(पृ. 25)। यह एक लिपि-वैज्ञानिक की अद्भुत परिकल्पना के साथ ही नागरी-लिपि की वैज्ञानिकता को मिली प्रौद्योगिकीय सफलता की गौरवशाली घटना

है। इसीलिए वाकणकर कहते हैं-"वैज्ञानिक प्रगति की कोई सीमा नहीं होती, परंतु यह मौलिक तथ्य ध्यान में रखना आवश्यक है, कि नागरी तथा सहभागिनी लिपियाँ इतने थोड़े समय में आरूढ़ हो सकीं, उसका कारण है, उसकी वैज्ञानिक संरचना, जो हमारी धरोहर है। ऐसा एक दिन अवश्य आएगा, जब 'नागरी-लिपि' विश्व-लिपि के सिंहासन पर आसीन होगी। परंतु हम कितना काम करेंगे, इस पर यह सुयश अवलंबित होगा (न हि सुप्तस्य सिंहस्य प्रविशंति मुखे मृगा:)।" (पृ. 24)।

अरुण नागरी के अंकों में वहाँ के राज्यपाल, माता प्रसाद जी के पाँच भाषण प्रकाशित हुए। यह स्पष्ट रूप से समझ लेना चाहिए, कि इन भाषणों के प्रकाशन का कारण किसी भी रूप में उनका राज्यपाल होना न होकर हिंदी का एक अच्छा लेखक होना, अरुण नागरी का मुख्य संबल होना और अरुणाचल की जनजातीय भाषाओं व साहित्य के हित के लिए काम करने की भावना रखना प्रतीत होता है। उनके पाँच भाषणों में से तीन पूरी तरह हिंदी भाषा पर केंद्रित हैं। पहला भाषण गौहाटी विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग (स्था. 31 अक्तूबर, 1970)के रजत जयंती समारोह के अवसर पर 18 नवंबर, 1995 को दिया गया था। इस भाषण में उन्होंने असम के हिंदी-प्रचार आंदोलन में लोकप्रिय गोपीनाथ बरदोलई की ऐतिहासिक भूमिका का स्मरण करने के साथ ही नागरी लिपि के संदर्भ में आचार्य विनोबा भावे एवं हिंदी-सेवा के लिए कामिल बुल्के सहित अनेक विदेशी हिंदी विद्वानों को याद किया है। लेकिन माता प्रसाद जी के इस भाषण का उल्लेखनीय पक्ष हिंदी में किए जाने वाले शोध-कार्य को प्रस्तुत किए जाने के लिए हिंदी भाषा के ही प्रयोग की अनिवार्यता से संबंधित है। यह इसलिए भी महत्वपूर्ण कहा जाना चाहिए, कि वे जिस विश्वविद्यालय में भाषण दे रहे थे, उसी में हिंदी विषय का पी-एच. डी. उपाधि हेतु किया जाने वाला शोध-कार्य अंग्रेजी में प्रस्तुत किए जाने की बाध्यता थी। यह दशा उस विश्वविद्यालय में थी, जहाँ हिंदी विभाग स्थापित हुए पच्चीस वर्ष पूरे हो चुके थे। इसलिए अनुमान है, कि उन्होंने इस प्रसंग को जान-बूझ कर अपने भाषण में शामिल किया होगा। उन्होंने कहा- "... कुछ विश्वविद्यालयों में तो हिंदी विषय के शोध-पत्र भी रोमन लिपि में लिखवाए जाते हैं। यह हिंदी का मज़ाक उड़ाना ही कहा जाएगा। यह सती-सावित्री और सीता जैसी आदर्श नारी को घुटनों तक स्कर्ट पहना कर समाज के सामने खड़ी करके उनकी हँसी उड़ाने जैसा है।"(अंक-5, पृ. 16)। उन्होंने इस प्रसंग को तीन वर्ष बाद पुन: मेघालय की राजधानी शिलाङ् में रूपंबरा संस्था द्वारा आयोजित 'दसवें अखिल भारतीय राजभाषा सम्मेलन' में उठाया। स्वतंत्रता के स्वर्ण जयंती और महात्मा गांधी के एक-सौ अट्ठाईसवें जन्म वर्ष के अवसर पर आयोजित इस सम्मेलन में माता प्रसाद जी ने कहा-"देश के कुछ अहिंदी भाषी राज्यों में विश्वविद्यालयों में हिंदी में अनुसंधान कार्य किए जाते हैं, इसके लिए वे विश्वविद्यालय बधाई के पात्र हैं। लेकिन ऐसे कुछ विश्वविद्यालयों में हिंदी विषय के शोध प्रबंध को हिंदी भाषा की नागरी लिपि में लिखने के स्थान पर रोमन लिपि में लिखने को विवश किया जाता है, इससे तो हिंदी की टांग ही तोड़ने का प्रयास किया जाता है।" (अंक-13-14, पृ. 20)। लगता है, वे एक बार फिर अपनी आवाज़ गौहाटी विश्वविद्यालय के कानों तक पहुँचाना चाहते थे, जो शिलाङ् से केवल तीन घंटे दूर है। आखिर, सन् 2019 में गौहाटी विश्वविद्यालय के कानों में माता प्रसाद जी की आवाज़ पहुँची और उसने अन्य हिंदी सेवियों की आवाज़ भी सुनी तथा हिंदी

विषय के शोध प्रबंध हिंदी भाषा (देवनागरी लिपि) में प्रस्तुत किए जाने की बात आधिकारिक रूप से मान ली।

माता प्रसाद जी के कुलाधिपतित्व-काल में ही राजीव गांधी विश्वविद्यालय (उस समय अरुणाचल विश्वविद्यालय) में हिंदी विभाग प्रारंभ किया जाना संभव हुआ था, जिसकी घोषणा उन्होंने प्रथम दीक्षांत समारोह में सन् 1997 में की थी, "मुझे बताते हुए प्रसन्नता हो रही है, कि विश्वविद्यालय अनुदान आयोग ने इस विश्वविद्यालय के लिए नवीं पंच वर्षीय योजना में 2 करोड़ 20 लाख रुपए की धनराशि आवंटित की है, जिसमें हिंदी विभाग के लिए एक रीडर और दो लेक्चरर की नियुक्ति की व्यवस्था है।" (अंक- 13-14 पृ. 37)। स्मरणीय है, कि 4 फरवरी, 1984 में अरुणाचल विश्वविद्यालय की स्थापना हो जाने के बावजूद तेरह-चौदह वर्ष बाद तक भी हिंदी विभाग नहीं खुला था। यहाँ तक कि अरुण नागरी के संपादक ने सन् 1998 के अंक 13-14 के संपादकीय में भी इस प्रकरण को उठा कर विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग प्रारंभ किए जाने के औचित्य की ओर ध्यान आकर्षित किया- "राज्य के अनेक जनजातीय युवक-युवतियाँ दूसरे विश्वविद्यालयों से हिंदी में स्नातकोत्तर शिक्षा प्राप्त कर कहीं न कहीं सेवारत हैं, किंतु उन छात्रों की समस्या इन चौदह वर्षों में यथावत बनी हुई है, जो यहाँ के डिग्री कॉलेजों से स्नातक स्तर तक तो हिंदी विषय रख कर अपनी शिक्षा पूरी कर लेते हैं, पर अरुणाचल विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग नहीं होने के कारण दिशाहारा बने फिरते हैं।" इस प्रकार के प्रयासों और जनता की मांग के फलस्वरूप सन् 1999 में अरुणाचल विश्वविद्यालय में हिंदी विभाग प्रारंभ कर दिया गया। इससे न केवल भारी संख्या में स्थानीय विद्यार्थियों को हिंदी में उच्च शिक्षा प्राप्त करने की सुविधा प्राप्त हो गई, बल्कि आदिवासी समुदाय के योग्य व्यक्तियों को प्राध्यापक के रूप में नियुक्तियाँ भी मिलीं।

इन भाषणों में डॉ. राममनोहर लोहिया, डॉ. रघुवीर और क्यूबा में भारत के राजदूत से जुड़े प्रसंग भी हैं, जिनसे विश्व-मंच पर किसी देश ही नहीं, बल्कि उसके समस्त नागरिकों की स्वतंत्र पहचान के लिए उसकी अपनी भाषा के महत्व का पता चलता है। प्रसिद्ध है, कि जब लोहिया जी अपने शोध-कार्य का अंग्रेजी में लिखा प्रतिवेदन लेकर डॉ. जुंबार्ड के पास गए, तो उन्होंने कहा, मुझे अंग्रेज़ी नहीं आती, इसे जर्मन भाषा में लिख कर लाइए। वे जर्मन थे। लोहिया जी ने जर्मन सीखी और उसमें अपना शोध-प्रतिवेदन तैयार किया। जब वे उसे फिर से लेकर गए, तो "डॉ. जुंबार्ड ने डॉ. लोहिया से कहा, मैं अंग्रेज़ी खूब जानता हूँ, किंतु मुझे अपनी राष्ट्र-भाषा से प्रेम है।" (अंक 9-12, पृ. 13)। इसी प्रकार एक भाषण में प्रसिद्ध विद्वान डॉ. रघुवीर का प्रसंग प्रस्तुत करते हुए माता प्रसाद जी ने कहा-"वे फ्रांस के एक राज-परिवार में वहाँ जाने पर टिका करते थे। वहाँ पर उन्हें एक भारतीय मित्र का पत्र डाकिया गृह-स्वामिनी को दे गया। गृह-स्वामिनी की ग्यारह वर्षीय पुत्री वह पत्र डॉ. रघुवीर को देने गई। पत्र देकर वह उत्सुकतावश रुक गई, यह देखने के लिए कि वह पत्र किस भाषा में लिखा गया है। पहले तो डॉ. रघुवीर ने आनाकानी की, किंतु बाद में उन्होंने वह पत्र उस लड़की को दिखा दिया। लड़की बोली, यह पत्र तो अंग्रेज़ी में है, क्या आपके राष्ट्र की कोई भाषा नहीं है? डॉ. रघुवीर को सचाई बतानी पड़ी। उस दिन भोजन के बाद गृह-स्वामिनी ने कहा, - डॉ. रघुवीर, मुझे बड़े दुख के साथ कहना पड़

रहा है- आगे से आप हमारे घर नहीं ठहर सकेंगे। आइंदा आप अपना ठिकाना कर लें, क्योंकि मुझे मेरी लड़की ने बताया है, कि आपकी कोई भाषा नहीं है, जिसकी अपनी कोई भाषा न हो, फ्रेंच लोग उसे बर्बर कहते हैं तथा उससे कोई संबंध रखना अपमान की बात मानते हैं। डॉ. रघुवीर बहुत लज्जित हुए। गृह-स्वामिनी ने पुन: कहा, हम फ्रेंच लोग आतिथ्य के लिए प्रसिद्ध हैं, इसलिए आपका तिरस्कार करते हुए मुझे दुख है, लेकिन भाषा के नाम पर कोई समझौता नहीं कर सकते।" (अंक-5, पृ. 14-15)।अपने शिलाङ् वाले भाषण में माता प्रसाद जी ने क्यूबा में भारत के राजदूत वाला प्रसंग उठाया। उन्होंने कहा- "क्यूबा में हमारे देश के राजदूत एक अवसर पर वहाँ अंग्रेज़ी में बोलने लगे, तो वहाँ एक व्यक्ति ने कहा, दूसरे सभी देशों के राजदूत तो अपने देश की भाषा में बोल रहे हैं, क्या आपके देश की कोई भाषा नहीं है? फिर स्वयं ही उसने उत्तर दिया- अच्छा, भारत तो दो-तीन सौ वर्षों तक इंग्लैंड का उपनिवेश रहा है, इसलिए अंग्रेज़ी ही आपकी राजभाषा है।" (अंक-13-14, पृ. 16)। कहा जाता है, कि इसी से मिलती-जुलती घटना तत्कालीन सोवियत रूस में भारत की राजदूत के रूप में कार्यभार संभालने की प्रक्रिया का पालन करने के क्रम में वहाँ के राष्ट्रपति के समक्ष अपने दस्तावेज़ प्रस्तुत करते समय विजयलक्ष्मी पंडित के साथ भी हुई थी।

अरुण नागरी में 'दस्तावेज़' के अंतर्गत माता प्रसाद जी का एक पत्र प्रकाशित हुआ है, जो हृदय नारायण सिंह (प्रधान संपादक- साहित्य धर्मिता, जौनपुर) के पत्र के उत्तर में लिखा गया है। यह पत्र अरुण नागरी के ही छठे अंक में प्रकाशित हुआ था, जिसके मूल भाग का एक अंश इस प्रकार है- "माता प्रसाद जी अरुणाचल में हिंदी के लिए सराहनीय कार्य कर रहे हैं, पर थोपने से भयभीत होने की बात क्यों करते हैं। सदाचार, संविधान, न्याय-विधान, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्रगान के बारे में थोपना सर्वथ उचित है, वैसे ही राष्ट्रभाषा के विषय में भी। हमारे नेता यह नहीं समझ पा रहे हैं।" (अंक-6, पृ. 9)। माता प्रसाद जी ने उन्हें जो उत्तर दिया है, उसमें हिंदी के संदर्भ में अरुणाचल की यथार्थ स्थिति और कुछ तर्क समाहित हैं। इस आलेख में पत्र को ज्यों त्यों प्रस्तुत न करके उसके निबंधात्मक-कथ्य में प्राप्त स्थितियों और तर्कों का चयन करके उन्हें संख्या देकर प्रस्तुत किया गया है। ऐसा मात्र विषय को समझाने की दृष्टि से किया गया है। सभी संख्याओं के सामने उद्धरण-चिह्नों के बीच की भाषा पत्र के मूल-पाठ की भाषा है, उसमें कोई परिवर्तन नहीं किया गया है। इस पत्र में जो बिंदु उभर सके हैं, वे आगे दिए जा रहे हैं- 1. "अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर में एक अहिंदी भाषी राज्य है।" 2. "अंग्रेज़ी शासन-काल में यह नेफा के नाम से जाना जाता था। असम के गवर्नर का एक एडवाइजर इसका प्रशासक होता था। एडवाइजर प्राय: अंग्रेज़ होते थे। वे सारा कामकाज अंग्रेज़ी में करते थे। उन्होंने अंग्रेज़ी को प्रोत्साहित किया।" 3. "यहाँ के ट्राइबलों की अपनी-अपनी भाषाएँ थीं। क्योंकि यह असम से शासित होता था, इसलिए कुछ स्थानों में असमी भी पढ़ाई जाती थी।" 4. "जब नए राज्य के रूप में इसका उदय हुआ तब अंग्रेज़ी इसकी राज-भाषा बनी, उसे पढ़ाने को प्रोत्साहन दिया गया।" 5. "नया राज्य बनने पर यहाँ केंद्र और राज्य सरकार में देश के प्राय: हर राज्यों से हिंदी या अहिंदी भाषी अधिकारी, इंजीनियर, अध्यापक नियुक्त हुए, उस समय उनके बच्चों के लिए केंद्रीय विद्यालय खुले, जिनमें हिंदी भी पढ़ाई जाती है।" 6. "आवश्यकता को देखते हुए यहाँ की सरकार ने अपने पाठ्यक्रमों में कक्षा 10 तक हिंदी को द्वितीय भाषा के रूप में आवश्यक कर दिया।" 7. "भारतीय सेना, रेडियो और टीवी के गीतों ने यहाँ के लोगों लोगों को हिंदी सीखने में बड़ी

सहायता की।" 8. "यहाँ जो लोग हिंदी बोलते हैं, उसकी लिपि रोमन ही है। इसी बात की तरफ ध्यान दिलाने के लिए मैंने यहाँ के अधिकारियों और विधायकों को एक अर्ध-शासकीय पत्र लिखा था, जिसमें सुझाव दिया था, कि जिन जनजातीय भाषाओं की अपनी लिपि नहीं है, उसे नागरी लिपि में लिखना उचित है।" 9. "इसी संदर्भ में मैंने यह भी लिखा था, कि किसी पर यह थोपा नहीं जा रहा है।"10. "भारत के संविधान की धारा 343 [3] में यह व्यवस्था की गई है, कि भाषा की दृष्टि से 'ग' श्रेणी के राज्य, जो अहिंदी भाषी हैं (पूर्वोत्तर के सातों राज्य...) उन्हें अंग्रेज़ी में कार्य करने की छूट है, उनके लिए हिंदी अनिवार्य नहीं है। इसलिए मैंने यहाँ हिंदी संविधान के विरुद्ध थोपना उचित नहीं समझा।" 11. "जहाँ तक न्याय-विधान, संविधान, राष्ट्रीय ध्वज, राष्ट्र-गान का प्रश्न है, वह तो सबके लिए अनिवार्य है, क्योंकि इनका कोई दूसरा विकल्प नहीं है। किंतु राष्ट्र-भाषा का दूसरा विकल्प है।" 12. "न्यायालय की भाषा भी संविधान की धारा 348 के अंतर्गत सर्वोच्च न्यायालय, उच्च न्यायालय की प्रामाणिक भाषा अंग्रेज़ी ही है।" 13. "अरुणाचल एक सीमांत राज्य है। इसमें क्रिश्चियन धर्म के लोग भी हैं, इनके 10 एम. एल. ए. और कुछ मंत्री भी हैं। ये अंग्रेज़ी के समर्थक हैं। यदि मैं उन पर हिंदी थोप दूँ, तो यहाँ आज जो हिंदी का विकास हो रहा है, उसका विरोध शुरु हो जाएगा।" 14. "एक राज्य में हिंदी प्रसारवाद का विरोध हो रहा है।....आपकी बात मान कर यदि मैं उन पर हिंदी थोप दूँ, तो यहाँ पर भी हिंदी और हिंदी के समर्थकों के विरुद्ध एक आंदोलन खड़ा हो जाएगा।" 15. "प्रदेश के कई विधायकों ने, जिनमें क्रिश्चियन भी हैं, उन्होंने मुझसे कहा है, कि हमारे बच्चे तो अब घर में भी अपनी ट्राइबल भाषा न बोल कर हिंदी ही में बोलते हैं।" 16. "बहुत से शासन के अधिकारी भी अपनी मीटिंगों में हिंदी ही बोलते हैं।" 17. "हिंदी का कहीं भी विरोध नहीं है। यदि इन पर हिंदी थोप दी जाए, तो इसकी प्रतिक्रिया होगी और हिंदी का विरोध शुरू हो जाएगा।" (पृ. 49-50)।

उपर्युक्त में से किसी भी बिंदु पर न तो टिप्पणी की आवश्यकता है और न उसकी व्याख्या की। केवल यह कहना आवश्यक है, कि माता प्रसाद जी का यह पत्र हिंदी के उन सभी अति-उत्साही भक्तों के लिए एक समर्थ सीख है, जो ऐतिहासिक और राजनैतिक परिस्थितियों के कारण उत्पन्न भारत की भाषा-समस्या के यथार्थ पर विचार न करके शासन-सत्ता के बल पर एक ही झटके में समस्त राज्यों में हिंदी को अनिवार्य बनाना चाहते हैं। वे भूल जाते हैं, कि हिंदी मूलत: न शासन की भाषा है, न राज्य-सत्ता की, बल्कि वह जन-सामान्य की भाषा है और जनता की सामूहिक इच्छा-शक्ति के बल पर ही संपूर्ण राष्ट्र में फैलेगी। अरुणाचल में जन-सामान्य की सामूहिक इच्छा-शक्ति ने अपना प्रभाव दिखा दिया है। इसका एक प्रमाण माता प्रसाद जी के पत्र में दिखाई देता है, जबकि एक और प्रमाण अरुण नागरी के ही दूसरे अंक में प्रकाशित वैद्यनाथ सिंह के आलेख, 'बहुभाषाई समुदायों में भाषा का प्रयोग- अरुणाचल के विशेष संदर्भ में' से प्रस्तुत किया जा सकता है- "प्रत्येक अरुणाचलवासी की भाषा दैनंदिनी तीन भाषाओं से संबंधित है- हिंदी, अंग्रेज़ी और उनकी अपनी मातृ-भाषा।... लिखने-पढ़ने का कर्म अंग्रेज़ी में संपादित होता है, यह मुख्यत: कार्यालय और शिक्षण संस्थाओं तक सीमित है। किसी भी जटिल सवाल का समाधान वे हिंदी में आसानी से समझते हैं।.... वे अपने घर और कार्यालय के बाहर तमाम कार्य हिंदी में संपादित करते हैं। यहाँ हिंदी निस्संदेह एक समृद्ध संपर्क भाषा (लिंक लैंग्वेज) की भूमिका निभाती है।" (अंक-2, पृ. 12)।

अरुण नागरी के 'आंतर भारती' कॉलम के अंतर्गत दूसरे और तीसरे अंक में न्यिशी भाषा की कवयित्री, दिमिन तेली की दो कविताएँ संपादक द्वारा किए गए हिंदी-अनुवाद सहित प्रकाशित हुईं। इनमें से एक में दिमिन कहती हैं- "आप लोगों को, इस संसार से छोड़ कर/जाने को सोचा भी नहीं था/प्रतिदिन प्रति वर्ष इस जीवन को/एक साथ जीने का सोचा था/मेरा यह सोचना निरर्थक हो गया/मैं नहीं रहूँगी तब भी यह सूरज रहेगा/मैं नहीं रहूँगी तब भी यह चांद निकलता रहेगा।" (अंक-2, पृ. 4)। दूसरी कविता में उन्होंने कहा- "हम दोनों जब साथ-साथ रहते थे/सुबह-सुबह चिड़ियाँ चहचहा कर जगाती थीं/जब हम दोनों साथ-साथ घूमते-फिरते थे/प्रति सुबह फूलों को खिला हुआ देखते थे/अभी न तो चिड़ियाँ चहचहाती हैं/न फूल खिल रहे हैं/ हर सुबह जगाने वाली चिड़ियाँ/आपको अब भी जगाती होंगी/हर सुबह आपके बगीचे में फूल अब भी खिलते होंगे/आपका दुख मैं समझती हूँ/मेरे जीवन का सारा सुख आपको मिले।" (अंक-3, पृ. 7)। पाँचवें अंक में आपातानी कवि, मिहिन कानिङ् की कविता है, जिसके अनुवादक का नाम नहीं दिया गया है। इस कविता में कहा गया है- "सूर्य देवता की पूजा करेंगे/शशि देवता की पूजा करेंगे/सूर्य देवता की गोद में हम/शशि देवता की गोद में हम/सूर्य देवता की पूजा करके/शशि देवता की पूजा करके/सूर्य देवता का आशीर्वाद लूँगा/शशि देवता का आशीर्वाद लूँगा/जीने से भी सच बोल कर जिएँगे/मरने से भी सच बोल कर मरेंगे।" (पृ. 9)। छठे अंक में होङ्गर इङो की गालो कविता है, अज्ञात कारणों से जिसका हिंदी अनुवाद नहीं दिया गया है। अंक 9-12 में आदी जनजाति का परंपरागत उद्बोधन-गीत दिया गया है, जिसका भावार्थ धर्मराज सिंह द्वारा प्रस्तुत किया गया है। इस गीत में जातीय-एकता का संदेश है। इसके भावार्थ का एक अंश इस प्रकार है- "सृष्टि के आरंभ से ही हम सब एक हैं। भले ही हम मिन्योङ्, गालो, पासी, पादाम, बोरी, बोकार, कार्को, शिमोङ् आदि जनजातियों के नाम से जाने जाते हैं।.... हमारे जीवन की पद्धति में हम लोग सोलुङ्, मोपिन, रेह, न्योकुम, लोसर, द्री, सांकेत, मोल, लोकू, खान आदि त्योहारों को अलग-अलग ढंग से मनाते हैं, लेकिन इन सारे त्योहारों का संदेश एक है; इसलिए ये सारे त्योहार हम सबके हैं।" (पृ. 9)।अंक-13-14 में मिहिन कानिङ् की आपातानी कविता, 'म्योको दीतुङ्' (म्योको त्योहार) प्रकाशित की गई है, जिसके भावार्थकर्ता का नाम नहीं दिया गया है। यह भी उल्लेखनीय है, कि छठे अंक में आंतर भारती से अलग असम के किंवदंती-पुरुष संगीतकार भूपेन हजारिका के साथ ही पुष्पा काकति और श्रीगोकुल काकति बायन की एक-एक असमिया कविता बिना हिंदी अनुवाद के प्रकाशित की गई है। इस प्रकार, अरुण नागरी का आंतरभारती कविता-आयोजन नागरी लिपि में विभिन्न भाषाओं के काव्य के प्रकाशन के साथ ही भारतीय साहित्य के लिए अध्ययन सामग्री उपलब्ध कराने की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। इससे जहाँ अरुणाचल की भाषाओं को लिखने के लिए नागरी लिपि की शक्ति-सामर्थ्य का पता चलता है, वहीं पूर्वोत्तर के भाषा-समाजों की सृजनात्मकता एवं उनके सांस्कृतिक-वैभव की आंशिक जानकारी भी मिलती है।

\+ \+ \+ \+ \+ \+

अरुण नागरी का चौथा अंक (अक्तूबर-दिसंबर, 1995) 'शंकरदयाल सिंह स्मृति अंक' है। शंकरदयाल सिंह (27 दिसंबर, 1937 – 25 अक्तूबर, 1995) राजनीतिक क्षेत्र के प्रभावशाली व्यक्ति और

लेखक होने के साथ ही संसद तथा संसद के बाहर हिंदी के प्रबल समर्थक के रूप में जाने जाते थे। इस अंक के संपादकीय में उनके व्यक्तित्व के विविध पक्षों का स्मरण किया गया है। इसके साथ ही उनके पाँच लेख प्रकाशित किए गए हैं- 'हिंदी अस्मिता और राष्ट्रीयता की भाषा', 'उन्हें भूल नहीं पाता', 'वे मुझे खंड-खंड में याद आते हैं', 'कुछ ख्यालों में कुछ ख्वाबों में' तथा 'स्वातंत्र्योत्तर हिंदी साहित्य की अंतश्चेतना'। इनमें से पहला लेख उन्होंने विशेष रूप से अरुण नागरी (संपादक को उनके आकस्मिक निधन के कुछ दिन पूर्व ही 13 अक्तूबर, 1995 को प्राप्त) के लिए ही लिखा था।

\+ + + + + +

अरुण नागरी में अरुणाचल के समाज और संस्कृति को गहराई से समझने के लिए अनेक आलेखों का प्रकाशन भी किया गया। स्मरणीय है, कि 19.11.1995 को अरुणाचल विश्वविद्यालय द्वारा 'अनादि ट्राइबल आर्ट एंड कल्चर' विषय पर एक संगोष्ठी आयोजित की गई थी, जिसके उद्घाटन-सत्र में तत्कालीन राज्यपाल, माता प्रसाद जी ने जो भाषण दिया था, उसे अरुण नागरी के छठे अंक में प्रकाशित किया गया है। उस भाषण में अरुणाचल प्रदेश के आदिवासी समुदायों की संस्कृति और उनके विकास के संबंध में भारत केपहले प्रधानमंत्री, पंडित जवाहरलाल के पाँच सूत्रों का उल्लेख है। दरअसल, नेहरु ने तत्कालीन नेफा के प्रशासन के संबंध में असम के राज्यपाल के सलाहकार, वेरियर एल्विन की पुस्तक, 'फिलॉसफी फॉर नेफा' की भूमिका लिखी थी। इस पुस्तक के प्रथम संस्करण की भूमिका (16 फरवरी, 1957) में जवाहरलाल नेहरु ने इस बात पर बल दिया था, कि आदिवासी समुदायों और क्षेत्रों पर राजनैतिक और आर्थिक शक्तियाँ थोपी नहीं जानी चाहिए। इतना ही नहीं, इसी भूमिका में वे यहाँ तक कहते हैं, कि "जल्दबाज़ी में उनके ऊपर कोई चीज़ थोपी नहीं जानी चाहिए। इनमें परिवर्तन धीरे-धीरे आने देना चाहिए; जिससे वे स्वयं अपनी समस्याओं का निराकरण करते रहें" (माता प्रसाद की 'मनोरम भूमि अरुणाचल' पुस्तक के पृ. 297 पर प्रकाशित हिंदी अनुवाद से)। पंडित नेहरु ने वेरियर एल्विन की इसी पुस्तक के दूसरे संस्करण की भूमिका (9 अक्तूबर, 1958) लिखते हुए पुन: इस बात पर बल दिया, कि 'आदिवासी क्षेत्रों का विकास मंद गति से न हो, किंतु अति-प्रबंधन से बचा जाए।'(वही, पृ. 298)। इसी भूमिका में वे पाँच सूत्र दिए, जिन्हें अरुणाचल विश्वविद्यालय की संगोष्ठी में पढ़ कर सुनाया गया और अरुण नागरी में प्रकाशित किया गया। ये सूत्र इस प्रकार हैं-

1. लोगों को अपनी प्रतिभा के सहारे प्रगति करनी चाहिए। उन पर हमें कुछ थोपना नहीं चाहिए। उनकी पारंपरिक कला और संस्कृति को बढ़ावा देने का प्रयास करना चाहिए।
2. जनजातियों के भूमि और वन के संबंध के में प्राप्त जनजातीय अधिकारों का हमें सम्मान करना चाहिए।
3. उनके ही लोगों के बीच से एक टीम को, प्रशासन और विकास-कार्य के लिए प्रशिक्षित करना चाहिए। नि:संदेह आरंभ में कुछ तकनीकी व्यक्तियों को बाहर से लाना चाहिए तो भी इन क्षेत्रों में बहुत अधिक बाहरी लोगों को नहीं लगाना चाहिए।

4. हमें इन क्षेत्रों में योजनाओं का अधिक बोझ नहीं लादना चाहिए। हमें इनके सामाजिक और शैक्षणिक क्षेत्रों में प्रतिद्वंद्विता की भावना से नहीं, बल्कि सहयोग की भावना से कार्य करना चाहिए।
5. हमें सांख्यिकी या खर्च किए गए धन के आधार पर उपलब्धियों का आकलन नहीं करना चाहिए, वरन मानवीय गुणवत्ता की प्राप्ति के आधार पर परिणाम का मूल्यांकन करना चाहिए।

(अरुण नागरी, अंक-6, पृ. 19)

वेरियर एल्विन की किताब अंग्रेज़ी में थी, इसलिए भारत की अधिसंख्य जनता को नेहरु के इन सूत्रों के बारे में पता चलना कठिन था, जबकि हिंदी की पुस्तक, मनोरम भूमि अरुणाचल और पत्रिका, अरुण नागरी ने इन्हें बड़े स्तर पर प्रचारित किया तथा यह भी बताया, कि अरुणाचल के आदिवासी-क्षेत्रों के जीवन और विकास के लिए प्रस्तुत ये सूत्र न केवल अरुणाचल, बल्कि संपूर्ण भारत के आदिवासी-समुदायों के संदर्भ में प्रासंगिक हैं।

आदिवासी समुदाय प्रकृति पर आश्रित होते हैं। उसी की गोद में, उसी से प्राप्त स्रोतों से उसका जीवन संभव होता है, अंत: वे उसके प्रति भावनात्मक लगाव, आस्था और पूजा-भाव रखते हैं। 'अरुणाचल प्रदेश में प्रकृति पूजन' शीर्षक लेख में वैद्यनाथ सिंह कहते हैं- "अरुणाचल के मूल निवासियों में प्रकृति अपने विभिन्न रूपों में धार्मिक प्रेरणा की स्रोत रही है। लोगों की प्रतिक्रियाएँ, आदर, भय, उत्सव, आश्चर्य, कौतूहल, जिज्ञासा आदि रूपों में दृष्टिगत होती है। सूर्य और चंद्रमा का प्रभाव जीवन के अस्तित्व के लिए प्रेरणादायक और भयावह, दोनों होता है, अंत: तानी समुदाय की जनजातियाँ दोन्यी (सूर्य) और पोलो (चंद्रमा) पर आधारित एक अद्वितीय विश्वास की पोषक बन गई हैं।" (अंक-9-12, पृ. 39)। दोन्यी-पोलो संबंधी यह विश्वास केवल तानी समूह में ही नहीं, बल्कि कुछ भिन्न रूप में अन्य समुदायों में भी पाया जाता है। वीरेंद्र कुमार सिंह ने 'दोन्यी-पोलो की अवधारणा' शीर्षक लेख में बताया है- "'दोन्यी-पोलो' की सत्ता में अधिकांश जनजातियाँ विश्वास करती हैं। लेकिन दोन्यी-पोलो की अवधारणा के संबंध में मतभेद है। सामान्यत: इसे सूर्य और चंद्रमा का प्रतीक माना जाता है। दोन्यी-पोलो को सर्वशक्तिमान, सर्वव्यापी, सर्व हितकारी और सर्वांतरयामी माना जाता है।" (अंक-2, पृ. 22)।

अरुण नागरी के प्रवेशांक में 'दो मिनियोङ् पुरा कथाएँ' शीर्षक के अंतर्गत सृष्टि-निर्माण संबंधी दो पुरा-कथाएँ प्रकाशित हुई हैं। इन्हें भारती वर्मा ने वेरियर एल्विन द्वारा संग्रहीत करके अंग्रेज़ी में लिखी गई पुरा-कथाओं में से चुन कर हिंदी में अनूदित किया है। इनमें से एक में पृथ्वी पत्नी है और आकाश पुरुष। कभी ये दोनों पास-पास ही रहते थे, लेकिन एक दिन मिथुन नामक पवित्र-पशु ने अपने सींगों से आकाश को ऊपर उछाल दिया, जिससे वह बहुत ऊपर चला गया। एक समय जब पत्नी पृथ्वी की इच्छा अपने पति आकाश से मिलने की हुई, तो उसने अपना शरीर ऊपर की ओर उठाना प्रारंभ किया। उसी समय दोन्यी-पोलो के आकर उपस्थित हो जाने से प्रकाश फैल गया। इससे पृथ्वी को भारी लज्जा हुई। कहा जाता है, कि उसके जो अंग अन्य से अधिक ऊपर उठ गए थे, वे वैसे-के-वैसे ही रह गए। वे ही इस पृथ्वी पर पर्वत बन गए। धर्मराज सिंह ने

'सृष्टि निर्माण के संबंध में गालो जनजाति के लोगों का विश्वास' शीर्षक लेख में एक कथा का उल्लेख किया है- "सृष्टि के आरंभ में केवल घने बादल, जिन्हें इनकी भाषा में 'पांब्' कहते हैं और कोहरा, जिन्हें ये लोग 'पाम्बा' कहते हैं, सब जगह छाए हुए थे। समय बीतने के साथ-साथ धीरे-धीरे इन दोनों का कुछ हिस्सा कड़ा होने लगा। बादलों का परिवर्तित यह भाग उसका पेट बन गया और कुहरे का परिवर्तित कठोर भाग उसका वीर्य बन गया। समय के साथ-साथ ये दोनों अंग एक-दूसरे की ओर आकर्षित होने लगे। एक दिन ऐसा हुआ, कि ये नए दोनों अंग एक-दूसरे से चिपक गए। दोनों के संयोग के परिणामस्वरूप कालांतर में पृथ्वी (हिसी) और आकाश (मेदो) का जन्म हुआ। दोनों एक साथ रहने लगे और धीरे-धीरे उनमें विकास होने लगा। दोनों अंडाकार (तार्पी)- एक तरह के स्थानीय फल की तरह ही थे। दोनों की बाह्य परिधि अंधेरे में जुगनू की तरह चमकती थी। इनमें पृथ्वी पुरुष और आसमान स्त्री थे। पुन: पृथ्वी (हिसी) और आकाश (मेदो) के संयोग से सृष्टि की आदि-माता, 'जीमी आने' और आदि-पुरुष 'ओपो ताको' का जन्म हुआ।" (अंक- 9-12, पृ. 32)। इसके पश्चात इस पुरा-कथा में बताया गया है, कि जीमी आने और ओपो ताको के बीच उपजे आकर्षण के फलस्वरूप सूर्य, चंद्रमा, यक्ष, स्त्री की अजस्र-शक्ति, पशु-पक्षियों तथा ऋतुओं की उत्पत्ति हुई।

भारती वर्मा ने अरुण नागरी के अंकों में अरुणाचल के समाज और संस्कृति के संबंध में निरंतर लिखा। 'सिमोङ् जनजाति में पारिवारिक व्यवस्था' शीर्षक लेख में वे एक स्थान पर लिखती हैं- "सिमोङ् जनजाति की पारिवारिक व्यवस्था पितृ-सत्तात्मक है। परिवार के सभी सदस्य पिता की आज्ञा का पालन करते हैं। पुत्रों के जवान होने पर प्राय: परिवार बँट जाते हैं, अंत: अधिकांश परिवार एकल-परिवार हैं। पिता अगर चाहे, तो अपने पुत्रों को उत्तराधिकार के अधिकार से वंचित कर सकता है।" (अंक-2, पृ. 27)। यह आदिवासी समुदाय अरुणाचल की 'आदी' जनजाति के 'मिन्योङ्' वर्ग के अंतर्गत आता है और परिवार संस्था में मामा का महत्व अनेक संदर्भों में अधिक माना जाता है। भारती वर्मा ने बताया है, कि "सिमोङ् जाति के परिवार में मामा का विशेष महत्व है। वहाँ मामा, अर्थात माँ के भाई को ही व्यक्ति का वास्तविक शुभचिंतक माना जाता है। कुछ विशेष मामलों में तो वह पिता से भी अधिक महत्वपूर्ण समझा जाता है। उदाहरण के लिए यदि किसी व्यक्ति के साथ मार-पीट की घटना हो, तो भले ही यह कार्य उसके पिता ने ही क्यों न किया हो, उस व्यक्ति के मामा उसकी तरफ से दोषी व्यक्ति के विरुद्ध 'केबाङ्', अर्थात परंपरागत रीति से मुकद्दमा शुरु करेंगे और अपने भांजे को न्याय दिलाने का भरपूर प्रयास करेंगे।" (वही, पृ. 28)।

यहाँ यह उल्लेखनीय है कि पारिवार नामक संस्था की दृष्टि से जहाँ सिमोङ् जनजाति में एकल-परिवारों का आधिक्य पाया जाता है, वहीं वीरेंद्र कुमार सिंह ने अपने लेख, 'शेरदुक्पेन जनजाति : संक्षिप्त परिचय' में सूचित किया है, कि शेरदुक्पेन-समुदाय संयुक्त परिवार व्यवस्था वाला जनजाति-समुदाय है। वे शेरदुक्पेन जनजाति की परिवार व्यवस्था के विषय में लिखते हैं- "शेरदुक्पेन समाज पितृसत्तात्मक है। पिता ही परिवार के सभी दायित्वों का वहन करता है। उसकी अनुमति के बिना परिवार का कोई सदस्य किसी प्रकार का फैसला नहीं कर सकता है। इस समाज में संयुक्त परिवार की प्रधानता है।" (अंक- 9-12, पृ. 20)।

आदिवासी समुदायों में स्त्री की स्थिति और भूमिका हमेशा से मानव-विज्ञानियों और समाजशास्त्रियों के अध्ययन का विषय रही है। आधुनिक युग में नव-विकसित स्त्री-अध्ययन नामक ज्ञानानुशासन में इसका महत्व और भी बढ़ गया है। अरुण नागरी में प्रकाशित अनेक लेखों में प्रसंगवश स्त्री की स्थिति का उल्लेख प्राप्त होता है, लेकिन एक ही साथ अनेक जनजातियों की परिवार और समाज व्यवस्था में स्त्री की यथार्थ स्थिति का पता वीरेंद्र कुमार सिंह के, 'अरुणाचल प्रदेश में महिलाओं की स्थिति' शीर्षक लेख से चलता है। यह लेख अरुण नागरी के पाँचवें अंक में (पृ. 26-31) प्रकाशित हुआ है। इससे चुने गए कुछ उद्धरण एक ही स्थान पर देखें-

- "आदी समुदाय के अन्य वर्ग की अपेक्षा गालो समुदाय की लड़कियों पर अत्यधिक प्रतिबंध होता है। उनके बाहर आने-जाने पर नज़र रखी जाती है तथा माता-पिता अपनी लड़कियों की गतिविधियों पर नियंत्रण रखते हैं।" (पृ. 28)।
- "पादाम समुदाय की लड़कियों को गालो वर्ग की लड़कियों से अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। इस समुदाय की लड़कियों का अपना अलग शयनागार होता है, जिसे 'रासेंग' कहा जाता है। रासेंग में लड़कियाँ अपने प्रेमियों से मिल सकती हैं और स्वेच्छा से अपने जीवन साथी का चयन कर सकती हैं।" (पृ. 27)।
- आपातानी समाज में महिलाओं को सामाजिक और राजनैतिक मामलों में भाग लेने का अधिकार नहीं है। इस समाज में नारियों को कुछ अधिक स्वतंत्रता तो प्राप्त है, लेकिन उनकी बुद्धि को पुरुषों की बुद्धि से प्राय: हीन समझा जाता है।" (28)।
- "निशिंग समाज में महिलाओं को अपेक्षाकृत अधिक स्वतंत्रता प्राप्त है। जो लड़की मेहनती और बुद्धिमान है, उसे यह स्वाधीनता है, कि वह अपनी रुचि के अनुसार अपना जीवन व्यतीत कर सकती है। विधवा को पुनर्विवाह की छूट है। यदि कोई कम उम्र की महिला विधवा हो जाती है, तो समाज उसे यह अधिकार देता है, कि अपनी पसंद के अनुसार वह किसी भी पुरुष के साथ शेष जीवन व्यतीत कर सकती है।"(पृ. 29)।

लेखक के इस अध्ययन में यह संकेत छिपा हुआ है, कि उसने जिन आदिवासी समुदायों की स्त्रियों के बारे में जानकारी दी है, उनके बारे में शोधपरक अध्ययन के अनेक अवसर हैं और यह भी, कि इसे (लेखक के प्रस्ताव के बावजूद) अरुणाचल के सभी आदिवासी समुदायों की स्त्रियों पर लागू करना उचित नहीं होगा। इस अध्ययन में यह भी पता चलता है, कि कुछ आदिवासी समुदायों ने अपनी ओर से स्त्री को प्रेम और विवाह के संदर्भ में स्वयं निर्णय लेने की स्वतंत्रता प्रदान की है। इसी के साथ विधवा-विवाह प्रचलन में है, इससे भी आगे बढ़ कर कुछ आदिवासी समुदाय स्त्री को विधवा हो जाने पर अपनी इच्छा के अनुकूल पुरुष के साथ जीवन बिताने की स्वतंत्रता देते हैं, ऐसा निर्णय करने पर उसकी सामाजिक मर्यादा को कोई नुकसान नहीं पहुँचता। इसी के साथ यह जान लेना भी आवश्यक है, कि कुछ आदिवासी समुदायों में बहुपत्नी रखने, अर्थात

बहुविवाह जैसी सामाजिक कुप्रथा को कोई सामाजिक मान्यता प्राप्त नहीं है। आदिवासी समुदायों में स्त्री घर और गाँव की आर्थिक गतिविधियों से अनिवार्य रूप से जुड़ी हुई है, कोई भी धार्मिक कृत्य उसके बिना प्राय: संपन्न नहीं होता, इसके बावजूद कहीं-कहीं स्त्री को गाँव-पंचायतों के कार्यों में निर्णायक भूमिका से वंचित किया जाता है और कहीं-कहीं उसे बौद्धिक दृष्टि से पुरुष के संदर्भ में दोयम दर्जे का माना जाता है। स्त्री के संदर्भ में आदिवासी-समुदायों का यह जीवन-यथार्थ हमारी नागरिक संस्थाओं (सामाजिक, धार्मिक और राजनैतिक) के अस्तित्व में आने से बहुत पुराना है। इसलिए यह सहज ही हमारे आधुनिक स्त्री-चिंतन, उससे संबंधित अवधारणाओं और शोध योजनाओं के समक्ष चुनौती है। अरुणाचल की स्त्रियों के संबंध में अध्ययन का एक पक्ष इस प्रदेश के जीवन में आधुनिक शिक्षा, प्रौद्योगिकी, सूचना-संचार, बाज़ार के विस्तार और नवीन आर्थिक-सामाजिक परिवर्तनों के हस्तक्षेप से जुड़ा हुआ भी है। वर्तमान में स्थानीय शिक्षण-संस्थानों में स्त्रियों की उपस्थिति उत्साहजनक है, संख्या में कम ही सही, किंतु उन्हें अपने देश और विश्व के श्रेष्ठतम शिक्षा-केंद्रों में अध्ययन करते देखा जाने लगा है, वे खेल, लेखन, वैज्ञानिक-शोध, चिकित्सा, पत्रकारिता, मनोरंजन, फैशन और सौंदर्य जैसे क्षेत्रों में आगे आने लगी हैं। उनमें धीरे-धीरे राजनैतिक चेतना का विकास हो रहा है, वे पर्यावरण और जल-जंगल-ज़मीन से जुड़े जनांदोलनों में भाग लेने लगी हैं और अपने ही समुदाय के सामाजिक-जीवन की बुराइयों के विरुद्ध आवाज़ भी उठाने लगी हैं। यह भविष्य में होने वाले एक बड़े परिवर्तन की भूमिका है, जिसकी ओर समाज वैज्ञानिकों का ध्यान जाना चाहिए।

राजनीति शास्त्र के भारतीय अध्येताओं में से अनेक ने अब यह मान लिया है, कि हमारे देश की वर्तमान पंचायत-प्रणाली के निर्णायक-सूत्र भारत के आदिवासी समुदाय में प्राचीन-काल से व्यापक रूप में प्रचलित पंचायत व्यवस्था में छिपे हैं। अरुण नागरी के सक्रिय लेखक और पूर्वोत्तर के जन-जीवन के अध्ययन में गहरी रुचि रखने वाले, वीरेंद्र कुमार सिंह ने 'अरुणाचल का लोक जीवन' लेख में 'केबाङ्' का परिचय दिया है- "'केबाङ्' अरुणाचल के जन-जीवन में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। यह इस प्रदेश की अत्यंत प्राचीन पंचायती व्यवस्था है, जिसमें आर्थिक, राजनैतिक, धार्मिक, सांस्कृतिक सभी विवादों का निपटारा किया जाता है। यह गाँव की पूरी शासन-व्यवस्था के लिए उत्तरदायी होता है। ग्राम-प्रधान को 'गाँव बूढ़ा' के नाम से जाना जाता है। 'गाँव-बूढ़ा' बहुत सम्मानित व्यक्ति होते हैं, जिनके निर्णयों की आलोचना नहीं की जा सकती। विभिन्न जनजातियों में केबाङ् के भिन्न-भिन्न नाम हैं।" (अंक-3, पृ. 10)। लेखक ने अपने एक अन्य लेख, 'शेरदुक्पेन जनजाति : संक्षिप्त परिचय' में इस जनजाति की परंपरागत पंचायत के ढाँचे का परिचय प्रस्तुत किया है, जो हमारी वर्तमान पंचायत व्यवस्था और लोकतंत्र के जानकारों की आँखें खोलने वाला है- "प्रत्येक शेरदुक्पेन गाँव में एक ग्राम परिषद होती है, जो आंतरिक प्रशासन एवं ग्राम-सुरक्षा के लिए उत्तरदायी होती है। इसके सभी सदस्य अवैतनिक होते हैं। परिषद का प्रधान होता है, उसे 'थिक अखाव' कहते हैं। 'जंग में' (परिषद सदस्य) काचंग तथा चौकीदार प्रशासन के कार्यों में थिक अखाव अथवा ग्राम प्रधान की सहायता करते हैं।" (अंक-9-12, पृ. 21)। इसी आलेख में थिक अखाव के निर्वाचन, उसे पद से हटाने और नए थिक अखाव के चयन का उल्लेख भी किया गया है- "आम सभा में सभी ग्रामवासी ग्राम प्रधान या थिक अखाव का चुनाव करते हैं। पद वंशानुगत नहीं है। यदि थिक अखाव ग्रामवासियों का विश्वास खो देता है, तब

गाँववासी उन्हें हटा कर नए थिक अखाव का चुनाव करते हैं।" (वही, पृ. 21)। यह ग्राम-परिषद यातायात-सुविधा की व्यवस्था और सामाजिक-धार्मिक उत्सवों के आयोजन का कार्य भी करती है।

अपने एक लेख, 'अरुणाचल में बाल जन्म के समय रीति-रिवाज' में मनहंस कुमार 'नील' ने बालक के जन्म और नामकरण के अवसर पर प्रचलित प्रथाओं के बारे में कहा है कि अरुणाचल के आदिवासी समुदायों में "पुजारियों के निर्देशानुसार ही नवजात बच्चे के संस्कार पूरे किए जाते हैं। बच्चे का नामकरण मामा करता है। पुजारी भी नामकरण कर सकता है।" (अंक-9-12, पृ. 30)। वे कुछ जनजातियों के बारे में विशेष रूप से भी बताते हैं। उदाहरण के लिए "शेरदुक्पेन समाज में बच्चा जब तीन दिन का हो जाता है, तब उसका नामकरण किया जाता है। बच्चे का उचित नाम निकालने के लिए पुजारी बच्चे की जन्म-तिथि के आधार पर पवित्र पुस्तक से फल निकालता है। उसी फल को पढ़कर या समझ कर ही पुजारी बच्चे का नामकरण करता है..... शेरदुक्पेन लोग बच्चे को सूर्य-दर्शन भी कराते हैं।" (वही, पृ. 30)। इसी प्रकार नोक्ते आदिवासी समुदाय की प्रथा के विषय में वे बताते हैं, कि "नोक्ते लोगों में भी पुजारी तथा भविष्यवक्ताओं को सम्मान दिया जाता है। नामकरण के समय अनुमानकर्ता स्वर्गीय व्यक्तियों के नामों पर विचार करते हैं।... इसी तरह नोक्ते लोग भी बच्चे को प्रकृति के दर्शन कराते हैं। माँ, वृद्ध महिलाएँ तथा युवा लड़कियाँ बच्चे को लेकर खेत को जाती हैं। वहाँ वे पूजा-गान करती हैं।" (वही, पृ. 30)।

विवाह संबंधी प्रथाओं की जानकारी की दृष्टि से विनोद कुमार मिश्र का लेख, 'आदी जनजाति की विवाह पद्धति' ध्यान आकर्षित करता है। उन्होंने पादाम (पादाम मिन्योङ् वर्ग की उप-जनजाति) की विवाह-पद्धति के विषय में कहा है, कि "लड़के की माँ एक बाँस की नली में आपोङ् तैयार करती है। इस भेंट को लेकर वह लड़की के घर जाती है तथा अपने लड़के की ओर से वह लड़की अथवा उसकी माँ के सामने शादी का प्रस्ताव रखती है। यदि भेंट स्वीकार कर ली जाती है, तो समझा जाता है, कि प्रस्ताव मंजूर है।" (अंक-5, पृ. 35)। वे गालो (गालो वर्ग की उप-जनजाति) के बारे में कहते हैं- "जब कोई लड़का अथवा उसके माँ-बाप किसी लड़की से शादी करने के लिए इच्छुक होते हैं, तो वे किसी मध्यस्थ को लड़की के घर भेजते हैं। जब मध्यस्थ की बातों पर कुछ दिनों तक ध्यान नहीं दिया जाताऔर कन्या-पक्ष की ओर से कोई जवाब नहीं आता, तो लड़का अपने पिता तथा कुछ संबंधियों को लेकर लड़की के घर जाता है। साथ में वह आपोङ् और मांस भी ले जाता है। वर पक्ष के लोग कन्या पक्ष के सामने परोक्ष रूप से शादी का प्रस्ताव रखते हैं। अगर प्रस्ताव स्वीकार करना होता है, तो लड़की का पिता लाई हुई भेंट को स्वीकार कर लेता है।" (वही, पृ. 36)। त्युत्सा जनजाति में प्रचलित विवाह पद्धति के संबंध में धर्मराज सिंह ने अपने एक लेख, 'त्युत्सा जनजाति' में जो जानकारी दी है, वह आदिवासी जीवन का अध्ययन करने वाले समाज वैज्ञानिकों को यह बताने के लिए पर्याप्त है, कि उन्हें उसका विश्लेषण आधुनिक नागर-समाज की परंपराओं के मूल स्रोतों को खोजने व समझने की दृष्टि से भी करना चाहिए। त्युत्सा जनजाति पता नहीं कब से विवाह को जैविक गुणवत्ता के साथ ही स्त्री की निर्णय-स्वाधीनता से जोड़ कर देखती आ रही है। धर्मराज सिंह कहते हैं- "एक उपजाति की शादी पूर्व निश्चित चार-पाँच उपजातियों में ही हो सकती है। लेकिन अपनी ही उपजाति में शादी वर्जित है। ऐसा करने

वाला व्यक्ति समाज से निकाल दिया जाता है और उसे जुर्माना किया जाता है।" (अंक- 13-14, पृ. 26)। इसके आगे वे बताते हैं- "जब किसी लड़के के माँ-बाप लड़की के माँ-बाप के घर जाकर उनसे उनकी लड़की को अपने लड़के के लिए माँगते हैं, लड़की के माँ-बाप उन्हें यह कह कर विदा करते हैं, कि वे अपनी लड़की के विचार जान कर ही इस प्रस्ताव की स्वीकृति देंगे।" (वही, पृ. 26)। त्युत्सा जनजाति में विवाह की विधि में कोई जटिलता नहीं है- "शादी के दिन लड़के के माँ-बाप गोरु, सूअर और मुर्गे की बलि चढ़ा कर उनका मांस पकाते हैं और लड़की के माँ-बाप तथा अन्य सगे संबंधियों को आमंत्रित करते हैं। लड़का और लड़की अगल-बगल बैठते हैं और एक ही पात्र में दोनों एक साथ खाना खाते हैं। एक ही मांस के टुकड़े को एक बार लड़का फिर लड़की, एक दूसरे का जूठा खाते हैं। इस प्रकार उनकी शादी संपन्न हो जाती है।" (वही, 27)। विवाह के संदर्भ में एक अति महत्वपूर्ण तथ्य वीरेंद्र कुमार सिंह ने अपने लेख, 'शेरदुक्पेन जनजाति : संक्षिप्त परिचय' में प्रस्तुत किया है, जिसे भारत के समाज-सुधार आंदोलनों के अंतर्गत विवाह के साथ जुड़ी कुरीतियों के विरोध की दृष्टि से जान लेना उपयोगी होगा। वे कहते हैं, कि शेरदुक्पेन आदिवासी समुदाय में "एक विवाह का विधान सख़्ती से लागू है। बहुपति विवाह और बहुपत्नी विवाह मान्य नहीं है। किसी भी स्थिति में एक पुरुष एक ही समय में दो पत्नियाँ नहीं रख सकता है। विधवा-विवाह सामाजिक मान्यता प्राप्त है। समाज विधवा-विवाह को हेय नहीं समझता है।" (अंक- 9-12, पृ. 20)।

व्यक्ति की मृत्यु हो जाने पर आदिवासी समुदायों में पालन की जाने वाली परंपराओं का कई लेखों में उल्लेख प्राप्त होता है। 'दिरांग मोनपा' लेख में अरुण कुमार पांडेय ने अरुणाचल की 'मोङ्पा'(कुछ लेखकों ने मोंपा या मनपा भी लिखा है) जनजाति में मृत्यु के अवसर पर प्रचलित विधि-विधान का वर्णन किया है। वे कहते हैं- "ये लोग मरने के बाद लाश को लामा से पूछ कर या तो नदी में 108 टुकड़ा काट कर फेंक देते हैं या जला देते हैं। उस मरी हुई आत्मा की शांति के लिए कई दिनों तक कई चक्रों में पूजा करते हैं। मरने की तिथि से हर सातवें दिन लामा पूजा करता है। इस प्रकार 7 चक्रों में पूजा जाकर खत्म हो जाती है। मृत्यु संस्कार का प्रदोष 49 दिन तक रहता है। उसके बाद सभी लोग प्रदोष मुक्त होते हैं। मोनपा जब लाश को टुकड़ा करके फेंकता है, तब उस नदी की मछलियों को नहीं खाता। मोनपा लाश को टुकड़ा करके नदी के जानवरों को दान रूप में सौंपता है। मोनपा के अनुसार दान की गई वस्तु फिर ग्राह्य नहीं होती।" (अंक- 9-12, पृ. 28)। इसी जनजाति की मृत्यु संबंधी परंपरा को केंद्र में रख कर प्रसिद्ध लेखक, येसे दरजे थोङ्छी ने असमिया भाषा में, 'शव कटा मानुह' उपन्यास लिखा है, जिसका दिनकर कुमार ने 'शव काटने वाला आदमी' शीर्षक से हिंदी में अनुवाद किया है।

अरुण नागरी के विभिन्न अंकों में 'आदी (मिन्योङ) त्योहार' (भारती वर्मा, अंक-3), 'मिन्योङ् जन का पर्व- उनिङ' (मनहंस कुमार 'नील', अंक-6), 'आत्मिक शुद्धता का पर्व 'दिरी'' (त्रिभुवन लाल श्रीवास्तव, अंक-6), 'रेह-पूजा से जुड़े इदू-मिश्मी' (कृष्णेश्वर शर्मा, अंक-9-12) आदि लेख प्रकाशित हुए, जिनमें अरुणाचल के अनेक आदिवासी समुदायों के न्युकुम, सिरोम मोलो सोचुम,सोलुङ्, आरान्, एतोर, दोरुङ्, रेह आदि पर्व-त्योहारों की जानकारी प्रस्तुत की गई। इसके अतिरिक्त 'शेरदुक्पेन जनजाति : संक्षिप्त

परिचय' (वीरेंद्र कुमार सिंह, अंक-9-12) में लोसर और छेकर त्योहारों का परिचय भी प्राप्त होता है। इनके बारे में दिए गए विवरण से पता चलता है, कि ये मुख्यत: कृषि-पर्व हैं या देवताओं को प्रसन्न करने वाले पर्व-त्योहार हैं। उदाहरण के लिए "न्युकुम या न्योकुम : न्युक = संपूर्ण पृथ्वी + उम = एक स्थान पर एकत्र करना। पृथ्वी के समस्त देवताओं का एक स्थान पर आह्वान करके उत्सव मनाना। इसमें मुख्य पुजारी शुभ आत्माओं और सहायक पुजारी दुष्ट आत्माओं की पूजा करता है। पूजा के साथ नृत्य भी किया जाता है" और "सिरोम मोलो सोचुम : कृषि-पर्व है। सभी एक-दूसरे को फसल अच्छी होने की शुभकामना देते हैं। ग्रामवासी एक स्थान पर एकत्र होते हैं। गायक निशि समुदाय का इतिहास गा कर सुनाता है। कृषि की देवी को प्रसन्न किया जाता है।" (भारती वर्मा)। आपातानी त्योहार 'दिरी' के विषय में एक किंवदंती प्रचलित है- "प्राचीन काल में एक समय की बात है कि अच्छी और स्वस्थ धान की फसलें एकाएक सूखने लगीं और बाद में पता चला कि उन्हें कीड़े-मकोड़े खा रहे हैं।... अगले वर्ष भी इसी कारण फसलों का यह नुकसान पूर्ववत रहा। उसके बाद खेती के सलाहकारों 'अबा-लिबो' और 'आने-डोनी' ने 'अबुतानी' को सलाह दी कि इन कीड़े-मकोड़ों को मारने के लिए 'दिरी' का आयोजन किया जाए। 'अबूतानी' ने पुजारी की नियुक्ति की, जिन्होंने 'दिरी-पारो-यारी-अम्की' से प्रार्थना की, कि वे सारे कीड़े-मकोड़े को चट कर जाएँ और फसलों की रक्षा करें।" (त्रिभुवन लाल श्रीवास्तव)। इसी प्रकार इदु-मिश्मी आदिवासी समुदाय के 'रेह' नामक त्योहार के बारे में भी कई किंवदंतियाँ प्रचलित हैं, जिनमें से एक में कहा गया है, कि "पृथ्वी खाली थी। पेड़-पौधा नहीं था। एक अदमा (नारी) को सूर्य भगवान की शक्ति प्राप्त हुई। वह पहाड़ पर चढ़ रही थी। चढ़ने के समय हवा के कारण साड़ी खुल गई। वह गर्भवती हुई। हवा ने कहा कि तुम्हें यहीं बच्चा छोड़ कर जाना पड़ेगा। लड़का हुआ। इसी भाँति एक के बाद एक कई बच्चे हुए। बच्चे अपने खाने-पीने का सामान परिश्रम से जुटाने लगे। पुन: सूर्य भगवान ने एक लड़की दी और कहा, कि खेती करनी होगी। अब सृष्टि का विधिवत संचालन होने लगा। धीरे-धीरे काफी अर्से बाद आदमी में छल, प्रपंच, बेईमानी, चोरी जैसे कुकृत्य आने लगे। पापाधिक्य के परिणामस्वरूप पृथ्वी पानी से भर गई। लोगों ने सूर्य भगवान से बड़ी विनती की। फलस्वरूप पानी कम हुआ। पुन: खेती शुरु हुई।" (कृष्णेश्वर शर्मा)। यहाँ यह स्पष्ट करना आवश्यक है कि लेखक ने अपने लेख में यह किंवदंती एक गाँव के अति वृद्ध सज्जन से सुन कर लिखने का दावा किया है, किंतु स्त्री के अधोवस्त्र के रूप में साड़ी का उल्लेख किया है, जो अरुणाचल के आदिवासी समुदायों के परिधान के संदर्भ में स्वाभाविक प्रतीत नहीं होता। संभव है, आदिवासी वृद्ध ने जिस शब्द का प्रयोग किया हो, उसे लेखक ने न समझा हो और अपने मन से साड़ी लिख दिया हो। इस संभावित दोष को छोड़ दिया जाए, तो यह किंवदंती त्योहार की प्रकृति को समझने में हमारी सहायता करती है। अरुण नागरी के अंक 13-14 में 'लोक नृत्य' (वीरेंद्र कुमार सिंह) शीर्षक लेख का प्रकाशन हुआ, जिसके सात पृष्ठों की सामग्री में से ढाई पृष्ठ लोक-नृत्य और उनके वर्गीकरण को दिए गए हैं, शेष साढ़े चार पृष्ठों में न्यिशी, तागिन, आपातानी, हिलमीरी, वांचू, नोक्ते, तांग्सा, सिंग्फो, आका, मीजी, खाम्ती और मिश्मी आदिवासी समुदायों के लोक नृत्यों के बारे में टिप्पणियाँ की गई हैं। समझना कठिन नहीं है, कि इसे पढ़ कर अरुणाचल के लोक नृत्यों का कोई स्पष्ट चित्र नहीं उभरता।

अरुणाचल प्रदेश में एक पौराणिक महत्व का स्थान है, 'मालिनीथान'। इसके साथ महाभारत काल की एक कथा जुड़ी हुई है। कहा जाता है, कि "श्रीकृष्ण की शादी राजा भीष्मक की पुत्री रुक्मिणी से हुई थी, शादी के बाद भीष्मक नगर से द्वारिका वापस जाते समय श्रीकृष्ण और रुक्मिणी ने इसी स्थान (मालिनीथान) पर आराम किया था। इस स्थान पर शंकर अपनी पत्नी पार्वती के साथ रहते थे। श्रीकृष्ण और रुक्मिणी जैसे विशिष्ट अतिथियों के स्वागतार्थ पार्वती ने सबसे सुंदर फूलों की माला स्वयं बनाई और इसे श्रीकृष्ण को पहनाया। इस माला के सौंदर्य से श्रीकृष्ण बहुत आकर्षित हुए और प्रशंसा तथा परिहास की मुद्रा में उन्होंने पार्वती को मालिन (मालिनी) कह कर संबोधित किया। तब से ही इस स्थान विशेष का नाम मालिनीथान (मालिनी स्थान) पड़ा।" यह उल्लेखनीय है, कि पौराणिक विश्वास के अनुसार कृष्ण ने रुक्मिणी का हरण किया था, जबकि इस कथा में केवल विवाह की बात कही गई है। मालिनीथान के निकट ही लीकाबाली नामक स्थान के पास एक अन्य पौराणिक स्थल, 'आकाशी गंगा' है। इसके बारे में कालिका पुराण में एक कथा आती है। उस कथा के अनुसार "सती (पार्वती) के मृत शरीर को अपने कंधों पर लेकर शंकर भगवान पागल की अवस्था में घूम रहे थे और भगवान विष्णु अपने सुदर्शन चक्र से सती के विभिन्न अंगों को काट कर गिराते जा रहे थे। इसी क्रम में सती (पार्वती) का सिर 'आकाशी गंगा' के आस-पास कहीं गिरा। 'आकाशी गंगा' उस जल प्रपात का व्यंजक है, जो खड़े पहाड़ से सीधे नीचे गिरता है।..... मालिनी थान आने वाले तीर्थयात्री आकाशी गंगा में पवित्र स्नान करने जाते हैं।" ये दोनों पौराणिक कथाएँ धर्मराज सिंह के 'मालिनी थान : एक दृष्टि' शीर्षक लेख में वर्णित हैं, जो अरुण नागरी के छठे अंक (पृ. 20-22) में प्रकाशित हुआ। इस लेख का अति महत्वपूर्ण भाग मालिनीथान के बारे दी गई पुरातात्विक जानकारी से संबंधित है। लेखक ने उल्लेख किया है, कि 'बीसवीं शताब्दी के शुरू में ही कभी पासीघाट के सहायक पॉलिटिकल ऑफिसर डब्ल्यू. एच. कलबर्ट ने मालिनीथान की स्थिति का पता लगाने की योजना पर कार्य किया था। इसके बाद सबसे महत्वपूर्ण कार्य 1965-66 में अरुणाचल (तत्कालीन नेफा) के शोध-विभाग के उप-निदेशक, एल. एन. चक्रवर्ती ने किया। उन्होंने मालिनीथान में खुदाई करवाई, जिसमें हिंदू देवी-देवताओं, नृत्यरत अप्सराओं तथा पशु-पक्षियों की मूर्तियाँ निकलीं। सन् 1971 में यहीं एक टीले की खुदाई करवाई गई। बारह मार्च से 14 जून तक चली इस खुदाई में गणेश का मंदिर, एरावत पर इंद्र, मयूर पर कार्तिकेय, वीणाधारण किए सरस्वती, दुर्गा, नांदी और मंदिर के चार कोनों पर हाथियों पर सिंह आदि की मूर्तियाँ प्राप्त हुईं।' इस पुरातात्विक जानकारी के बाद भी, शिलालेख आदि प्रमाणों के अभाव में लेखक इस प्रश्न के विवेचन से दूर ही रहता है, कि ये मंदिर और मूर्तियाँ किसने निर्मित करवाई होंगी तथा इनका संबंध वास्तव में किस काल से है? फिर भी वह यह निष्कर्ष अवश्य देता है कि, "भारत की विभिन्न संस्कृतियों का मेल यहाँ हुआ है। भारत के विभिन्न राज्यों के लोग यहाँ समय-समय पर आते रहे हैं और उनके साथ यहाँ के लोगों (अरुणाचल प्रदेश के निवासियों) का संबंध रहा है।...यह क्षेत्र बहुत पहले हिंदू धर्मावलंबियों की कला तथा संस्कृति के प्रभाव से प्रभावित था।"(अंक-6, पृ. 22)। इस राज्य में परशुराम कुंड भी है, जहाँ प्रति वर्ष मेला लगता है और भक्त-जन बड़ी संख्या में एकत्र होकर कुंड में स्नान करते हैं। इनके अतिरिक्त भी इस अंचल में अनेक पौराणिक स्थल हैं, जो पुरातत्व के साथ ही भारत के सांस्कृतिक परिदृश्य के विविध पक्षों को समझने की दृष्टि से गंभीर शोध की प्रतीक्षा में हैं।

अरुण नागरी ने उस अंचल के आदिवासी समुदायों में प्रचलित मंत्रों, प्रार्थनाओं तथा लोक-समाज द्वारा व्यवहार में लाई जाने वाली लोकोक्तियों को भी उनका हिंदी में भावार्थ सहित प्रकाशित किया। 'अरुणाचली मंत्र और प्रार्थना' शीर्षक लेख (अंक- 9-12) में योगेंद्र पाल कोहली द्वारा संकलित एक न्यिशी प्रार्थना-मंत्र इस प्रकार है- "तुंगुम बो बुगे/हुमको लो/तुंगुंग देर हिइरदो/ यापिंग बुगे, हमको ली। (हम ईश्वर 'तुंगुम बो' की पूजा करते हैं, जब हम एक साथ बैठ कर खाना खाते हैं। हम उससे प्रार्थना करते हैं कि वह हम पर प्रसन्न हो।)..... दोन्यी बो कापा दो/सी बो तापा दो। (माता दोन्यी सदा हमारी गतिविधियों को देखती हैं, अत: सत्य मार्ग पर चलना चाहिए।)" (पृ. 46)। इसी प्रकार पादाम मिन्याङ् आदिवासी समुदाय में प्रचलित समृद्धि की देवी की प्रार्थनाका एक मंत्र इस प्रकार है-"सिकिंग इगोगे नाने नोक/टिलिंग एसिगे पासुन नापे/आन्यी अमने नागक नामेम/आन्यी ओबोइ दुइपोर बिदुंग/ नोम आन्यी नुलुंगे तुउसी डाक्कु/आन्यी सुल बुंगेम तेनंग मोलेग का। (हमारी माता हमारे भोजन संबंधी अभाव को दूर करें। आपने ही भोजन की कमी दूर करने के लिए 'बीज' भेजा। आज बीज बोए गए हैं, खेतों में ये खूब उगें, फलें, फूलें, हम सब आपकी प्रार्थना करते हैं।)" (पृ. 47)। रमण शांडिल्य का 'गालो लोकोक्तियाँ' शीर्षक लेख अरुण नागरी के दूसरे अंक में ही प्रकाशित हुआ, जिसमें उन्होंने गालो आदिवासी समुदाय की पच्चीस लोकोक्तियाँ उनके भावार्थ सहित प्रस्तुत की हैं। उनमें से चुनी गई कुछ लोकोक्तियाँ इस प्रकार हैं- "न्यिलो मेंकिना कारा मेम्वि हिला/हिपिक नुजिना हिरा नुबिहिला। (सुवक्ता किसी बात को अपने पक्ष में उसी प्रकार खींचता है, जैसे तीव्र जल-धारा अपनी दिशा में बहती है।), इसी बिस्सोम कापो/आगोम में असोम ताप्पो। (जल-धारा जिस प्रकार देखने में अच्छी होती है, ठीक उसी प्रकार कोई अच्छी बात सुनने में।), योरलो पोब्लो हिरिबिन्ना/देक मार-मो-लो पुआरता ना। (जिस प्रकार समस्त भूमि के बीच पहाड़ होता है, उसी प्रकार निष्पक्ष होकर रहना अच्छा है।), बुसे दोरोना ताको युब्बुला/तासाक दोरोना ताक्क-कायोला। (अकेला व्यक्ति सदा शक्तिहीन होता है।), तासी नोन्यि होवो, पामा/तायेन तिता येगरो मेम्मा। (बाहरी दिखावे से कोई बड़ा नहीं होता, जिस प्रकार पहनने से कुछ नहीं होता, जबकि एक मिथुन नहीं मार सकता।)" (पृ. 18, 19, 20)।

अरुण नागरी के प्रकाशन के मूल में एक रोमांचक-संयोग है। लेखक-राजनीतिज्ञ, माता प्रसाद जी ने 21 अक्तूबर, 1993 को अरुणाचल प्रदेश के राज्यपाल का पदभार ग्रहण किया, तो वे तात्कालीन राष्ट्रपति, माननीय शंकरदयाल शर्मा की प्रेरणा से उस प्रदेश का परिचय देने वाली एक पुस्तक लिखने के उत्साह से भरे थे। उन्होंने पाया, कि वहाँ के मूल छब्बीस आदिवासी समुदायों के लोग हिंदी को पारस्परिक संपर्क-माध्यम के रूप में व्यवहार में लाते हैं, किंतु उनकी लिपि-विहीन भाषाओं (केवल खामती और मोनपा भाषाओं की अपनी लिपियाँ हैं) को अधिकतम वैज्ञानिक देवनागरी लिपि में न लिखा जाकर, कभी स्वयं अंग्रेज़ी के लिए भी अपर्याप्त मानी जाने वाली रोमन लिपि में लिखे जाने की गंभीर कोशिशें हो रही हैं, जिससे उनकी ध्वनि-व्यवस्था को भारी नुकसान पहुँच रहा है। उधर विशाल हिंदी-जगत न केवल इस त्रासदी से आँखें मूंदे हुए है, बल्कि भाषाई और सांस्कृतिक वैविध्य के उस अद्भुत अंचल से प्राय: अनजान भी है। उन्होंने इसके एक बड़े कारण का उल्लेख करते हुए लिखा-"अरुणाचल प्रदेश के राजभवन पुस्तकालय में अंग्रेज़ी में विभिन्न विषयों की पुस्तकें हैं। अरुणाचल प्रदेश की स्थिति, यहाँ की जनजातियों, उनके उत्सवों-त्योहारों पर भी बहुत-सी

पुस्तकें अंग्रेज़ी में उपलब्ध हैं। यहाँ तक कि प्रत्येक जनजाति और उनके धार्मिक रीति-रिवाजों पर अलग-अलग पुस्तकें यहाँ पर्याप्त मात्रा में उपलब्ध हैं। परंतु हिंदी में ऐसी कोई पुस्तक नहीं मिली।" ('मनोरम भूमि अरुणाचल' (1995), पृ. 8)। उस समय तक 'अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों के त्योहार' (वी. पी. पांडेय, 1978), 'अरुणाचल का खामती समाज और साहित्य' (भिक्षु कौण्डिन्य, 1982),'मिसिङ् जनजाति' (भिक्षु कौण्डिन्य),'अरुणाचल की आदी जनजाति का समाजभाषिकी अध्ययन' (धर्मराज सिंह, 1990), आदि पुस्तकें प्रकाशित हुई थीं, हिंदी साहित्य कोश (सं. धीरेंद्र वर्मा), 'हिंदी पत्रकारिता : विविध आयाम' (सं वेदप्रताप वैदिक) 'पूर्वांचल की ओर' (मधुकर दिघे) आदि में इस प्रदेश के बारे में संक्षिप्त जानकारी दी गई थी और रमण शांडिल्य के कुछ लेख सरस्वती (इलाहाबाद), परिषद पत्रिका (पटना), राष्ट्रभाषा संदेश (इलाहाबाद), धर्मयुग (मुंबई) आदि में प्रकाशित हुए थे। उन्होंने सत्तर के दशक में 'साङ्पो' नामक एक पत्रिका का प्रकाशन भी किया था, जिसके नौ अंकों में अरुणाचल के आदिवासी जन-जीवन पर केंद्रित लेख प्रकाशित किए गए थे। लेकिन यह सामग्री इतनी कम थी, और धर्मयुग को छोड़ कर कहा जाए, तो इसकी पहुँच इतनी सीमित थी, कि इससे हिंदी-क्षेत्रों के विशाल समाज में अरुणाचल के बारे में अपेक्षित जागरूकता विकसित नहीं हो सकी। दूसरी ओर अंग्रेज़ी में इस प्रदेश के आदिवासी समुदायों और उनकी भाषाओं पर केंद्रित पुस्तकों की सूची बहुत बड़ी है और उस भाषा में प्रकाशन का इतिहास भी हिंदी से बहुत पहले प्रारंभ हो गया था। इसके अलावा, उपनिवेशवादी पृष्ठभूमि का बल अंग्रेज़ी के पक्ष में होने के साथ ही बड़ी संख्या में भारतीयों की उपनिवेशवाद से बुरी तरह प्रभावित मानसिकता के चलते पाठकों के हाथों और राज्य-सत्ता के गलियारों में अंग्रेज़ी पुस्तकों तथा पत्र-पत्रिकाओं की पहुँच और प्रभाव का अनुमान करना कठिन नहीं है। अरुणाचल के संदर्भ में हिंदी भाषा के समक्ष यह अति गंभीर चुनौती थी (इसमें प्रवासी और स्थानीय हिंदी लेखकों की सक्रियता बढ़ने के साथ धीरे-धीरे कमी आ रही है), जिसने माता प्रसाद जी के हृदय को पीड़ा पहुँचाई। उन्होंने अरुणाचल के बारे में स्वयं हिंदी में लिखने के साथ ही यह खोज भी की, कि वहाँ दूसरे कौन लोग साहित्य, संस्कृति और भाषाओं पर लिख रहे हैं। फलस्वरूप रमण शांडिल्य को एक दिन राजभवन से बुलावा आया। काफी देर चले विचार-विमर्श में माता प्रसाद जी ने उनसे अरुणाचल की भाषाओं की स्थिति को समझा और उन्हें देवनागरी में लिखे जाने के भाषावैज्ञानिक औचित्य पर भी बात की। इसके बाद रमण शांडिल्य से पूछा, 'आप इस बारे में क्या कर सकते हैं? हमने कहा, कर क्या सकते हैं, मैं एक पत्रिका निकालता हूँ, उसके माध्यम से देवनागरी के बारे में समझाया जाएगा और अरुणाचली साहित्य को उसमें लिख कर दिखाया भी जाएगा। तब रोमन और देवनागरी की क्षमताओं की तुलना भी हो जाएगी, दूध का दूध, पानी का पानी हो जाएगा। माता प्रसाद जी ने कहा पत्रिका का क्या नाम होगा? हमने कहा, 'अरुण नागरी'। उन्हें पसंद आया, बोले, अब एक संस्था भी बना लें, ताकि पत्रिका के लिए संसाधन जुट सकें और वह चलती रहे। इस तरह एक संस्था की बात हुई, नाम रखा गया, 'अरुण नागरी संस्थान, ईटानगर'। धर्मराज सिंह शासकीय महाविद्यालय में थे, माता प्रसाद जी के सुझाव पर उन्हें अरुण नागरी का प्रधान संपादक बनाया गया, मैं संपादक बना।' (18 अगस्त, 2020 को लेखक की रमण शांडिल्य से फोन पर हुई वार्ता का अंश)।

अरुण नागरी संस्थान, ईटानगर की स्थापना 22 अगस्त, 1994 को हुई और उसकी मुख पत्रिका, 'अरुण नागरी' का प्रवेशांक 1995 (जनवरी-मार्च) में पाठकों के हाथों में आ गया। इस पत्रिका की जीवन-यात्रा साढ़े तीन साल (जनवरी, 1995 – जून, 1998) की रही और केवल चौदह अंक प्रकाशित हुए, जिनमें से पहले छ: स्वतंत्र अंक हैं और बाद के आठ संयुक्तांक (7-8, 9-12, 13-14)। इतनी छोटी-सी जीवनावधि और इतने कम अंकों के बल पर ही अरुण नागरी ने अरुणाचल के जन-जीवन, आदिवासी भाषाओं और संस्कृति को न केवल हिंदी-जगत के समक्ष प्रस्तुत किया, बल्कि देश-भाषाओं के संवर्धन, संरक्षण और उन पर केंद्रित भाषावैज्ञानिक शोध का आधार भी निर्मित किया।

थोड़ी-सी चर्चा अरुण नागरी की समस्याओं की भी, ताकि हिंदीतर भाषी क्षेत्रों से प्रकाशित होने वाली लघु पत्रिकाओं से नाभिनालबद्ध कटु यथार्थ का संकेत मिल सके। अरुण नागरी के पास आदिवासी समुदायों के निकट रहते हुए अपने अनुभव और स्थानीय स्रोतों से जानकारियाँ जुटा कर तथा आवश्यकता होने पर अंग्रेज़ी पुस्तकों से सहायता लेकर हिंदी में लिखने वाले लेखकों की एक छोटी-सी टीम तो थी, लेकिन धन का अभाव था। यद्यपि पत्रिका की वार्षिक सदस्यता 25 रुपए रखी गई थी, जिसे बाद में 50 रुपए कर दिया गया, इसके विभिन्न अंकों में आजीवन सदस्यों के काफी नाम मिलते हैं और संरक्षक के रूप में भी 5 नाम हैं। एक अंक (9-12) में आजीवन सदस्यता के लिए 250 रुपए और संरक्षक के लिए 5,000 रुपए या इससे अधिक की घोषणा भी दिखाई देती है। लेकिन संपादक, कार्यकारिणी के एक समय के महासचिव तथा कई सदस्यों से जानकारी करने पर वे सभी स्पष्ट कहते हैं, कि यह राशि कभी प्राप्त नहीं हुई। अरुण नागरी की टीम संपर्क अवश्य करती थी और जो भी सौ-पचास या उससे भी कम दे देता था, उसका नाम छाप देती थी। टीम के एक सदस्य के अनुसार कोई-कोई इन लोगों की बात ध्यान से सुनता था, चाय पिलाता था और अंत में हाथ जोड़ कर खाली हाथ विदा कर देता था। इसलिए ये लोग अधिकतर आपस में ही पैसा जमा करके अंक प्रकाशित करते रहे। यह अवश्य है, कि माता प्रसाद जी ने इस बात का बराबर ध्यान रखा कि अरुण नागरी का प्रकाशन बंद न हो जाए और समय-समय पर अपनी व्यक्तिगत आय में से आर्थिक सहायता करते रहे। इससे अरुण नागरी टीम का मनोबल बना रहा। इस पत्रिका के प्रकाशन में उदिता ऑफसेट, गुवाहाटी के स्वामी, विनोद रिंगानिया के सहयोग की भी महत्वपूर्ण भूमिका रही। अरुण नागरी को स्थानीय व्यापारियों के कुछ विज्ञापन भी मिले, किंतु उनकी कहानी भी वार्षिक या आजीवन सदस्यों से भिन्न नहीं है। फिर भी नाहरलागुन स्थित 'साङ चाय उद्योग' की प्रबंध निदेशक, श्रीमती याने दाई को अवश्य याद रखा जाना चाहिए, जिन्होंने अरुण नागरी के प्रवेशांक में अरुणाचल की उर्वरा भूमि में उत्पन्न होने वाली 'साङ चाय' का एकमात्र विज्ञापन दिया था।

(**लेखकीय परिचय:** *देवराज का मणिपुरी भाषा, साहित्य एवं संस्कृति के विकास में महत्त्वपूर्ण योगदान रहा है। वह एक गंभीर साहित्य-चिंतक, भाषाविद् एवं आलोचक हैं। देवराज की मणिपुर पर केंद्रित कई महत्त्वपूर्ण पुस्तकें प्रकाशित हो चुकी हैं।*)

मणिपुरी लोकगीत : परंपरा एवं प्रयोग

डॉ . एस. लनचेनबा मीतै

मणिपुर भारत की पूर्वोत्तर सीमा पर स्थित एक छोटा सा राज्य है। मणिपुर का क्षेत्र लगभग 22,327 वर्ग किमी. है। 2011 ई. की जनगणना के अनुसार मणिपुर की जनसंख्या लगभग 27, 21, 758 लाख है। मीतै इस राज्य की बहुसंख्यक जाति है और इस जाति की मातृभाषा को मीतैलोल या मणिपुरी नाम से भी जाना जाता है। इसकी भाषा तिब्बती-बर्मी भाषा परिवार के अंतर्गत मानी जाती है। इसलिए मणिपुरी भाषा भारोपीय परिवार के अन्य भाषाओं से भिन्न है। यहाँ भौगोलिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक दृष्टि से इस भाषा की एक अलग पहचान है। लेकिन हिंदू धर्म के प्रभाव में यहाँ के लोक जीवन में 18 वीं सदी के पूर्वार्द्ध से संस्कृत, बांग्ला और असमिया भाषा का बहुत गहरा प्रभाव पड़ा, इससे यहाँ के लोक मानस में इन भाषाओं की दृढ़ उपस्थिति दिखायी देती है। 19वीं सदी में राज्य की राजभाषा बांग्ला एवं स्थानीय धार्मिक अनुसंधानों की भाषा संस्कृत बन चुकी थी। परिणामतः यहाँ के लोकमानस में इन भाषाओं की जड़ें बहुत गहराई के साथ फैलने लगी। यही कारण है कि मणिपुरी भाषा में लोरियाँ कम पायी जाती हैं, लेकिन जो कुछ भी उपलब्ध है उनका शैक्षिक अध्ययन करना अनिवार्य है। इसलिए इस जाति की सबसे बड़ी सांस्कृतिक धरोहर है- इसका लोक साहित्य। मीतै जाति का लोकगीत मणिपुरी समाज एवं संस्कृति की एक अमूल्य निधि है। इन लोक गीतों में मणिपुरी जाति के सांस्कृतिक, धार्मिक एवं सामाजिक रूप निखरकर आए हैं। मणिपुर की मीतै जाति के लोक गीतों को निम्नलिखित प्रकार से विभाजित किया जा सकता है। जैसे-

1. संस्कार संबंधी गीत
2. पर्व एवं त्योहार संबंधी गीत
3. श्रम संबंधी गीत
4. बाल संबंधी गीत
5. ऋतु संबंधी गीत
6. मनोरंजन संबंधी गीत

1. संस्कार संबंधी गीत-

मणिपुर की मीतै जाति के तीन प्रमुख धार्मिक संस्कार हैं- जन्म, विवाह और मृत्यु। 18वीं सदी के पूर्वार्द्ध से मणिपुर मीतै समाज में हिंदू धर्म के रामानन्दी धार्मिक संप्रदाय की विचारधारा को जनता का धर्म ही नहीं राजधर्म के रूप में तत्कालीन 'राजा गरीबनिवाज़' (शासनकाल: 1709 ई. - 1748 ई.) ने स्वीकार कर लिया। उसके बाद फिर मणिपुर के राजा भाग्यचंद्र के दूसरे शासन काल (1783 ई.-1798 ई.) में बांग्ला के गौड़ीय संप्रदाय को अपनाया गया। परिणामस्वरूप मणिपुरी लोक जीवन में हिंदू धर्म का बहुत गहरा प्रभाव पड़ने लगा। इससे मीतै जाति ने विवाह और मृत्यु संबंधी धार्मिक अनुष्ठानों में गौड़ीय संप्रदाय से संबंधित वैष्णव

पदावली गाने की प्रथा अपनायी। फिर नाओरिया फूलों ने मणिपुर के परंपरागत धर्म (सनामही लाईनीड़) को 'अपोकपा मरूप' नाम से 1930 ई. में पुनरुत्थान किया और अपोकपा मरूप के अनुयायी लोगों ने मणिपुरी भाषा की स्थानीय पदावली गाने की प्रथा शुरू की। लेकिन प्राचीन काल के कुछ संस्कार संबंधी लोकगीत अब भी उपलब्ध हैं। उन लोक गीतों में 'नूमीत काप्पा','खोड्जोमानुबी नोड्गारोल' और 'टेङथारोल' आदि गीत उल्लेखनीय हैं। वैष्णव धर्म के प्रभाव से ये लोकगीत आज मणिपुरी लोक जीवन और लोक संस्कृति में प्रचलित नहीं हैं। पुराने जमाने में 'नूमीत काप्पा' शीर्षक लोकगीत को किसी व्यक्ति की मृत्यु से संबंधित गीत के रूप में पाया जाता है। इसकी कुछ पंक्तियाँ द्रष्टव्य हैं-

मणिपुरी –

"हया हे लाइरेन ताओदनबा/ सना सेनकोयरेन अपानबा/ चारङ खोयपुसेनपु नोङसाबा मैओ / सना नखोङखापु पुरुमचापने...।।"

हिंदी अनुवाद-

"हे देवश्रेष्ठ सूर्यदेव। / हे स्वर्णचक्र ज्योतिपुंज। / हे चल-अचलों को पोषित ऊर्जा। / तुम्हारे स्वर्ण चरणों के प्रति करता हूँ मैं विनती।"

यह गीत प्राचीन काल में श्राद्ध संस्कार के समय गाया जाता था। आजकल हिंदू धर्म के प्रभाव से मणिपुरी समाज में इस गीत के स्थान पर वैष्णव पदावली से संबंधित बांग्ला संकीर्तन गीत गाने की प्रथा प्रचलित होने लगी है।

2. पर्व एवं त्योहार संबंधी गीत-

पर्व-त्योहारों से संबंधित लोक गीतों ने मणिपुरी जाति की धड़कनों को अज्ञात काल से संभाला है। लाईहराओबा के अधिकांश लोकगीत को इस वर्ग के अंतर्गत रखा जा सकता है। इसलिए,'हिजन हिराओ', 'औजी', 'पौसा' और 'मिकोन थाकोनबा' आदि गीत उदाहरण के रूप में उल्लेखनीय हैं-

मणिपुरी-

हि ओ हि ओ / हि नङबू होन्देदा/ लाइनिङथौबू होनबनि।/ हि ओ हि ओ / हि नङबू होन्देदा / लाइरेम्मबु होनबनि.....।। (हिजन हिराओ)

हिंदी अनुवाद-

रे नाव रे नाव !/ तुझे नहीं खेया जाता / खेया जाता है देवता को। / रे नाव रे नाव/ तुझे नहीं खेया जाता / खेया जाता है देवी को।

'लाई हराओबा' मणिपुर का एक बहुत बड़ा परंपरागत धार्मिक अनुष्ठान है। इसमें सृष्टि संबंधी गीत, दार्शनिक गीत, कृषि संबंधी गीत और मानवीय सभ्यता से संबंधी गीत स्थानीय नृत्य शैली के साथ गाये जाते

हैं। इसके साथ समयानुसार वैष्णव धर्म से संबंधी मणिपुरी त्योहारों जैसे याओसङ (होली) और काङ चिङबा (रथ-यात्रा) आदि त्योहारों के गीत भी उपलब्ध हैं। जैसे-

मणिपुरी-

"याम्बा मयूम चत्लूसी। / नाक थेङलूसी। / लैतै नूङदे हायगनु। / तरेत सेनगाओनुड.दगी से-से लान्थोकउ।" (होली का गीत)

हिंदी अनुवाद-

"घर चलें भैया का/ माँग लें कुछ पैसे। / मत कहो नहीं है (भैया)। / निकालो तुरंत झोली से।"

3. श्रम संबंधी गीत-

मनुष्य को जीने के लिए श्रम करने की जरूरत होती है, लेकिन काम को बड़े आनन्द के साथ करने के लिए गीतों की आवश्यकता होती है। क्योंकि मनुष्य के सुख-दु:ख में गीत अपने आप होठों से निकलता है। मणिपुरी महिलाएँ धान कूटते समय यह गीत गाती हैं-

मणिपुरी-

"नपा यानबा थौदाङकोक / सिङबु चल्लु हायरगा / लैकाइ कोयदुना लैथोवपा।" (फौसु इसै)

हिंदी में-

"हे युवक कामचोर !/ सूखी लकड़ियाँ खोजने को कही थी / लेकिन तुमने समय बिताया मुहल्लों में.....।"

इसी तरह किसी भारी चीज को उठाते समय-

मणिपुरी-

"हो हाययो/ है हा।"

हिंदी में-

"अरे! बोलो। / है हा।"

(प्राचीन मणिपुरी भाषा में 'है' ध्वनि पिता का प्रतिनिधित्व करती है और 'हा' ध्वनि माँ का)

4. बाल संबंधी गीत-

मणिपुरी लोक गीतों में बाल संबंधी गीत प्रचुर मात्रा में उपलब्ध हैं। आयु भेद के कारण इससे संबंधित लोक गीतों के भी अलग-अलग भेद हैं।

(क) खेल-गीत- मणिपुरी बालकों से संबंधित अधिकांश लोकगीत बालकों के खेल संबंधी गीत हैं। उन गीतों में स्थानीय बालकों के लोकमानस का प्रतिबिंब दिखाई पड़ता है। जब एक बच्चे को अपने हाथ से छूने का प्रयत्न करता है तब यह गीत जरूर गाया जाता है-

मणिपुरी-

"उरे वारे/ खोइमुरे खोयजाओर / उदगी धाओबा खोङनाङनि/ मन पूङबा हैनौनि। / ते ते तेनवा / कैशामपातकी तेनवा / हैनौना मुल्लगा / तेनवाना हराओइ / उ....उ.....उ.....।।"

हिंदी में-

देखा है मैंने, इसलिए दु:ख है मुझे / गूंज रहा हूँ मैं बनकर भंवर। / पेड़ों से बड़ा है पीपल का पेड़ / पत्ते वाले पेड़ों में सब से घना है आज का पेड़। / बोलता है तोता तें-तें/ कशामपात (एक स्थान) का तोता। / जब पक जाता है आम/ तब खुश होता है तोता। / उ.....उ.....उ.....।।" (भंवर के गूँज जैसी आवाज)

(ख) लोरी गीत-

लोरियों के साथ मनुष्य का संबंध बहुत गाढ़ा है, क्योंकि माँ का आंतरिक वात्सल्य प्रेम एवं ममता इन गीतों में छिपी हुई है। लोरियों में माता और शिशु के बीच एक स्वर्गिक आनंद का पारंपरिक रसास्वादन होता है। लोरियाँ परंपरा से प्राप्त एक अनुपम धरोहर हैं, इसलिए किसी क्षेत्र विशेष की लोरियाँ पुरानी होने पर भी प्रत्येक होठों पर नवीनता का रूप जरूर लेती है। लोरियाँ माता और शिशु के बीच एक अदृश्य सेतु बनकर सदैव रहती हैं। इस सेतु पर माता और शिशु के बीच आपसी प्रेम की यात्रा होती है।

मणिपुरी भाषा के लोक गीतों में भी लोरियाँ जरूर पायी जाती हैं लेकिन बहुत कम। मणिपुरी भाषा में लोरी गीत को 'नाओसुम इसै' कहा जाता है। 'नाओसुम का शाब्दिक अर्थ है शिशु को सुलाना या शिशु की पालकी और 'इसै' का तात्पर्य है गीत। इसलिए नाओसुम इसै का अर्थ है शिशु को सुलाने का गीत। मणिपुरी लोक गीतों में जब रात के समय माँ अपने बच्चे को सुलाना चाहती है, तब वह बच्चे को अपनी पीठ पर सुलाकर अपने हाथों से थपथपाती हुई यह गीत मधुर स्वर के साथ धीरे-धीरे गाती है-

मणिपुरी -

"था था थाबुङतोन /नवा मोराम्बी पोबीगे /पोबी सनम नम्बीगे/ हैबोङ चरोङ अमता/ थादबिरकउ थाबुङतोन। /नथीलक्ता ताखरे/ नयुङलक्ता ताखरे / कनानबु खूलबीनि।।"

हिंदी अनुवाद-

"अरे ओ पूनम का चाँद/ तुम्हारी बच्ची-सी गुड़िया को सुलाऊँ मैं अपने पीठ पर / सूँघ लूँगा मैं उसका शारीरिक गंध/ लेकिन अंजीर फल का एक गुच्छा / दे दो मुझे हे पूनम का चाँद। / अरे गिर गया है वही गुच्छा/ तुम्हारे ही मल के गड्ढे में/ और फिर तुम्हारे ही पेशाब के गड्ढे में / खायेगा कौन उसे उठा कर।।"

हँसी मज़ाक के साथ वात्सल्य रस इस लोक गीत में भरा है। यह गीत मणिपुरी लोरी गीतों में सबसे प्रचलित एवं लोकप्रिय लोक गीत माना जाता है। पिता कमाने के लिए घर के बाहर या कभी-कभी परदेश तक जाता है। लेकिन माँ घर में ही सदा व्यस्त रहती है। क्योंकि उसको घर की सफाई करना है, बर्तन माँजना, खाना

पकाना और अनेक घरेलू काम भी करने हैं। इसलिए वह अपने बच्चे को सुलाकर घरेलू काम करना चाहती है। मणिपुरी लोरीगीतों में इस परिस्थिति का गीत भी उपलब्ध है-

मणिपुरी-

"हुम हुम हुम हुम / नवा नङबु तुम्मोको (इमोम नडबु तुम्मोको)/ हुम हुम हुम हुम।।/ नवा नङना तूमलिङै/ नपनमी थौदा पाङहौगे / तरागी मथेल लोइहौगे / हुम हुम हुम हुम।।"

हिंदी अनुवाद-

"हुम हुम हुम हुम/ सो जा मेरे हे लाल / सो जा मेरा राजा बेटा (सो जा मेरी रानी बेटी)/ हुम हुम हुम हुम।।/ जब तुम सो जाओगे / तब करूँगी मैं तुम्हारे पिता द्वारा सौंपा गया काम काज / और खत्म कर पाऊँगी मैं खाना पकाना भी / हुम हुम हुम हुम।।"

आधी रात तक कभी-कभी बच्चा रोता रहता है। माँ उसको मनाने एवं सुलाने के लिए बार-बार कोशिश करती है। फिर भी बच्चा मानता नहीं है। उस समय मणिपुर में माँ अपने बच्चे को पीठ पर सुलाती हुई गाती है। मणिपुरी लोक गीतों में इसका एक सुंदर उदाहरण है-

मणिपुरी-

"हुम हुम हुम हुम/ हया हुम हुम हुम/ हा हुम हुम हुम/ खोमलेन तूमखुल ताल्लोकों/ ताङ्लौ इचिक हुल्लवले / हारौनसु शैरोई तामलवले/ इपारीओ चाओद्रीबा (इमोमलाङलेन ओ अथोइबी)/ खोमलेन तूमखुल ताल्लोको / हुम हुम हुम हुम/ हया हुम हुम हुम।।/ थाजना कोक्तोन खाल्लकले / इनुङ चबूक लोल्ल्कले।/ सजीवना नोङलम याल्लनि/ थबाना थाजा लमजिङनि।।/ इपारीओ चाओद्रीबा (इमोमलाङलेन ओ आथोइबी)/ खोमलेन तूमखुल ताल्लोको / हुम हुम हुम हुम/ हया हुम हुम हुम/ हा हुम हुम हुम।।"

हिंदी अनुवाद-

"हुम हुम हुम हुम/ हया हुम हुम हुम/ हा हुम हुम हुम/ सो जा मेरा राजा बेटा / रात का सन्नाटा छा गया/ झींगुर की आवाज भी बंद होने लगी है / हे मेरा छोटा राजकुमार (हे मेरी सर्वश्रेष्ठ छोटी राजकुमारी)/ सो जा तुम सो जा / हुम हुम हुम हुम/ हया हुम हुम हुम।।/ पहुँच गया है चाँद सिर के ऊपर / निकलने लगेगा भोर का तारा उत्तर-पूर्व से / अनुगमन करेगा चाँद भी संध्या के तारे का/ हे मेरा छोटा राजा / (हे मेरी छोटी गुड़िया)/ सो जा तुम सो जा / हुम हुम हुम हुम/ हया हुम हुम हुम / हा हुम हुम हुम।।"

उपर्युक्त उदाहरणों से यह प्रमाणित होता है कि मणिपुरी लोक गीतों में भी लोरी गीत उपलब्ध हैं। सभ्यता के नाम पर अपने ही पाँव पर कुल्हाड़ी मारना आजकल एक फैशन बन गया है। माँ और बच्चे का घनिष्ठ संबंध तो आज खो गया है लेकिन इस प्रदूषित वातावरण में माँ के कोमल होठों पर लोरी गीतों का पनपना एक काल्पनिक सत्य बनकर रह गया है। माँ की धड़कनों में आजकल लोकगीत नहीं बल्कि

अत्याधुनिक ऐसे गीत मानस में आ गए हैं जिंका लोक जीवन से कोई सरोकार नहीं है। इससे मणिपुरी बच्चों को बचाना सचमुच एक चुनौती है।

(ग) बच्चे को संभालने का गीत-

बच्चों से संबंधित गीतों में एक और प्रकार भी है- नाओरोइशै। इसका अर्थ शिशु का साथ देने या संभालने का गीत। जब शिशु को बड़े प्यार के साथ अपनाते समय भाव विभोर होकर जो गीत गाये जाते हैं। उन गीतों में से 'तीङ तीङ चाओरो' नामक गीत का उल्लेख किया जा सकता है। यह गीत छोटे बच्चों को नहलाते समय गाया जाता है-

मणिपुरी-

"तीङ तीङ चाओरो/ थबीना कारिङै काहौरो / नुमितना वाङलिङै वाङ हौरों। / इपा मचुम तारो / इपु मचुम तारो/ तीङ तीङ चाओरो।।"

हिंदी अनुवाद-

"हो जा तू जल्दी बड़ा/ चढ़ जा सूरज के साथ / हो जा ऊँचे अरुण के साथ। / पा तू पिता के गुण / पा तू दादा के गुण/ हो जा तू जल्दी बड़ा।।"

इस तरह बड़े लोग अपने पैरों पर छोटे बच्चे को बैठाकर एक ही पंक्ति का यह गीत मन लगाकर बार-बार गाते हैं-

मणिपुरी-

'इपा इपू सोनसिबा/ इपा इपू सोनसिबा।"

हिंदी अनुवाद -

"करें हम अपने पिता और दादा के गुणगान / करें हम अपने पिता और दादा के गुणगान।।"

5. ऋतु संबंधी गीत-

मणिपुर में छः ऋतुएँ होती हैं। इसमें धूप, छाँव और हवा से संबंधी गीत भी हैं, लेकिन ज्यादा लोकगीत वर्षा संबंधी हैं। उदाहरण के रूप में वर्षा संबंधी एक गीत का कुछ अंश प्रस्तुत किया जा सकता है-

(अ) वर्षा संबंधी लोकगीत-

भारतीय संस्कृति और लोक जीवन में वर्षा की बहुत बड़ी भूमिका है। इसलिए भारतीय महाकाव्यों में वर्षा ऋतु का वर्णन प्राय: पाया जाता है। मणिपुरी लोक गीतों में भी वर्षा ऋतु से संबंधित लोकगीत उपलब्ध हैं। यह लोकगीत राज्य में अकाल के समय राजा-महाराजाओं के आदेश पर राजपुरोहित के द्वारा विशेष रूप में

गाया जाता था। लेकिन साधारण जनता के बीच इस विधा का लोकगीत बाल गीत के रूप में देखा जा सकता है-

मणिपुरी-

"नोङ ओ चुथरो/ हनुबी हनुबी ताओथरो / लाङजिङ मतोन थूमहतलो/ पातसोय नुराबी तेक्खतलो।।"

हिंदी अनुवाद-

"हे वर्षा रे ! बरसो तुम खूब / जैसे बह जाए वृद्ध और वृद्धा/ आने दो बाढ़ लाडजिड पहाड़ के शिखर तक/ कि आ जाय नयी स्फूर्ति पातसोइ गाँव की युवतियों को।।"

(आ) धूप और छाँव से संबंधित लोकगीत- धूप और छाँव से संबंधित लोकगीत संसार की अधिकांश भाषाओं में उपलब्ध हैं। मणिपुरी लोक गीतों में भी उपलब्ध हैं –

मणिपुरी-

"नूङ.शाओ शारो/ उरुम लैमा चङखरो। / हाओरेबीगी इङखोलदा/ लशीङ पोलाङ फौबनि/ हयना येन्ना शोक्कनि/ कोनाराबा तीङ तीङ।।"

हिंदी अनुवाद –

"निकलो निकलो हे धूप निकलो/ और चलो रे हे छाँव/ हाओरेबी के आँगन में/ सुखायी जाती है टोकरी भर की रुई/ कुत्तों और मुर्गों द्वारा किया जाएगा नुकसान / आने वाले युवकों को मिल जाए स्फूर्ति।।

(घ) पवन से संबंधित लोकगीत- मणिपुरी लोक गीतों में पवन से संबंधित लोकगीत भी उपलब्ध हैं। उदाहरण के रूप में निम्नलिखित पंक्तियां द्रष्टव्य हैं-

मणिपुरी-

"नुङशित्पुदी पाङखोवलाना हम्मे/ नुङशित्पुदी पाङखोवलाना हम्मे।"

हिंदी अनुवाद-

"पवन को पराजित किया है जंगली अरवी ने।/ पवन को पराजित किया है जंगली अरवी ने।।"

6. मनोरंजन संबंधी गीत-

मनोरंजन करना मनुष्य का स्वाभाविक गुण है, क्योंकि मनुष्य का जीवन सुख और दु:ख से बनता है। इसलिए जब से मनुष्य अपनी आँखें खोलता है तब से बंद करने तक मनुष्य मनोरंजन को नहीं छोड़ सकता। मणिपुरी लोक गीतों में मनोरंजन से संबंधित बहुत गीत उपलब्ध हैं। उन गीतों में से एक है-

मणिपुरी में-

"नुमिदाङवाइगीना कान्दुदा / नुमितना चिङया थाङबदा/ तमयाना कोरी चेनबदा..."

हिंदी में –

"संध्या कालीन/ जब पहुँचता है सूर्य पश्चिम पहाड़ के पास/ और लोहित हो जाती है तराई....."

इस लोक गीत में संध्याकालीन प्राकृतिक सौंदर्य का वर्णन किया गया है। मणिपुरी युवक-युवतियाँ इस गीत को बहुत हर्षोल्लास के साथ गाते हैं। इस प्रकार के गीतों में 'खुल्लङ इशै' नामक एक विशेष प्रकार के प्रश्नोत्तर गीत भी हैं। मणिपुरी लोक गीतों में खुल्लङ इशै का एक विशेष स्थान भी है। यह गीत प्राय: युवक-युवतियों के बीच प्रेमालाप करते हुए गाया जाता है।

निष्कर्ष के रूप में हम कह सकते हैं कि मणिपुरी समाज में लोक गीतों के विभिन्न रूप हैं और अज्ञात काल से आज तक मणिपुरी लोक मानस में लोक गीतों ने अपना अधिकार जमा रखा है।

***(लेखकीय परिचय:** *लेखक मणिपुरी लोक साहित्य के विशेषज्ञ हैं, लंबे समय से मणिपुर में अध्यापन कार्य से संबद्ध हैं।)*

***

बांग्ला का बाउल और भाटियाली लोक संगीत

जमुना देबनाथ

लोक द्वारा रचित, लोक के लिए रचा गया और लोक में प्रचलित गीत ही लोकगीत कहलाता है। इसकी भावना समाज के हर एक व्यक्ति की अपनी निजी भावना है। जिसे वह महसूस करता है लेकिन शब्दों और सुरों के अभाव के कारण अभिव्यक्त नहीं कर पाता। इन गीतों के रचनाकारों ने शास्त्रीय नियमों की परवाह न करते हुए सहजता से लोगों के उपयोग में लाने के लिए इसे शब्दों, छंदों और सुरों की आनंद-माला में पिरोया, वही लोक संगीत कहलाया।

बांग्ला के लोक संगीत की बात की जाए तो हमें इसकी बहुत सारी शाखाएँ एवं उपशाखाएँ उपलब्ध मिलती हैं। जिसका एक-एक विषय अपने आप में असीम इतिहास और उपलब्धियों को समेटा हुआ है। जैसे- बाउल गीत, भाटियाली गीत, झूमूर, लालोन गीत, बादाई, गाजोन, मनसा कथा, मुसलमान समाज के विवाह गीत आदि। इनमें बाउल, भाटियाली का खूब प्रचलन है।

बाउल गीत:- कहते हैं कि 'बाउल' शब्द अंग्रेज़ी के 'बायोस' या हिंदी में कहें तो 'वायु' शब्द से उत्पन्न हुआ है। हवा जिसे हम किसी फ्रेम में फिट करके नहीं रख सकते। बाउल आचार-अनुष्ठानहीन होते हैं। यह एक संप्रदाय है। जिस पर यह नाम बाहर से आरोपित किया गया है। उनके व्यवहार एवं गीतों के मूड को देखकर लोगों ने उनका नाम 'बातूल' या 'बाउल' रख दिया। देखा जाए तो उनका कोई इतिहास नहीं मिलता केवल रचनाएँ मिलती हैं। जो लोगों की ज़ुबान पर आज भी ज़िन्दा हैं। वे केवल अपने मन में उठने वाले विचारों को बड़ी सत्यता से गीतों के माध्यम से अभिव्यक्त करते रहे हैं, जिनमें उनका जीवन दर्शन होता है। उनके गीतों के केंद्र में कर्म नहीं मर्म होता है। किस प्रकार इन गीतों को गाने वाले लोगों को कब से और किसने 'बाउल' नाम दिया, यह रहस्य ही है। इन गीतों के आविर्भाव काल का निर्धारण करना भी अअसंभव है। क्योंकि प्राचीन बाँग्ला साहित्य की अन्य शाखाओं की तरह इनका कोई लिखित इतिहास उपलब्ध नहीं होता है। संभव है कि विभिन्न कालों में लोगों के द्वारा इन गीतों के गायन से इसकी भाषा एवं रूप में परिवर्तन होता गया एवं इसकी भाषा का प्राचीन रूप धीरे-धीरे लुप्त हो गया। बाउल गीत की अब जो भाषा है, उसमें आधुनिकता की झलक साफ़ नज़र आती है।

बाउल गीतों की एक बड़ी विशेषता है कि इन गीतों में मुख्य रूप से ईश्वर और कहीं-कहीं पर गुरु की साधना का भाव कूट-कूट कर भरा है। ये अपने गीतों के माध्यम से ईश्वर भक्ति में इस प्रकार लीन हो जाते हैं कि इन्हें 'बाउल पागल' भी कहते हैं। बाउल का दूसरा रूप 'भाट' होता है। जो राजस्थान एवं मध्य प्रदेश में पाये जाते हैं। उत्तर प्रदेश में 'बाउल' को फ़कीर या जोगी आदि भी कहा जाता है। सामान्य तौर पर फ़कीर, दरबेस, भाट, साई, जोगी आदि 'बाउल' के ही रूप हैं। रामकृष्ण परमहंस जी ने कहा था- " बाउलेर दौल हौठात एलो,

नाचले,गान गाइले, आबार हौठात चोले गेले। एलो-गेलो, केओ चिनले ना।"(बांग्ला संगीत मेला, सौमित्र लाहिरी, पृ.- 134)

बाउल किसी भी धर्म का हो सकता है। वे विश्व व्यापी हैं। बाउलों का रहन-सहन वैष्णवों से मिलता जुलता है। वे साधारण जीवन व्यतीत करते हैं। उनका पहनावा भी सादा होता है। सफ़ेद धोती एवं गेरुआ रंग का कुर्ता और पगड़ी। वे जगह-जगह जाकर भगवान की भक्ति में लीन होकर गीत गाकर भिक्षा माँगते हैं। वे एक या दो दिन से ज्यादा किसी जगह पर नहीं रुकते। बाउल ज्यादातर वैष्णव मत के होते हैं। वे अपने साथ खंजनी, करताल, गुब्गुबी आदि वाद्य यंत्र साथ लेकर चलते हैं। कहीं पर 'खौल'/ खोल (वाद्य यंत्र) बजाकर भी भिक्षा माँगते हैं। ईश्वर भक्ति में लीन रहना और मानवता की भलाई ही उनका मूल मंत्र है। उन्हें धन-दौलत, मोह-माया से कोई लेना देना नहीं।

लालोन फकीर का एक सुप्रसिद्ध गीत है:-

"मिलोन होबे कोतो दीने.....आमार मोनेर मानूषेरो शोने....।"

इस गीत में बाउल ईश्वर से अपने मिलन की बात करता है। इसके अलावा और एक प्रसिद्ध गीत का बोल है:-

"ओई पीरीती काँठालेर आठा, ओ आठा लागले पोरे छाड़बे ना...
गोले-माले, गोले-माले पीरित कोरो ना....."

इस गीत में बाउल प्रेम से दूर रहने के लिए अथवा यह कह सकते हैं कि प्रेम ना करने की सलाह दे रहे हैं। क्योंकि ये प्रेम ही तो है जो हमें जगत के बंधनों में बाँध देता है और हम मोह-माया के पुजारी हो जाते हैं।

भाटियाली गीत:- बांग्ला लोक संगीत को मुख्य तौर पर दो भागों में बाँट सकते हैं। प्रथम भाग में उत्सव, त्योहार एवं अनुष्ठानों आदि में गाया जाने वाला गीत, जो अधिकतर समूहों में गाया जाता है और उस गीत का क्रिया के साथ संबंध होता है, इसलिए उसे 'शारी गीत' कहते हैं।

दूसरा गीत वह है जब व्यक्ति तनहाई में बिना किसी कर्म में युक्त हुए अपने लिए गाता है। अकेलापन जब उसे आगोश में ले रहा होता है। तब उसके हृदय से जो उद्गार निकलते हैं, उस गीत को 'भाटियाली' गीत कह सकते हैं।

भाटियाली गीत का मुख्य विषय लौकिक प्रेम है। नवयुवक जब इस गीत को गाता है; उसमें उसके प्रणय-जीवन की आशा-निराशा ध्वनित होती है। वृद्ध व्यक्ति के गीत में आध्यात्मिक जीवन की आशा-निराशा ध्वनित होती है। इन गीतों में आंतरिकता बहुत मात्रा में व्याप्त है। अकेले तनहाई में गीत गाने वाले के अन्तर्मन में विरह जागता है और कुछ इस प्रकार प्रस्फुटित होता है:-

" पाखी, तोमार पाये धोरी मिनोति गो कोरी
आर आमाए जालाइयों ना।
'बोउ कौथा कोउ'- बोले गो डाइको ना।।

पाखी डाके शोन्धा काले,
आमी शोन्धा दीते जाई गो भूले; जोदी डाके नीशीकाले
आमी काईन्दा भिजाई बिछाना।।"

भाटियाली गीत प्रधान रूप से विरह-वेदना और निराशा का गीत है। यह विरह-वेदना जिस प्रकार प्रणय-प्रेम संबंधित हो सकता है; उसी प्रकार आध्यात्मिक जीवन की असंपूर्णता से युक्त भी हो सकता है। चूंकि ऐसा माना जाता है कि भाटियाली गीत की उत्पत्ति बांग्ला देश में हुई है और वह एक नदी प्रधान देश है। इस कारण ज्यादातर इसे माँझी-मलहार का गीत या ग्वालों का गीत भी कहा जाता है। पूर्व-बंगाल से माँझी पश्चिम बंगाल में जीविकार्जन के लिए यातायात करते हैं। उन्हीं के जरिये यह गीत पश्चिम बंगाल में प्रचारित हुआ। इन गीतों में किसी प्रकार के ताल, नृत्य या वाद्ययंत्र का उपयोग नहीं किया जाता है। इसमें सुरों को प्रधानता दी जाती है।

भाटियाली गीत कितना प्राचीन है इसका पता लगाना आज के समय में असंभव है। बांग्ला साहित्य के इतिहास का एक प्राचीन ग्रंथ स्वर्गीय हरिप्रसाद शास्त्री द्वारा संपादित 'बौद्धगान उ दोहा' है। इसे करीबन बारहवीं शताब्दी पूर्व संकलित किया गया था, जिसमें सैंतालीस गीतों का उनके रागों के साथ उल्लेख मिलता है। जिसके रचयिता 'भूसुक' थे। जो पूर्व बंगाल के आदिवासी थे। इन गीतों में भाषा का प्राचीन रूप मिलता है:-

"शोहोज मोहातोरु फ़ोरिओ ए तेलो ए।
खोशोम शोभाबे रे बाँधेइ का को ए।।
जिम जोले पानीआ टोलिया भेउ न जाई।
तिम मोनो नोअना रे शोमोरोशे गोओनो शोमाई।।"

आधुनिक बांग्ला भाषा में इसका यदि अनुवाद किया जाए:-

"शोहोजो मोहातोरु स्फ़ूरितो ए त्रिलोके।
ख-शोमो शोभाबे रे बाँधे काहाके ए ?
जेमोन जोले पानी ढालिया भेद कोरा जाए ना।
तैमोन मोनोरोत्नो रे शोमोरोशे गोगोने शोमाए।।"

रचना की दृष्टि से भाटियाली गीत नितांत सरल एवं संक्षिप्त है। बांग्ला के लोक-संगीत में यह रचना संक्षिप्ततम है। इसका कारण शब्दों के स्थान पर सुरों को प्राथमिकता दिया जाना है। इन गीतों में शब्दों की अधिकता ज़रूरी नहीं। निम्नलिखित रचना भाटियाली गीत का एक आदर्श उदाहरण है:-

"ओ शूबोल रे, गूनेर भाई रे शूबोल,
आमार शीघ्र एने दैखा, रे शूबोल, ब्रोजेश्वरी राधा।
हस्त दिये दैख रे शूबोल आमार हृदोय,

बिना काष्ठे जोल्छे ओनोल आमार ओंतोरे।"

रवीन्द्रनाथ जी जब अपनी ज़मीदारी देखने खेत-खलिहानों में निकलते थे, तब वहाँ के कृषक और माँझी-मल्हारों से भाटियाली गीत सुनते थे एवं इस दौरान उन्होंने भी कुछ भाटियाली गीतों की रचना की है। जिसमें उन्होंने एक नया प्रयोग 'देशभक्ति' का किया था-

"आमार शोनार बांग्ला, आमी तोमाए भालोबाशी।
चिरोदिन तोमार आकाश, तोमार बाताश, आमार प्राने बाजाए बाँशी।।"

डॉ. आशुतोष भट्टाचार्य के अनुसार 'भाटि' अंचल वर्तमान बांग्लादेश के मयमन सिंह, कुमुइल्ला, सिलेट एवं ढाका को मानते हैं। इन क्षेत्रों के माँझी-मल्हारों के कंठ से जो गीत निकलता है- वही भाटियाली है। डॉ. अश्रफ़ सिद्दीकी के अनुसार नदी के बीच से नावों पर बैठकर जब माँझीगण जो गीत गाते जाते हैं, वह गीत भाटियाली कहलाता है। भाटियाली गीतों में नदी को जीवन के स्रोत के रूप में चित्रित किया गया है। इन गीतों में नदी और जीवन स्रोत का अपूर्व समन्वय मिलता है।

सही में भाटियाली गीतों के निर्माताओं के मन में नदी की धारा जीवंत थी। जो हमारी जीवन धारा की तरह गतिमान है। कभी लगता है कि इन गीतों में मानव जीवन का विषाद छुपा है। दुख की एक करुण आवाज जो अकेले में नदी के बहते पानी को देखकर निकलती है। फिर वह विषाद नदी की धारा में बहकर खो जाता है।

अब बाउल और भाटियाली गीतों का हिंदी एवं अन्य भाषाओं में अनुवाद हो रहा है। इसकी प्रसिद्धि तो पहले ही थी। परंतु अब इसे देश-विदेश के कोने-कोने में विस्तार मिल रहा है, साथ ही इसके सुनने वालों की संख्या दिन-प्रतिदिन बढ़ती जा रही है। आजकल इसमें अन्य गीतों का मिश्रण कर एक नया रूप देकर आधुनिक गायक नये ढंग से प्रस्तुत कर रहे हैं। पहले इन गीतों को वयस्क लोग ही अधिकतर सुनते थे और अपने जीवन के साथ जोड़कर उसे प्रासंगिक बनाते थे। परंतु इन गीतों में नये बदलाव होने के कारण इसका नया रूप अब युवक-युवतियों को भी भा रहा है।

संदर्भ ग्रंथ सूची:

1. बांग्ला संगीत मेला, संपादक: सौमित्र लाहिरी, गीता प्रिंटर्स
2. बाउल कवि लालन शाह: साधना और साहित्य, रामेश्वर मिश्र, वाणी प्रकाशन, नई दिल्ली

*(**लेखकीय परिचय:** जमुना देबनाथ त्रिपुरा की चर्चित लोक कलाकार हैं। वर्तमान में त्रिपुरा प्रांत में अध्यापन कार्य से संबद्ध हैं।)*

त्रिपुरा की लोक संस्कृति: चरक पूजा और गाजन नृत्य

डॉ. शुभ्रांशु दाम

पूर्वोत्तर भारत के अंतिम छोर पर बसा त्रिपुरा प्रांत प्रकृति प्रदत्त वैभव से अत्यधिक समृद्ध है। यह राज्य पूर्वोत्तर के खूबसूरत राज्यों में से एक है, जो प्राकृतिक सौंदर्य, जाति-जनजाति की लोक-संस्कृति तथा लोक-कलाओं से परिपूर्ण है। इसी लोक-संस्कृति का ही एक विशेष अंग है- चरक पूजा और गाजन नृत्य।

'गाजन' त्योहार त्रिपुरा के बंगाली समुदाय द्वारा मनाया जाता है। भगवान शिव को नए साल की शुभकामनाएँ देने के लिए प्रार्थना की जाती है। इस उत्सव तथा गाजन नृत्य के साथ शिवजी की पूजा को चरक पूजा भी कहते हैं। इस उत्सव को गाजन या चरक पूजा भी कहते हैं। कलाकार भगवान शिव, देवी दुर्गा, देवी काली, नंदी आदि रूपों से खुद को सुसज्जित करते हैं एवं ढोल की थाप पर नृत्य करते हैं और भगवान शिव के सम्मान में गीत गाते हैं।

चैत माह के पहले से ही चरक पूजा या गाजन की तैयारी शुरू हो जाती है। सभी भक्त-गण पूरे माह कठोर नियम पालन करते हैं। प्रतिदिन समूह में गीत गाते हुए लाल शालू पहनकर साथ में शिव-गौरी (दुर्गा) की प्रतिमूर्ति बनकर घर-घर में नृत्य-गीत गाकर भिक्षा ग्रहण करते हैं एवं भिक्षा से मिली सामग्रियों से ही अपनी क्षुधा निवृति करते हैं। चैत माह के संक्रांति के एक दिन पूर्व विविध पूजा विधि के माध्यम से पिछले वर्ष के विसर्जित चरक गाछ (वृक्ष) को तालाब के पानी से बाहर उठाया जाता है। एक लंबे से सीधे पेड़ को चरक-वृक्ष बनाया जाता है। इस वृक्ष की पूजा की जाती है।

मध्य-रात्रि को देवी श्मशान काली की पूजा की जाती है। नानाविद तांत्रिक साधना का आयोजन किया जाता है। मंत्रों के माध्यम से ताज़ी आग के ऊपर माँ काली-असुर-दैत्य-दानवों के बीच नृत्य प्रदर्शन किया जाता है। बंगाल में नृत्य को नाच भी कहते हैं। रात्रि कालीन इस नृत्य को काली-नाच या काली-कांचया काली काज भी कहा जाता है। अपनी आँखों से न देखने पर कोई भी विश्वास नहीं करेगा। इस पूजा विधि में एक उस्ताद केंद्र में रहता है। उसी के निर्देश से समस्त कार्य आगे बढ़ता है। उस्ताद अपने हाथ में बेंत की छड़ी

रखते हैं। जरूरत पड़ने पर इस छड़ी से अन्य कलाकारों एवं काली-असुर के रूप से सुसज्जित पात्रों पर प्रहार कर उन्हें फरार होने से रोकते हैं। इस पूजा की मान्यता है कि उस्ताद की असावधानी से विशेषत: काली माता की भूमिका निभाने वाला पात्र पूजा स्थली से असुर से लड़ाई के दौरान सचमुच माँ काली बन जाता है एवं इस मौके में रहता है कि कब उस्ताद लापरवाह बन जाये, जिससे वह मैदान से भाग सके। ऐसी मान्यता भी है कि अगर काली माता फरार हो जाती हैं तो अगले साल पूजा के दिन फिर से लौट आयेंगी। जो भी हो नृत्य करते-करते जब काली माता भागने की तैयारी करती हैं, ठीक उसी समय उस्ताद अपनी छड़ी से प्रहार करके उन्हें मूर्च्छित कर देता है। इस गाजन या चरक पूजा के भक्त वृन्द सभी पुरुष होते हैं। भगवान शिव हो या काली माता, गौरी माता हो या असुर अथवा नंदी, भृंगी सभी पुरुष पात्र होते हैं।

चैत संक्रांति के दिन चरक वृक्ष की वेदी मूल में पूजा का आयोजन किया जाता है। सभी भक्त वृन्द समवेत होकर पूजा-अर्चना करते हैं। काल भैरव की पूजा भी की जाती है। इन अवसरों पर पूजा मंडप के चारों ओर मेले का आयोजन भी किया जाता है। मेले में

दर्शकों का ताँता लग जाता है। इधर शिव जी, काली माता, गौरी माता, असुर, नंदी-भृंगी अदि बहुत सारे लोग देवी-देवताओं के वेश में सज-धज कर अन्य भक्तों समेत सभी भक्त वृंद जब गाजन नृत्य में शामिल होते हैं, तब ढोलक, मृदंग, मंजरी, घुंघरू के ताल के साथ-साथ नृत्य-गीत शुरू हो जाता है। इसके पश्चात एक-एक करके शिव-गौरी का शादी पर्व, असुर-काली माता की लड़ाई, असुर-दलनी काली माता को शांत करने के लिये शिव जी जमीन पर सो जाते हैं। तंत्र विद्या के सहारे बड़े-बड़े दाओं से बनी बिस्तर पर शिव जी सो जाते हैं। काली माता सुध-बुध खोकर असुर के साथ लड़ाई करते-करते अचानक अपने स्वामी शिव जी के सीने पर चढ़ जाती हैं और जब उन्हें पता लगता है कि उनसे बहुत बड़ी गल्ती हुई है तो वह अपनी जीभ को दांतों से काट कर खड़ी हो जाती हैं।

विभिन्न दृश्यों के साथ-साथ तंत्र-मंत्र के सहारे किसी जिंदा आदमी को बड़ा गड्ढा खोद कर गाड़ दिया जाता है और ऊपरी हिस्से को अच्छी तरह से ढक दिया जाता है पर कार्यक्रम के अंतिम क्षणों में उसे फिर से गड्ढे से ही बाहर निकाल दिया जाता है। एकदम अंतिम समय में एक के बाद एक आश्चर्यजनक घटना घटित होती है। चरक वृक्ष के ऊपरी हिस्से में एक चरकी जो पहले से ही लगाया जाता है एवं ऊपर से चार मोटे-मोटे रस्से को नीचे लाया जाता है। चरक पूजा में शामिल भक्तों में से चार भक्तों को चुना जाता है और उनकी पीठ पर लोहे से निर्मित मोटे–मोटे काँटे लगाये जाते हैं और काँटों के साथ उन रस्सों को बांधा जाता है। बाँधने के पश्चात जोर-जोर से चरके को घुमाया जाता है। न देखने से विश्वास ही नहीं होगा कि कांटे के सहारे बंधे हुए चारो लोग हवा में घूमते रहते हैं। न तो उनकी पीठ से खून की बूंद निकलती है और न ही वे रोते-चिल्लाते हैं। ऊपर से वे तालियाँ बजाते हैं।

इस प्रकार कुछ देर पश्चात चरक वृक्ष में लगाये चरकी से वे नीचे उतर आते हैं। भक्तों में कई लोग अपनी जीभ पर हल्का लोहे का रॉड आर-पार कर तो कोई अपने पेट के चमड़े को छेद कर मेले में उपस्थित दर्शकों से भिक्षा मांगता है। जिनको जितनी इच्छा हो दान देता है। शाम होने लगती है। लोग मन में एक ख़ुशी का वातावरण लेकर घर की ओर लौटने लगते हैं। अगले दिन सभी भक्त वृंद चरक वृक्ष को फिर से किसी पवित्र तालाब या जलाशय में डुबोकर पूरे एक साल के लिए छोड़ देते हैं।

गाजन या चरक पूजा और मेले में त्रिपुरा के सभी जाति-समुदाय के लोग उत्साह के साथ खुशी-खुशी भाग लेते हैं। चरक पूजा के दिन अंतिम लग्न में सांझ के समय लोग अपने दिलों-दिमाग में चरक पूजा और गाजन मेले का सुखद अनुभव और स्मृतिओं को लेकर अपने-अपने मंजिल की ओर लौटने लगते हैं। लोगों के कंठ ध्वनि से निसृत स्वरों का गुंजन हवा के साथ गूंजने लगता है–

"गान्जार चिरल-चिरल पात / गांजा खाइया मग्न हइया नाचे !/हे भोला नाथ !"

(गाँजा के छोट-छोटे चीरे हुए पत्ते/ गाँजा पी कर मग्न हो कर नृत्य करते हैं /भोलेनाथ शिवजी)

*(**लेखकीय परिचय:** डॉ. शुभ्रांशु दाम त्रिपुरा राष्ट्रभाषा प्रचार समिति, त्रिपुरा में सचिव के पद पर कार्यरत हैं।)*

***

लोक-साहित्य के बरास्ते अरुणाचल प्रदेश की अकथ कहानी

डॉ. राजीव रंजन प्रसाद

अरुणाचल प्रदेश पूर्वोत्तर भारत का जिंदादिल राज्य है। यहाँ की खूबसूरती अनघ है, तो बिखरी हुई सूर्य-रश्मियाँ प्रभात का प्रथमांक मानी जाती हैं। यहाँ के साहित्य में व्याप्त शिक्षा, दर्शन, मूल्य, लोक-कलाएँ आदि न सिर्फ महत्त्वपूर्ण हैं, अपितु उन्हें सहेजा और संजोया जाना अत्यंत आवश्यक है। अरुणाचल का श्रमशील समाज खेती, पशुपालन, शिकार, काश्तकारी, दस्तकारी, हस्तकला, गोदना, गाले एवं अन्य वस्त्र निर्माण, बाँस से निर्मित की जाने वाली वस्तुएँ, बागवानी इत्यादि बुनने-बनाने आदि में अव्वल है।

निकट से देखें, तो अरुणाचलवासी प्रकृतिजीवी और उत्सवधर्मी हैं। इस प्रदेश के जनजातीय समाज में संवादधर्मिता जबर्दस्त है। वे खुलकर बातचीत करते हैं। इनकी वाचिकता एवं वक्तृता अनुपम होती है। अरुणाचली समाज में इन्हें जिन सम्मानित नामों से जानते हैं, वे हैं-मिरी, न्यूब या निबू, निगम इत्यादि। इनकी संचार संबंधी शब्दशक्ति और उसमें निहित व्यंजनात्मकता चकित करती है। उनके कहन में लय है, तो गीतों में थिरकन। वह अपने गीतों को सुनाते हुए झूमने लगते हैं, क्योंकि उनकी आवाज़ अपनी ही देह में लय होती दिखाई पड़ती है। इसी तरह प्रकृति व आदिम वृत्ति से साक्षात्कार कराती उनकी भाषा-बोली में प्रकृति के रहस्य से लेकर मानुष-जीवन के विविध कार्यकलापों का बहुलांश हिस्सा शामिल है। आजकल अरुणाचली बस्तियों में जानकार-विशेषज्ञ तथा सक्रिय ऐसे अधिसंख्य लोग 'गाँवबूढ़ा' होते हैं। सामाजिक वातावरण में सुरक्षा एवं शांति के साथ जीवनयापन करने देने में इनकी भूमिका बड़ी है, क्योंकि स्थानीय स्तर पर कोई भी छोटी-मोटी वारदात होने से या कोई आपसी विवाद की स्थिति में ये लोग ही उसका निपटारा करते हैं तथा तमाम विधि-व्यवस्था को सुचारु बनाए रखते हैं। अक्सर 'गाँवबूढ़ा' लाल कोट धारण किए हुए दिखते हैं। प्रदेश सरकार की ओर से भी उन्हें संरक्षण एवं विशेषाधिकार प्राप्त होता है, जिसके अंतर्गत वे छिटपुट मामले में स्थानीय स्तर पर खुद फैसला करने के अधिकारी होते हैं।

अरुणाचल प्रदेश में तकरीबन 28 मुख्य जनजातियाँ निवास करती हैं, जिनकी लगभग 100 से ऊपर उप जनजातियाँ हैं। जनजातीय भाषा के मामले में उच्चारण, लहजा, शब्द-प्रयोग आदि में भिन्नता अधिक देखने को मिलती है। इसके बावजूद अरुणाचली जनमानस सामूहिकता एवं उत्सवधर्मिता की प्रकृति को धारण किए हुए हैं। विशेष अवसरों या कि पर्व त्योहार संबंधी विधि-विधानों, नियम-अनुष्ठानों, तौर-तरीकों आदि में एक तरह की प्राकृतिक जीवंतता है, दिव्य भव्यता है, जिसे देखते-सुनते हुए कोई भी उसी रौ में बहने लगता है; एक अद्भुत आकर्षण एवं खिंचाव के बंधन में बंध जाता है। पुरखाई सत्य से साक्षात्कार कराने वाले ऐसे प्रसंग अरुणाचली लोक-साहित्य में प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है। अरुणाचल प्रदेश का लोक-साहित्य यहाँ के लोगों की दृष्टि में अपना पूर्वज-साहित्य है, जिसकी सर्वोच्चता अकाट्य है। यहाँ के लोगों का सहज बोध और गहन विश्वास अतुलनीय है। इसाई मिशनरियों ने यहाँ के जनमानस को काफी प्रभावित किया है, जिसके कई कारण और उसके परिणाम आज दृष्टिगोचर मालूम देते हैं।

अरुणाचल प्रदेश की सुदूरवर्ती बस्तियाँ बहुत घनी नहीं होती हैं, लेकिन वह एक खास तरह के 'क्लान' को इंगित करती हैं। कितनी खूबसूरत बात है कि यहाँ के लोग अपनी बस्ती के नाम को अपनी पहचान का संकेतक मानते हैं। जैसे-कायिन, जोराम, गोलो, बागरा, कार्बाक, चिसी, पेमी इत्यादि। निज पहचान से जुड़ी हुई ऐसी नाम-संज्ञा उनकी स्थानीय अस्मिता का भूगोल बताती हैं। अरुणाचल प्रदेश की जनजातियों में गुणी, वैद्य, विशेषज्ञ, जानकार, अनुभवी, संचारक आदि कई तरह के महानुभाव मिल जाएंगे, जिनकी भाषा में व्यक्त बातें आज के समय की असल समस्या पर ठोस विचार करती और समाधान की दिशा में सही सुझाव देती मालूम पड़ती हैं। उनके पास कला, साहित्य, संगीत, चिकित्सा, शिल्प, कास्तकारी, खेती-बागवानी, किसानी आदि के व्यावहारिक अनुभव तथा प्रायोगिक ज्ञान हैं, जिसके माध्यम से वे अपनी जनजातीय विरासत और सांस्कृतिक महत्त्व की चीजों को बचाए तथा उन्हें सहेजे हुए हैं। यहाँ के लोक-साहित्य में अभिव्यक्त एकजुटता तथा सामूहिकता-बोध के उदाहरण अद्भुत हैं। ऐसे समृद्ध राज्य की परंपरा और विरासत को लेकर संवेदनशील हो उठना लाज़िमी है। दरअसल, इस प्रांत का लोक-साहित्य जनजातीय समाज-संस्कृति का न सिर्फ प्रतिनिधित्व करता है, अपितु अपनी परंपरा के विधि-विधानों, परंपरा-अनुष्ठानों, वाचिक-संकेतित शैलियों, अभिव्यक्ति के नए-पुराने सोपानों, जनजातीय स्वप्न-आकांक्षाओं आदि का बृहद् संसार भी रचता-बुनता है। इस सृष्टि में निपट अकेला या व्यक्तिगत कुछ भी नहीं है। सब समुच्चय में है या फिर सामूहिक भाव-विचार के चेतन रूप में। अपनी निज कोठार या ठेठ रूपाकार में अरुणाचली लोक-साहित्य प्रचुर मात्रा में उपलब्ध है जिन्हें सांस्कृतिक समद्धि तथा सामाजिक उपलब्धि का पर्याय कहना समीचीन होगा। प्रकृतितः इस पुरखाई कोठार में आदिम जीवन का असल मर्म छुपा है, तो आदिम आकांक्षा की मूल प्रवृत्तियाँ समाहित हैं।

हाल के दिनों में यत्नपूर्वक अरुणाचल प्रदेश के समृद्ध लोक-साहित्य को सामने लाने का प्रयास जारी है। हिंदी लेखन के स्तर पर गंभीर और जरूरी प्रयास किए जा रहे हैं। जमुना बीनी की 'उईमोक' न्यीशी जनजाति के लोक-कथाओं का सचित्र संग्रह है। इसी तरह तुम्बम रीबा लिखित 'काताम' इस प्रदेश के गालो जनजाति के लोक-कथाओं से परिचय कराती हैं। गुम्पी डूसो का 'यापोम' गालो लोक-कथाओं को चित्रात्मक कथ्य विश्लेषण के साथ प्रस्तुत करता है। अरुणाचली लोकगीतों पर आधारित मोर्जुम लोयी का 'ननम पोनू' विशेष रूप से उल्लेखनीय है जिसमें श्रमपूर्वक अरुणाचल प्रदेश की गालो जनजाति के लोकगीतों को संग्रहीत किया गया है। इस दिशा में पूर्व में हुए लेखन की भूमिका और उनका मार्गदर्शन प्रेरक और बोधक रहा है। वरिष्ठ साहित्यकार ल्यूमर दाई ने अरुणाचल प्रदेश में साहित्य-लेखन की बुनियाद रखी, जिस परंपरा को येशे दोरजी थोङची और ममाङ दाई ने बखूबी आगे बढ़ाया है। भारत सरकार द्वारा पद्मश्री सम्मान से सम्मानित तथा साहित्य अकादमी से पुरस्कृत दोनों लेखकों का प्रभूत लेखन उदाहरण है, जो अरुणाचल प्रदेश को पूरे देश के साहित्य-धारा से जोड़ते हैं।

भौगोलिक रूप से इस प्रदेश की अंतरराष्ट्रीय सीमा तिब्बत, भूटान और म्यांमार से साझा होती है। अपनी सीमाओं के भीतर यहाँ जो आदिम समाज रहता है, उसका संबंध मंगोलायड नस्ल के लोगों से है,

जिनकी संस्कृति और भाषा-बर्ताव, विशेष खूबियों से लैस है। यूँ तो कोई एक लिपि यहाँ सभी लोगों के बीच प्रचलन में नहीं है, तथापि उनका, अपनी निज भाषा एवं बोली से, लगाववृत्ति सर्वाधिक है; जबकि 26 मुख्य जनजातियों के साथ करीब 100 से अधिक उप-जनजातियाँ इस राज्य की मूल निवासी हैं। न्यीशी, आदी, गालो, मोंपा, तागिन, आपातानी, वांचो, मिश्मी, खाम्पति, आका, मिजी, मेम्बा, नोक्टे, सिंग्फो, शेरदुक्पेन, तांगसा आदि मुख्य जनजातियाँ हैं। ये सभी जनजातियाँ अपनी जनजाति के नाम-कुल की ही भाषा का प्रयोग-व्यवहार अपनी मातृभाषा अथवा मातृ बोली के रूप में करती आ रही हैं। प्रमुख अरुणाचली जनभाषाओं के नाम हैं-आदी, न्यीशी, गालो, तागिन, आपातानी, मिजी, मोम्पा, खाम्पति, आका, इदु मिश्मी, वांग्चू, वांचो, नोक्टे, सिंग्फो, मेयोर, लिसू आदि।

स्वतंत्र राजनीतिक इकाई के रूप में अरुणाचल प्रदेश 20 फरवरी, सन् 1987 ई. को अस्तित्व में आया। इससे पूर्व इसका नामकरण 'नेफा' (नॉर्थ ईस्ट फ्रंटियर एजेंसी) के रूप में हुआ तो, इसके भी पहले अरुणाचल प्रदेश को 'नेफ्ट' (नार्थ ईस्ट फ्रंटियर ट्रैक्ट) के नाम से जाना जाता था। अंग्रेजी शासनकाल के आरंभिक दिनों में यह परिक्षेत्र अहोम-साम्राज्य का हिस्सा था जिसे बाद के दिनों में अंग्रेजों ने इसके अलग-अलग नामकरण किए और यहाँ अपनी ब्रिटिश हुकूमत का शासकीय एवं प्रशासनिक ढाँचा तैयार किया। जैसा कि पूर्व में ही उल्लेखित किया गया है कि उत्तर-पूर्व की मनोरमता अद्भुत है, तो हरीतिमा अप्रतिम। अरुणाचल प्रदेश की लोक-संस्कृति के बारे में जानना सुखद अनुभूति या रोमांच का विषय हो सकता है, जिस बारे में ख़ास- ओ-आम चर्चाएँ बहुत कम होती हैं। उत्तर-पूर्व के लोक-साहित्य लगभग अछूते विषय हैं जहाँ तक मौजूदा मीडिया की करीब-करीब अनुपस्थिति है। यद्यपि मीडिया की पहुँच और पैठ इस बीच बढ़ी है।

हाल के वर्षों में आईसीटी (इन्फार्मेशन एण्ड कम्यूनिकेशन टेक्नोलॉजी) की भूमिका गौरतलब है। भारतीय मीडिया में लिखित साहित्य को लेकर ही सामान्य रुचिबोध, आकर्षण अथवा लगाववृत्ति नहीं दिखाई पड़ते हैं, जिस कारण भारतीय लोक-साहित्य जनश्रुति एवं किंवदंती मात्र बनकर रह गया है। भारतीय जनमानस में सचाई, निष्ठा, प्रेम, समर्पण, आस्था, विश्वास आदि जैसे सर्वोपरि मानवीय-मूल्यों के प्रति जो आग्रह या कि बल दिखाई देता है, वह भारतीय लोक साहित्य द्वारा संपोषित तथा समुन्नत बनाया हुआ है। आज लोक साहित्य हाशिए पर डाला जा रहा है, जिस कारण समाज के रेशे-रेशे में मौजूद जीवन एवं प्रकृति आधारित विशुद्ध मूल्य का ह्रास देखने को मिल रहा है। ऐसे समय में राष्ट्रीय मीडिया या कि अन्य जनमाध्यम इन बातों एवं दृश्यों को अपने कवरेज अथवा समाचार का हिस्सा शायद ही बना पाता या कि उसे खुले मन से दिखाने का साहस जुटा पाता है, जो बिल्कुल कुदरती और सत्यता का प्रामाणिक स्वरूप है। इस अभाव के कारण भारतीय ज्ञान-परंपरा का सम्पर्क-संवाद अरुणाचल प्रदेश के अनुभव-स्मृति के साथ अक्सर नहीं हो पाता है तथा भारत का नागरिक समाज यह जान एवं समझ पाने से वंचित हो जाता है कि- खिकसबा, चाकोलोकू, न्योकुम, सोलुङ, ऐतोर, आरान, मोपिन, लोसर, रेह, द्रि, सी-दोन्यी आदि इसी देश के महत्त्वपूर्ण पर्व-त्योहार हैं। मीडिया के बरास्ते अरुणाचलवासियों के अंतस से साक्षात्कार जरूरी है, क्योंकि अरुणाचल प्रदेश का लोक-साहित्य लम्बा जीवन जीने की जगह सार्थक एवं सच्चा जीवन जीने पर बल देता है। इसलिए

यहाँ किसी व्यक्ति की मृत्यु को अपूर्णीय क्षति माना जाता है। मृत व्यक्ति के लिए खास तरीके का अनुष्ठान आयोजित होता है। इस दौरान जुटे लोगों और समूह के समक्ष मृत व्यक्ति के जन्म से लेकर मृत्यु तक की पूरी जीवन-यात्रा का वर्णन या चित्रण बड़े ही संवेदनात्मक तथा मार्मिक ढंग से होता है। अरुणाचली जनमानस जिस सामूहिकता तथा पारस्परिक प्रेम का आग्रही है, उतना ही वह गलत प्रवृत्तियों के संहार या कि उनको नष्ट करने का भी समर्थक है। इससे समाज के सभी लोग अपने कृत्य के प्रति जवाबदेही और पूर्ण समर्पण की भावना से संबद्ध दिखाई देते हैं जिसे मानवीय भूल या त्रुटि की ओट में प्राय: छुपा लेने का प्रचलन आजकल आम हो चला है।

अरुणाचली जनमानस पर तेजी से आधुनिक प्रभाव पड़ता दिख रहा है। लोक-साहित्य की परंपरा के उलट लोग आचरण कर रहे हैं। वे तात्कालिक लाभ और स्वार्थपूर्ति की अभिलाषा में लगातार गलत आचरण और भ्रष्ट प्रवृत्ति के शिकार हो रहे हैं। आदिवासी पहचान एवं अस्मिता की मूलभूत बातें जिसे लोक-साहित्य द्वारा संरक्षित-सुरक्षित रखा जाता रहा है, वह भी अब तेजी से क्षरित हो रही है। मौजूदा मीडिया में अरुणाचल प्रदेश के मूल्य-दर्शन में समोयी यह बात सामने आनी चाहिए कि आदिम जन-संस्कृति की विकसनशील प्रकृति सचाई है। इस लोकवृत्त में देशकाल का चेहरा अपने यथार्थरूप में मौजूद होता है। आज जो कुछ घटित है, वह प्रकृति से संबद्ध है। आस-पास के जीवन को देखें, तो लोक (Folk) प्रकृति के आसरे है। इस प्रकृतिजीविता की संस्कृति ने मनुष्य की उपलब्धियों को सराहा है तथा उसकी अनेकानेक गतिविधियों को स्वीकार किया है। लोक-साहित्य एक ऐसा ही संचित-कोष या कहें सामूहिक मन का स्मृति-भण्डार है। लोक-साहित्य में जो भी चीजें मौजूद हैं, वह अपने होने की वजह साथ लिए चलती है। यानी लोक-साहित्य में अकारण कोई भी चीज न तो टिकी रह सकती है और न ही फल-फूल सकती है। यह भी सत्य है कि लोक-साहित्य में प्रकृति और मनुष्य की युगलबन्दी बेजोड़ है। प्रकृति और मनुष्य की यह सहजीविता या कि सहअस्तित्व अद्भुत है जिसमें जीने और बचने के अंतःसूत्र छिपे हैं, गुणसूत्र पनपे और विकसित हुए हैं। लोक-जीवन से संबंधित प्रकृति से असंबद्ध चीजें स्थायी महत्त्व की नहीं होती है, अपितु उनमें समसामयिक बदलाव दृष्टिगोचर होते हैं। यह सच है कि वैश्विक रद्दोबदल की गति तीव्र है। दुनिया तेजी से एक-दूसरे के नजदीक आ रही है। भौगोलिक दूरी के विपरीत आभासी दुनिया का नवयथार्थ सामने है। मीडिया ने मनुष्य के सामाजिक-सांस्कृतिक कार्यकलापों पर दूरगामी या कहें दूरदेशिक प्रभाव डाला है। आज का समाज पूर्व के समाज से भिन्न है, तो कई अर्थों में सहधारा का साक्षी है। पिछले कुछ वर्षों में जिस तरह के बदलाव हुए हैं, उसे मीडिया के ढाँचे या साँचे में देखे-ताकें तो यह भयावह है और सम्मोहक भी। इस समय भाषा-विलुप्ति का संकट सामने है। यह विपत्ति, संस्कृतियों के नष्ट-विनष्ट एवं पलायित-विस्थापित होने की गवाह है। सर्वत्र परंपरा में सेंध और प्रकृति के लोक आधारित निर्मितियों से दुराव-अलगाव एक खतरनाक प्रवृत्ति को जन्म दे रही है।

वर्तमान समय को देखते हुए मीडिया के सार्वभौम महत्त्व को स्वीकार करना अनिवार्य है, संचार-संस्कृति की मौजूदा प्रकृति विचारणीय है सो अलग। इस समय मीडिया ने सोच-समझ कर वितान को फैला दिया है। जनमाध्यम की अकूत ताकत ज़ाहिर है। वह जनता से संबंधित है, और उसी को संबोधित भी।

जनमाध्यम की प्रभावशीलता को गहन-गंभीर ढंग से देखा-समझा जा रहा है। जनसंचार संस्कृति के फैले डैने और उसकी उड़ान देखने योग्य है। स्थानीय-वैश्विक स्तर तक पहुँच और प्रकरण मौजूदा मीडिया का वास्तविक स्वरूप है। अनुभूत एवं अभिव्यक्ति की इस यात्रा में भारतीय जनमानस सम्पूर्णतया शामिल है। यानी नगरी-नगरी, डगरी-डगरी, गाँव-जवार, शहर-देहात, सुगम-दुर्गम आदि सब तक। यह और बात है कि, मीडिया केंद्रित कार्यकलाप खुद सवालों के घेरे में है, जिसकी चालाक मनोवृत्ति और पूँजीवादी षडयंत्रों ने मौजूदा संकट एवं संघर्ष में इज़ाफा ही किया है। जैसा कि भारत में जनसंचार की चेतना का प्रस्तावक अथवा प्रवर्तक नारदमुनि को माना जाता है और लोक-संचित भाव-बोध को प्रतिबिंबित करने में नाटक की भूमिका को उल्लेखनीय कहा जाता है। सम्यक् कोटि की इन परंपराओं में बहुविध चीजों का योग रहा है, तो कई सारी चीजें इरादतन नहीं शामिल की जाती रही हैं। परंपरा में मौजूद किन्तु शास्त्र से छूटे लोकानुभवों का महत्त्व वर्णनातीत है। नाटक को जिस तरह आचार्य भरत मुनि ने 'पंचम वेद' कहा है; वैसे ही लोक-साहित्य इस शब्द संसार का 'माटी कोख' है। लोक की वाचिक शक्ति का ठेठ कोठार है। यह कोठार लोक-मन व जन-जीवन का शक्ति-केन्द्र है जैसे हमारे शरीर में-'माइट्रोकाण्ड्रिया'। वरिष्ठ लेखक वसंत निरगुणे ने इस बारे में कलम चलायी है। उनकी पुस्तक 'जीवन में लोक विज्ञान' का संदर्भ लें, तो उनके द्वारा प्रस्तावित विषयवस्तु आधारित अनुक्रम पठनीय है। यथा-'लोक और जीवन', 'विज्ञान और लोक विज्ञान', 'जीवन में लोक विज्ञान की उपस्थिति', 'लोक विज्ञान का महत्त्व और उपयोगिता', 'लोक विज्ञान और प्रकृति का अन्तर्संबंध', 'लोक-विज्ञान में प्रकृति और जल-विज्ञान', 'जन-जीवन में पारंपरिक व्यावहारिक विज्ञान के प्रमाण और प्रामाणिकता', 'लोक विज्ञान की अभिव्यक्ति के माध्यम'। सहृदय पाठक इस किताब द्वारा लोक को जान भी पाता है और सच्चे अर्थों में जुड़ भी पाता है।

दरअसल, जनमानस द्वारा सींझी-पकी या रींझी-भींजी आदिवासियत का लोक-साहित्य और अधिक प्रशंसनीय तथा अनुकरणीय है। लोक यदि पूर्वग्रह और दुराग्रह से मुक्त हो, तो विघ्न-बाधाएँ पैदा ही नहीं होती है, तथा वह अपनी मूल प्रकृति में विद्युत की नंगी तार की भाँति पूर्णतया सुचालक बना रह पाता है। सनद रहे कि, लोक हर तरह के द्वंद्वों से मुक्त संसार है; यह कहना ग़लत होगा। मानवीय दुर्बलता से लेकर तमाम तरह की जैविक-अजैविक संरचनाएँ इस लोक में मौजूद हैं। यहाँ वाग्मिता है, तो 'वाक्' पर संकट और प्रहार भी है। यानी निष्कंटक या निष्पाक कुछ भी नहीं है; लेकिन जो है वह उसका वास्तविक स्वरूप है, यथार्थ छवि या कि प्रतिमाएँ हैं। इस दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश का लोक-साहित्य जन-मन तक फैलता रहा है। साथ ही इसका वाचिक रूप बेहद समृद्ध और बाद की पीढ़ी के लिए सहज ही अपना लेने योग्य है। ज्ञात-अज्ञात कई पीढ़ियों का अनुभव एवं श्रम-ऋत इसमें शामिल है। हाल के दिनों में लोक-साहित्य को लेकर संवेदनशील रवैया देखा जा रहा है। इस प्रक्रिया में 'सूचना एवं संचार-प्रौद्योगिकी' का योगदान और उसका हासिल भी बहुत कुछ है। सामान्य अथवा साधारण-सी प्रतीत होने वाली इन चीजों में लोक-प्रवृत्तियाँ स्थूल-सूक्ष्म ढंग से विद्यमान है; सामाजिक-सांस्कृतिक रूप से आदिम पुरखा परंपरा इनमें जिन्दा है। लोक-स्मृति की कहीं कोई तुलना नहीं है। यह जिस उच्चतर भाव-बोध, रंग-रूप, आकार-प्रकार, छवि-मिथ से बँधी-गुँथी हुई हैं, उस बारे में विचार

करना जरूरी है। वह भी मात्र ऊपरी-ऊपरी प्रशंस्य-भाव से नहीं, अपितु गहन लगाववृत्ति एवं संवेदनशील अनुकरण के माध्यम से अपने चित्त-विवेक का प्रयोग आवश्यक है।

2.

द्रष्टव्य है कि अरुणाचल की सभी जनजातियाँ प्रकृति और प्राकृतिक सम्पदाओं के साथ तादात्म्य और अन्योन्याश्रित संबंध बनाये हुए हैं। जनजाति के अपने अनुभव और स्मृति में लोक-साहित्य का उन्नत भंडार है। उनका लोक-साहित्य अधिकांशतः वाचिक यानी मौखिक रूप में मौजूद है जिसमें आदिम चेतना के जीवंत तत्त्व और प्रकृतिजीवी स्वाभाव पूर्णतया मौजूद हैं। जनजातीय समाज आधुनिकता के कारण शिक्षित समुदाय में परिणत हो रहा है, जिससे उनकी अपनी परंपरा से जुड़ाव और लगाव बढ़ते जा रहे हैं। जनजातीय लोक-साहित्य के जानकार और मर्मज्ञ पुरानी प्रथा या ग़लत रीति-रिवाजों को आधुनिक समझ बढ़ने के साथ छोड़ रहे हैं, लेकिन उनकी अपनी मूल चेतना और जनजातीय संस्कार कई सारे मिथकों, मिथकीय उदाहरणों, लोक-कथाओं, लोक-गाथाओं में प्रमुखता से जगह बनाए हुए हैं जो उन्हें 'तानी' वंश से जोड़ती हैं, जिनका पुरखा या पितृ-पुरुष 'आबोतानी' को कहा जाता है। इनका लोक-विश्वास 'दोन्यी पोलो' की परंपरा में गहरी आस्था संजोते हैं जो सूर्य और चंद्रमा का प्रतीक है। जनजाति का बौद्धिक-वर्ग आधुनिक रूप से काफी चेतस और अपने लोक-साहित्य के प्रति सचेत हैं। वे अपने मौखिक रूप में मौजूद लोक-साहित्य को आधुनिक समय में प्रकाशित करने में दिलचस्पी लेने लगे हैं। लोक-साहित्य पर कई पुस्तकों का प्रकाशन शुभ संकेत है। जैसे-'काताम' (तुम्बम रिबा), 'उईमोक' (जमुना बीनी)। तानी दर्शन पर केंद्रित एक प्रमुख उपन्यास 'जंगली फूल' नाम से प्रकाशित हुआ है जिसकी लेखिका जोराम यालाम नाबाम हैं। इसाई धर्मांतरण की प्रक्रिया तेजी पर है, तो हिन्दू विचारों की लहर भी जबर्दस्त है। इस प्रकृतिजीवी जनसमुदाय के सामने अपनी पहचान और अस्मिता को बचाए रखने की जो मुख्य प्रवृत्ति देख सकते हैं, वह इनके लोक-साहित्य में विद्यमान है। अरुणाचल में अरुणाचली-धर्म का प्रचार-प्रसार हो रहा है। नितांत अरुणाचली, किन्तु स्वतंत्र जीवन-दर्शन एवं मानव-बोध को संबोधित धार्मिक माहौल या कि आध्यात्मिक वातावरण लोगों द्वारा अपनी जनजातीय पहचान और अस्मिता को अटूट बनाए रखने के लिए स्थापित किए जा रहे हैं जिनकी जानकारी मीडिया के माध्यम से बहुत कम लोगों तक पहुँच सकी है। भारतीय साहित्य में लोक-साहित्य की धारा उपेक्षित है तथा यह भारतीय जनमानस की आधुनिक मनोवृत्ति और अब तक जारी रही शिक्षा द्वारा लगातार हाशिए पर डाला और ढकेला जा रहा है।

आधुनिक बाजार और उपभोक्तावादी संस्कृति को लजाते जनजातीय भाषाओं का यह कल्पवृक्ष निरंकुश बनते बाजारवादी वातावरण को आईना दिखाता है तथा यह भी साबित करता है कि मंगल की कामना और मन्नतों की चाह में पत्थर पूजने या पीर-औलिया के आगे माथा नवाने की जगह मानुषिक-प्रेम और प्राकृतिक परिवेश में जीना भाषा के अपने प्रामाणिक एवं जन पक्षधर बनने की दृष्टि से श्रेष्ठ है; और सर्वथा जीवंत भी। अरुणाचल प्रदेश की जनभाषाओं में ऐसा मानना है कि भावों की विवशता ने ही शब्दों को जन्मा है। इन शब्दों की भाव-भंगिमा अक्षरों या वर्णों में पूरी तरह नहीं समा सकती हैं। अनूदित होने का तो

सवाल ही नहीं है। जब भी अरुणाचल प्रदेश की मातृ भाषाओं में दर्शन और अध्यात्म की बात आती है, तानी-दर्शन यहाँ के हर एक रहवासी के मन-मस्तिष्क में प्रकट हो जाता है। 'सूरज' की जो छवि या कहें आंतरिक प्रतिमा बनती है, उस शब्द-शक्ति के बहुतेरे नाम प्रचलन में हैं- दोन्यी, अजंग, मीदो, अजी आदि। तानी-दर्शन में आस्था विश्वास का पूर्ण समर्पण है, जिसमें एकमात्र प्रकृति का लय है, उसी की गति है। तानी-दर्शन अरुणाचल प्रदेश का बोलकर नहीं है। यह दर्शन इस जागतिक दुनिया का वास्तविक बोधक एवं संवेदक है जिसे सुना, देखा, छुआ, सूँघा, चखा इत्यादि जा सकता है। यह अवधारणा सृष्टि की उत्पत्ति के पूर्व-काल से उत्तर काल तक मौजूद है। डॉ. जोराम यालाम इस बारे में जो लिखती हैं, वह तथ्य रोचक है-''कोई आवाज नहीं थी। गहरा सन्नाटा था। कोई भी रंग नहीं था। काल और विचार से परे। समय का अस्तित्व ही नहीं था। सूरज जन्मा नहीं था। चाँद था ही नहीं। जिस धरती पर हम वर्तमान में वास कर रहे हैं, उसका भी तो अस्तित्व नहीं था।'' इस तरह तानी-दर्शन की शुरुआत महाशून्य से होती है जिसका उल्लेख करते हुए डॉ. यालाम कहती हैं-''ऐसा माना गया है कि शून्य से आँखें उत्पन्न हुईं- सूर्य, चन्द्र, तारे और धरती। ये सब आँखें हैं महाशून्य की।'' ये आँखें अपनी गोलाई में पूरे विश्व की परिक्रमा करती हैं, पृथ्वी इनके साथ लय, गति, संगीत और शब्द में प्रवृत्त दिखाई देती है। अर्थ में यह नाद-बिम्ब और शब्द-शक्ति के रूप में आवृत्त है जिसमें मनुष्य का बोलना ही एकमात्र सत्य या कि परम सत्ता होने का प्रमाण नहीं है। तानी-दर्शन में प्रकृति का वरण अद्भुत है। यहाँ आस्था धार्मिक कर्मकाण्ड या किसी भी प्रकार की असमानता और भेदभाव को जन्म नहीं देता है। तानी-दर्शन की व्याख्या में डॉ.जोराम यालाम ठोस तर्क रखती हैं-''हमारी संस्कृति में भी न्याय-अन्याय, शुभ-अशुभ होते हैं। लेकिन पाप-पुण्य की धारणा नहीं है। इस प्रकार के शब्दों का जन्म भी नहीं हुआ। धर्म की धारणा भी नहीं है। क्योंकि श्रद्धा जहाँ होती हैं, वहाँ धर्म की आवश्यकता नहीं होती। यह अपने-आप में एक अनुशासन है। उस स्थिति में आदमी स्वतः ही धार्मिक होता है। सारी सृष्टि पारिवारिक रिश्तेदारी के तानों-बानों से बुनी है। ऐसा माना गया है।''

तानी-दर्शन में शब्द-सृजन का महात्म्य बहुत है। अपने आपमें अप्रतिम तानी-दर्शन से आत्मीयता और उसका सही बोध होना जरूरी है। जन-जन में व्याप्त इस दर्शन को लोक-शिक्षण के अलावे आधुनिक शिक्षा का आधार स्तंभ बनाया जाना जरूरी है। शैक्षणिक प्रणाली में इनका होना आज की आवश्यकता है, क्योंकि तानी-दर्शन जिस वैश्विक जीवन-मूल्य एवं चिरंतन-दृष्टि से साक्षात्कार कराता है, वह आज की उत्तर शती में अपरिहार्य हो चला है। पिछले दिनों डॉ. जोराम यालाम ने आदिवासी समाज के लिए एक मुहीम छेड़ी जो आँख खोलने वाली है। वह आदिवासी समाज के लिए भारतीय जनगणना आधारित दस्तावेजों में स्वतंत्र ट्राइबल कोड का माँग कर रही हैं। यह तानी-दर्शन की उस अवधारणा को आगे बढ़ाना है जिसमें अरुणाचल प्रदेश खाँटी या ठेठ तौर पर प्रकृतिजीवी है। प्रकृति में उसका लोप नहीं, विलय नहीं, अपितु अपने मनुष्य होने की ताकीद है, सचाई में सम्पूर्णता संग जीने का अधिकार है।

सर्वविदित है कि वाचिक शैली में अपनी स्मृति को जनभाषाओं से सींचता अरुणाचल प्रदेश वन-संपदा, प्राकृतिक स्रोत व संसाधन आदि से संपन्न है। यह राज्य सूर्योदय की भूमि कहा जाता है, तो इसके पीछे की वजह यह है कि भारत में सर्वप्रथम प्रभाती इस प्रदेश में ही होती है। दिन यहाँ की बहुचर्चित बस्ती 'दोंग' से

आरंभ होता है और ढलान की साँझ खत्म होती है-गुजरात में। सूर्योदय के इस प्रांत को कई नाम दिया गया है। जैसे-अरुणोदय भूमि, उदयाद्रि, अरुण मधुमय देश आदि। अरुणाचल भाषा बहुल एक ऐसा राज्य है, जहाँ के जनजातीय रहवासियों का अपनी मातृबोलियों एवं मातृभाषाओं के प्रति लगाव गहरा और जुड़ाव जबर्दस्त है। हिंदी ने भी यहाँ अनन्य भाव से गहरे तक अपना असर बनाया है। अरुणाचलवासियों ने हिंदी को स्वेच्छा से अपनी बोलचाल-बर्ताव की मुख्य भाषा के रूप में स्वीकार किया है। तभी तो यहाँ के स्त्री-पुरुष संबंध से लेकर खान-पान, रहन-सहन, परिधान, प्रथा, मान्यता, लोकाचार, लोक-परंपरा, लोक-साहित्य आदि में हिंदी बड़ी ही सहजता से शामिल और संचार के बहुविध स्तरों पर व्यवहार-प्रचलन में है। संघीय ढाँचा में सामाजिक-सांस्कृतिक बहुलता, बहुभाषाभाषीपन, भौगोलिक-प्राकृतिक रचाव-बसाव आदि प्रमुखता से आते हैं, जिन्हें समझने की सम्यक् दृष्टि होना सही अर्थों में भारतीय या भारतवासी कहलाना है। हाल के कुछ वर्षों में राजनीतिक अंतर्विरोध गाढ़ा हुआ है, तो सामाजिक-सांस्कृतिक ताना-बाना बुरी तरह बिगड़ा है। अजनबीयत एवं अलगाव मानव स्वभाव, व्यक्तित्व एवं व्यवहार का स्थायी भाव बनते जा रहे हैं सो अलग। ऐसे कठिनतम समय में जनभाषा का प्रश्न करना महत्त्वपूर्ण है। ध्यान दें, अपनी सामाजिक-सांस्कृतिक चेतना में खुशहाल एवं उत्सवधर्मी पूर्वोत्तरवासियों का साहित्य के प्रति राग-अनुराग जबर्दस्त है। मौखिक साहित्य का उनका लोक-वितान व्यापक और बहुआयामी है, तो उनके भीतर पैठी लोकजीवी संस्कृति महत्त्वपूर्ण है। जैसे-लोककथा, लोकगाथा, लोकगीत या कि जनजातीय भाषा में प्रचलित मुहावरे, लोकोक्तियों आदि से संबंधित सामग्री।

आदिम जीवनराग की आधुनिक अभिव्यक्ति इतनी स्वच्छ, निर्मल, स्वार्थ एवं वासनारहित हो सकती है, यह दूर से सुनना-जानना मोहक अथवा आश्चर्यजनक प्रतीत हो सकता है, लेकिन यह पूर्वोत्तरवासियों के लिए उनके चारित्रिक वैशिष्ट्य का स्वाभाविक अंग-उपांग है। हिंदी खुद भी उत्तर-पूर्वी जनभाषाओं के संग-साथ स्थानीय-बोध को महसूसने, सांस्कृतिक रवायतों को जानने, जनजातीय साहित्य को देखने-परखने उनके दैनंन्दिनी से जुड़ने-गुँथने, जनश्रुत अभिव्यक्तियों इत्यादि से अपनापा गाँठने, परिचय बढ़ाने में निरन्तर संलग्न है। इस तरह की सक्रियता एवं सहभागिता निःसंदेह हमारे हिंदी साहित्य की समृद्धि में श्रीवृद्धि करने वाला है। भौगोलिक दृष्टि से यह सुदूर प्रांत के जनजातीय जनभाषाओं के साथ सहकार-भाव स्थापित करना है जिनके सांस्कृतिक उपादानों में पारंपरिक संस्कार, मिथकीय ज्ञान, लौकिक मान्यता, सामाजिक नियम, सामूहिक अनुशासन, स्वीकृत प्रथा, जनश्रुत साहित्य आदि की ठेठ ठाठ है, गौरव-गान है।

3.

भारतीय प्रायद्वीप हिंद महासागर में 'आइसबर्ग' की तरह स्थित है। यहाँ के त्रिभुवन या त्रिलोक संबंधी मिथक प्रासंगिक हो जाते हैं जब यहाँ की सामाजिक बहुलता और सांस्कृतिक विविधता के दर्शन होते हैं। पूर्वोत्तर की पहचान अपने आप में विशिष्ट है, क्योंकि यहाँ विद्यमान शक्तियाँ भारतीयता के मूल-दर्शन का अवगाहन और अनुसरण करती मालूम होती हैं। पूर्वोत्तर के आठ प्रदेशों में अरुणाचल 'रश्मिरेखा' की तरह है जहाँ सूर्योदय पहले-पहल होता है। इस प्रदेश के लोक-साहित्य में वाचिक अथवा उच्चारणगत भिन्नता बहुत है। शब्द एवं अर्थ के स्तर पर बहुत सारे अंतर विद्यमान हैं। अरुणाचली लोक-साहित्य को अपनी पुरखाई

परंपरा की देन मानने वाले यहाँ के रहवासी इनको भाँति-भाँति से बरतते हैं और अपने आगे की पीढ़ी को हस्तांतरित करते हैं। लोक-साहित्य का लोकवृत्त समझने के लिए यहाँ के आदिवासी-मन को निकट से देखना ही नहीं, अपितु महसूस भी करना होगा। यद्यपि पर्यटन और सैर-सपाटे का शौक इन दिनों न सिर्फ बढ़ा है, अपितु पूर्वोत्तर ने सबको आकर्षित भी किया है। लेकिन ये स्मृतियाँ स्थायी नहीं हैं, जो पूर्वोत्तर या अरुणाचल प्रदेश की सही समझ और सम्यक् दृष्टि का अवधान करा सके, उनका आवर्धन कर सकें।

अतएव, अकादमिक लेखन की महत्ता और अनिवार्यता स्पष्ट दृष्टिगोचर होती है, जिस ओर शिक्षा के बरास्ते आगे बढ़ा मनुष्य भारतीयता के भावबोध को खंगालता और खोजता हुआ, अरुणाचल प्रदेश का पाठ-अंतर्पाठ प्रस्तुत करता दिखाई देता है। उसकी खोजबीन में अनुभूति की संगति है, तो दृष्टि की व्यापकता भी समाहित है। शिक्षा मनुष्य के सर्वांगीण विकास की आवश्यक अर्हता है। वैसे भी भारतीय प्रायद्वीप में ज्ञान-दर्शन के विस्तृत भूभाग और परिक्षेत्र मौजूद हैं। भारतीय ज्ञान-समाज अपनी मूलप्रवृत्ति में जड़ एवं चेतन सभी के प्रति संवेदनशील है। यही कारण है कि भारतीय चेतना 'सत्यम् शिवम् सुन्दरम्' की परिकल्पना करती है और सबके साथ सबमें अपने होने को प्रमाणित करती है। शास्त्रीय अवधारणा में जो पिछड़ापन या कि जातिवादी-वर्णवादी मानसिकता दिखाई देती है, वह भारत की वास्तविक ज्ञान धारा और धारणा नहीं है। भारत का असल ज्ञान-क्षेत्र और शैक्षणिक-स्थल 'लोक' है जो बिना किसी मुलम्मे, आवरण, मुखौटे इत्यादि के आज भी जन-जन के मन-मस्तिष्क में बसा हुआ है। अंधविश्वास, कुरीतियाँ और प्रथाएँ बाद के दिनों में भारतीय जनसमाज पर अवश्य थोप दी गईं, जबकि लोक के लिए वे स्वीकार्य कभी नहीं रही हैं। प्रश्नाकुलता, मौलिक चिंतन, वैज्ञानिक तर्क, नवीन प्रयोग और अभिनव दृष्टि, लोकजनित परंपरा में विशिष्ट है, लेकिन प्रायः इस दिशा में हमारी खोज और विश्लेषण कम ही होते हैं। लोक की न्याय-प्रणाली, सामाजिक मान्यताएँ, धार्मिक विश्वास आदि में गोचर-अगोचर सबके प्रति अगाध निष्ठा है। भारतीय लोक अनुमान और प्रतीयमान दोनों की सत्ता को स्वीकार करता है, उनकी उपस्थिति और संगति को महत्त्व देता है। इस दृष्टि से अरुणाचल प्रदेश की मनोरम भूमि जनजातीय ज्ञान-दर्शन तथा शिक्षा-प्रणाली से सीधे जुड़ी हुई है। जनजातीय समाज की श्रेणियों, कोटियों, संकुलों, समुदायों आदि में विद्यमान भाषाई बहुलता और सांस्कृतिक वैविध्य लोक-साहित्य की असल धरोहर हैं जिनसे यहाँ की जनजातीय चेतना, आकांक्षा, स्वप्न, प्रतिरोध इत्यादि ठोस तथा ठेठ रूप में दिखलाई पड़ते हैं। भाषाई आधार पर बोलियों की विभिन्नता यहाँ की वाचिक परंपरा को दर्शाते हैं, जिसमें प्रत्येक जनजाति के लोग आपसी बातचीत में तो सर्वथा अपनी बोली बोलते हैं, किन्तु अन्य जनजातियों या गैर-जनजातीय लोगों से संपर्क करने हेतु प्रायः हिंदी, अंग्रेजी, असमिया अथवा बांग्ला का प्रयोग-व्यवहार करते हैं। हिंदी यहाँ के लोगों द्वारा स्वेच्छा से अपनाई गई संपर्क-भाषा है जिसमें व्यवसाय, नौकरी के लिहाज से नए अवसर और संभावनाएं दिखाई देने लगी हैं। यहाँ के लोक-साहित्य में उपलब्ध जनजातीय दर्शन, ज्ञान, विचार, विवेक, दृष्टि, कौशल, कला, शिल्प इत्यादि को हिंदी भाषा में संजोने का महत कार्य पिछले कई दशकों से हो रहा है। सांस्कृतिक क्रियाकलाप, पारंपरिक अनुष्ठान, सामाजिक मान्यताएँ, धार्मिक विश्वास, रीति-रिवाज, प्रथा, उत्सव, नृत्य, मुहावरे, लोकोक्ति, लोक-सुभाषित आदि में निहित जनजातीय दर्शन और शिक्षा को हिंदी भाषा के बरास्ते प्रकट करने का प्रयास किया जा रहा है। अकादमिक शोध-अनुसंधान के

माध्यम से तद्विषयक महत्त्वपूर्ण कार्यों के दस्तावेजीकरण एवं डिजिटल-अनुरक्षण की प्रक्रिया अपनायी जा रही है।

यह देख पाना सुखद होगा कि भारत के उत्तर-पूर्व में बसा अरुणाचल प्रदेश अपनी लोक-स्मृति में लोक-साहित्य को सहेजे हुए है। यह राज्य प्राकृतिक संपदा से परिपूर्ण है, तो लोक-संपदा की ढेरों सरणियाँ इनकी स्मृतियों में गुंजायमान हैं। यहाँ पुरखाई समाज की बहुलता है। प्रकृति की सर्वोपरिता एवं सच्चाई है जिसका अवगाहन यहाँ का प्रकृतिजीवी समाज करता है। अरुणाचल के आदिवासी प्रकृतिजीवी हैं तथा वे सृष्टि के सार्वभौम सत्ता पर विश्वास करते हैं। उनकी दृष्टि में प्रकृति सर्वशक्तिमान है और उसी की इच्छानुसार इस संसार की वृद्धि एवं समृद्धि हर मनुष्य निष्कंटक कर पाता है। प्रकृति पूजक जनजातीय समाज के प्रतिनिधि देवी-देवता हैं- दोन्यी पोलो, उयु, यापोम याज़ी, दियी तामी, पिंकू-पिंते, लितुम, लिरो, मोपीन देवी, लोसी लोरे, लोदो लोरे, रिलुम ताजुम, गारे गापो, देबो-कोम्बो इत्यादि। अरुणाचली लोक-साहित्य में इनका सुमिरन और इनके कृत्यों का अनुसरण देखा जा सकता है। यहाँ के लोक-साहित्य में इंसानी दुर्बलता व दुर्गुणों की बात मुखर ढंग से की जाती है। सयंम और अनुशासन इनके आदिवासीपन की मूल पहचान है, तो श्रमशील होना वास्तविक पूँजी। प्रकृति के बताए रास्ते पर आगे बढ़ते जाने का आग्रह अरुणाचल प्रदेश के आदिम समाज को आज भी प्रकृतिजीवी बने रहने पर बल देता है तथा कृत्रिम आडंबरों एवं विडंबनाओं से दूरी बरतने की सलाह देता है।

अरुणाचल प्रदेश से संबंधित आँकड़ागत तथ्यात्मक चीजें लगभग सभी की जानकारी में हैं, लेकिन भाषाई बहुलता वाले इस प्रदेश के बारे में ऐसी बहुत सी जानकारियाँ या कहें सच्चाई सबके समक्ष नहीं आ सकी है। विशेषकर जनजातीय भाषाओं की ज्ञान-परंपरा, अनुभवजन्य मिथ, मूल्य-परंपरित लोक-साहित्य आदि बिल्कुल अछूता है। इन बातों के जानकार भी बहुत कम बचे हैं। अरुणाचल प्रदेश की आबादी कम अवश्य है, लेकिन यहाँ का आदिम समाज बेहद जागरूक और अपनी पारंपरिक चीजों एवं पुरखाई मूल्यों को लेकर बेहद सजग-संवेदनशील है। इन सभी जनजातियों का वाचिक कोठार पुरखाई ज्ञान एवं लोक-साहित्य से समृद्ध है। यह और बात है, लिपि के अभाव में तेजी से उनका क्षरण हो रहा है। कुछ-कुछ भाषाओं के जानकार तो बहुत ही कम तादाद में बचे हैं। उनकी भाषा के अनुभव-संसार में जो लोक-साहित्य अंकित है, वह उनकी मृत्यु के पश्चात बिल्कुल गायब हो जाता है। अरुणाचली लिपि का सर्वमान्य प्रतीक-व्यवस्था नहीं होने से इनका बचाव अथवा संरक्षण लिखित रूप में भी बहुत कम हो रहा है। नई पीढ़ी भी जागरूकता और शिक्षा के अभाव में इन सब चीजों के महत्त्व को नहीं समझ पा रही है, जिसके परिणामस्वरूप अरुणाचल प्रदेश की कुछ भाषाओं पर विलुप्ति का संकट सर्वाधिक है।

जनजातीय भाषाओं में साहित्यिक बहुलता को देखें, तो इस क्षेत्र में शोध-कार्य की नवीन संभावनाएँ मौजूद हैं, खासकर हिंदी भाषा में, जो कि यहाँ स्वाभाविक-स्वैच्छिक रूप से संपर्क भाषा मानी जाती है, शोध-कार्य किया जाना यथेष्ट है। अरुणाचल प्रदेश की जनभाषाएँ लोक-तत्त्व से संपृक्त हैं, किंतु इनकी अभिव्यक्ति का आधार लिखित न हो कर वाचिक मात्र है। लिखित साहित्य न होने का मुख्य कारण अरुणाचली भाषा की अपनी लिपि का नहीं होना है। इस दिशा में बहुतेरे प्रयास किए जा रहे हैं, लेकिन अभी तक कोई एक भाषा

अरुणाचली लिपि के रूप में स्वीकार नहीं की गई हैं। ऐसे में इस प्रदेश के लोगों को अंग्रेजी, हिंदी, असमिया अथवा बांग्ला भाषा की लिपि पर निर्भर होना पड़ता है। अकादमिक दृष्टि से महत्त्वपूर्ण शोध-कार्यों के लिए भी इन्हीं भाषाओं में काम किया जाना एकमात्र विकल्प है। यद्यपि अंतरसांस्कृतिक आदान-प्रदान में बढ़ोत्तरी के कारण जनजातीय संस्कृति, दर्शन, मिथक, परंपरा, मान्यता, लोक-सुभाषित, लोक-विश्वास इत्यादि से जुड़े पहलुओं की ओर पूरी दुनिया का ध्यान गया है। वेरियर आल्विन ने अपनी अथक मेहनत और अनुसंधानवृत्ति के नाते अरुणाचली मिथों को लेकर महत्त्वपूर्ण कार्य किये हैं। तब से अब की स्थिति को देखें, तो शोध-अध्ययन की माँग एवं विस्तार की गुंजाइश काफी बढ़ चुकी है। वैज्ञानिक प्रवृत्ति आधारित नवीन शोध-प्रणाली और तकनीकी उपयोगिता ने लोक-साहित्य के सहेजे-संजोये जाने की ओर ध्यान खींचा है। लोक-साहित्य केंद्रित सामयिक अनुसंधान-क्षेत्रों का पक्ष इसलिए भी विचारणीय है, क्योंकि जनजातीय भाषाओं की बहुलता के साथ उनके विलुप्ति का संकट गहराता जा रहा है, तो परिस्थितियाँ उत्तरोत्तर गंभीर होती दिखाई दे रही हैं।

आदिवासी जनभाषाओं पर विलुप्ति का संकट जिस तरह तेजी से मंडरा रहा है, वह चिंताजनक है। यद्यपि सामुदायिक रूप से चेतस व संगठित जनजातीय विद्वानों द्वारा इस दिशा में अथक मेहनत एवं प्रयास किया जा रहा है जिसमें जनजातीय भाषा की लिपि विकसित करना भी एक है। इस तरह के प्रयत्न से अरुणाचल की जनभाषाओं को बचाया जाना संभव है, लेकिन इस दिशा में कई तरह के आर्थिक स्रोत व सहायता की भी आवश्यकता पड़ती है जिसके अभाव में स्थानीय रूप से उत्साही लोग अपने भाषा-संरक्षण की मुहिम और उसे अद्यतन किए जाने के प्रयास को लंबे दिनों तक जारी नहीं रख पाते हैं। अतएव, हिंदी भाषा एक कारगर उपाय सिद्ध हो सकती है यदि इस भाषा में अरुणाचल की वाचिक परंपरा के मौखिक साहित्य को बचाने एवं संजोने का ठोस उपक्रम किया जा सके। हाल के दिनों में आगरा स्थित केंद्रीय हिंदी संस्थान ने बड़ा काम किया है। इधर के कुछ वर्षों में अरुणाचल प्रदेश की प्रमुख जनजातियों पर केंद्रित अध्येता-कोश तैयार किया है। जनभाषाओं की शब्दशक्ति एवं शब्द-संपदा को स्थायित्व प्रदान करने में इस तरह के कार्य प्रशंसनीय हैं। इसी तरह अरुणाचल प्रदेश की विभिन्न जनजातियों के लोक-साहित्य को सामने लाने तथा उन्हें प्रकाशित करने का काम केंद्रीय हिंदी संस्थान ने प्रमुखता से किया है, जो अत्यंत महनीय कार्य है। अरुणाचल प्रदेश के पूर्व राज्यपाल रह चुके चिन्तक, विचारक एवं लेखक माता प्रसाद ने 'मनोरम भूमि अरुणाचल' किताब लिखी है, तो डॉ. रमण शाण्डिल्य द्वारा प्रथमतः प्रकाशित पत्रिका 'सांग्पो' का नाम उल्लेखनीय है। डॉ. रमण के 'अरुण नागरी' पत्रिका के माध्यम से इस प्रदेश में लोक-साहित्य की दशा-दिशा एवं हाल-स्थिति का पता चल जाता है। अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में प्राध्यापक प्रो. श्याम शंकर सिंह लिखित पुस्तक 'अरुणाचल प्रदेश में हिंदी : अध्ययन के नये आयाम' बेहद उपयोगी है, जो इस राज्य की लिपियों की समस्या और ध्वनिगत उच्चारण संबंधी कठिनाइयों पर विस्तार से प्रकाश डालती है। यह पुस्तक इस प्रदेश में जनजातीय भाषा की लिपि विकसित किए जाने वाले प्रयासों का भी उल्लेख करती है, तो यहाँ पहले से मौजूद कुछ लिपियों के बाबत जरूरी बातें रखती है। कई सारे तुलनात्मक अध्ययन के बीच लिपि-प्रसंग पर यह पुस्तक जरूरी तथ्य या कि सूत्र छोड़ती है। इस प्रदेश की भाषिक संस्कृति को समझने की दिशा में जो 'टूल्स' यहाँ उपलब्ध है, उस पर आगे भी गंभीर विचार एवं अनुसंधान की जरूरत है।

वैसे भी मीडिया से कई सारी चीजें छूटने का कारण अरुणाचल प्रदेश की अपनी कोई राजकीय लिपि का नहीं होना भी है। अरुणाचल प्रदेश का लोक-साहित्य लिपि नहीं होने के कारण अपनी कोई स्वतंत्र अथवा मानक भाषा विकसित नहीं कर सका है। ऐसे में लोक-साहित्य के विस्मृत या कि विलुप्त हो जाने का संकट गहराता दिख रहा है। इस खतरे का बचाव मीडिया या कि आधुनिक संचार माध्यमों द्वारा आसानी से हो सकता है, बशर्ते उनकी दृष्टि खुली तथा उत्तर-पूर्व के राज्यों को लेकर उनकी चिंता और सोच समदर्शी और सहृदयी हो। आधुनिक संचार-माध्यमों में अरुणाचली लोक-साहित्य को लेकर 'रियल टाइम स्पेस' बनाने की जरूरत है, ताकि देश में इस प्रदेश को लेकर किसी भी प्रकार का अपरिचय या अजनबीपन का भाव-विचार न रहे। अरुणाचल प्रदेश की भावी पीढ़ी, विद्यालयी बच्चों, महाविद्यालयी किशोरों, विश्वविद्यालयी शोधार्थियों तक यहाँ का लोक-साहित्य अधिकाधिक मात्रा में किस प्रकार पहुँच सकता है। यह प्रश्न विचारणीय है, जिसे आधुनिक जनमाध्यमों या कि संचार साधनों द्वारा प्रमुखता से पूरा किया जा सकता है। इस दिशा में जनसंचार माध्यमों, मीडिया की भूमिका तथा योगदान सर्वप्रमुख है; उसके लेकर मीडिया से जुड़े लोगों को भी प्रशिक्षित तथा संवेदनशील बनाने की आवश्यकता है। मीडियाकर्मियों को यहाँ के लेखकों/रचनाकारों द्वारा लिखित-प्रकाशित साहित्य से परिचित कराने के अलावे उनसे इस बारे में जनमाध्यमों द्वारा लोगों को पहुँचाने हेतु प्रेरित किया जाना जरूरी है, जिससे यहाँ की परंपरा, संस्कृति, मूल्य, दर्शन, इतिहास, कला, साहित्य, संगीत, हस्तकला, काश्तकारी, स्थापत्य, खेती-किसानी एवं बागवानी विधि, पहनावा-ओढ़ावा, खान-पान आदि को लेकर वे अन्य दूसरे लोगों को बता सकेंगे। मीडिया के जानकार और अनुभवी लोग यदि लोक-साहित्य के महत्त्व को समझना शुरू कर देते हैं तो आमजन स्वयं इन माध्यमों से प्राप्त सूचना, शिक्षा एवं मनोरंजन से खुद-ब-खुद नियंत्रित तथा निर्देशित आचरण या कि अनुषंगी व्यवहार प्रदर्शित करने लगता है। मीडिया की भूमिका 'ओपीनियन लीडर' की है, वह लोक-साहित्य को महत्त्व प्रदान कर प्रदेश का ही नहीं समूचे देश के मानस के उत्तम कल्याण एवं सर्वोत्तम जीवन का मार्ग प्रशस्त कर सकता है। इस सन्दर्भ में यह विचारणीय है कि अरुणाचली लोक-साहित्य को सिर्फ पुस्तक संस्कृति द्वारा विलुप्ति या कि संकटग्रस्त होने से नहीं बचाया जा सकता है। आज मीडिया आधारित बहुविध नवमाध्यमों से लोक-साहित्य को जोड़ा जाना प्राथमिक है, जिसमें नई पीढ़ी की संलग्नता, सक्रिय भागीदारी और अभिरुचि सर्वाधिक मात्रा में दिखाई देती है। यदि अरुणाचली लोक-साहित्य को कार्टून, कैरीकेचर, पिक्टोग्राफी, स्केच, कॉमिक्स, एनिमेशन आदि के माध्यम से रोचक तथा अभिव्यंजनायुक्त बनाया जाए, तो यह यहाँ के लोक-साहित्य को अरुणाचल प्रदेश की युवा और किशोर होती पीढ़ी के लिए अत्यंत लाभप्रद सिद्ध होगा।

(**लेखकीय परिचय:** *लेखक राजीव गाँधी विश्वविद्यालय, रोनो हिल्स, दोईमुख, अरुणाचल प्रदेश के हिंदी विभाग में सहायक प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।* *नोट: यह शोध आलेख भारतीय समाज विज्ञान अनुसंधान परिषद् के 'इम्पैक्टफुल रिसर्च' (इम्प्रेस) योजना के तहत 'अरुणाचली लोक साहित्य और मीडिया: अंत:संबंध एवं अंत:क्रिया' विषयक शोध परियोजना के अंतर्गत प्रकाशन हेतु तैयार किया गया है।)*

पूर्वोत्तर भारत का हिंदी सिनेमा

अतुल वैभव

कला मनोरंजन के अन्य माध्यमों की तरह सिनेमा का इतिहास भी अधिक पुराना नहीं है। अगर फिल्मों के उद्भव तथा विकास पर प्रकाश डालें तब पाते हैं कि इसका संबंध कहीं न कहीं साहित्य से ही रहा है। "सिनेमा अपने प्रारंभिक दौर में साहित्य की विभिन्न विधाओं को आधार बना कर अपनी यात्रा शुरू किया।"[1] साहित्यिक विधा रंगमंच अर्थात् नाटक को पर्दे पर रूपांतरित करके दिखाने की कला से ही सिनेमा का जन्म हुआ है। वर्तमान समय में मनुष्य के लिए मनोरंजन के अनगिनत साधन होने के बावजूद सिनेमा की उपयोगिता या प्रासंगिकता इसलिए बनी हुई है क्योंकि यह कम से कम समय में ही ज्यादा से ज्यादा लोगों (दर्शकों) को प्रभावित करता है। "कहना गलत न होगा कि सिनेमा, साहित्य से अधिक प्रभावशाली और आम जनता तक सरलता से पहुंचने वाला माध्यम है।"[2] साहित्य जहां पढ़े-लिखे लोगों को ही अपने से जोड़ पाता है वहीं सिनेमा का जुड़ाव सम्पूर्ण जनमानस से होता है। सिनेमा दृश्य के साथ-साथ श्रव्य भी है और इसकी यही विशेषता है जिससे लोग आकर्षित होते हैं।

सिनेमा का इतिहास सौ वर्षों से अधिक का हो चुका है। भारतीय सिनेमा ने इन सौ वर्षों में अनेक विषम परिस्थितियों का सामना किया है। "भारत की 20 से भी अधिक भाषाओं में, प्रति वर्ष लगभग 1500-2000 तक फिल्में बनती हैं। अकेले हिंदी में ही लगभग 1 हज़ार फिल्में हर वर्ष बन रही हैं।"[3] 'देश में फिल्मों से होने वाली आय में हिंदी फिल्मों का योगदान 43 प्रतिशत है तो वहीं 57 प्रतिशत आय में अन्य क्षेत्रीय भाषाओं का योगदान है। अकेले हॉलीवुड में जितनी फिल्में बनती हैं उसके दो गुना सिर्फ हिंदी भाषा में बनती हैं।

इस शोध आलेख में हिंदी सिनेमा के इसी महत्व को पूर्वोत्तर भारत के संदर्भ में रखने का प्रयास किया गया है। आज हिंदी सिनेमा का विस्तार सिर्फ हिंदी भाषी समाज तक ही सीमित नहीं है बल्कि दक्षिण, पश्चिम और पूर्वोत्तर भारत के लोगों में भी प्रचलित हो रहा है, यहाँ के सिनेमा घरों में तो हिंदी फिल्में प्रदर्शित होती ही हैं साथ ही अब ऑनलाइन माध्यमों के द्वारा भी बड़ी संख्या में पूर्वोत्तर भारत के लोग हिंदी सिनेमा को पसंद कर रहे हैं/से जुड़ रहे हैं। एक जिज्ञासा मन में बार-बार आती है कि हिंदी फिल्मों में उत्तर भारत, दक्षिण भारत, पश्चिम भारत, मध्य भारत तथा पूर्वी भारत के कलाकार या पृष्ठभूमि तो बहुतायत देखने को मिलती है, लेकिन एक सिनेमा प्रेमी के नाते मेरे जेहन में यह बात आती है कि क्या पूर्वोत्तर भारत जो देश के 8 प्रमुख राज्यों, दर्जनों जनजातियों, दर्जनों भाषाओं, बोलियों एवं संस्कृतियों का महासागर है, उसका हिंदी सिनेमा में योगदान है भी या नहीं? या फिर हिंदी सिनेमा में पूर्वोत्तर भारत किस प्रकार से आया है? और यह ऐसी जिज्ञासा है जिसका उत्तर ढूँढ़ना अति आवश्यक है। आज हिंदी सिनेमा और पूर्वोत्तर भारत को लेकर अनेक ऐसे प्रश्न हैं।

क्या हिंदी फिल्मों में पूर्वोत्तर भारत के कलाकार होते हैं? क्या पूर्वोत्तर भारत के कलाकार को हिंदी सिनेमा में काम मिलता है? क्या हिंदी सिनेमा का विस्तार पूर्वोत्तर भारत में हुआ है? जिनका उत्तर खोजना अति आवश्यक है।

पूर्वोत्तर भारत के सैकड़ों सिनेमा घरों में प्रति वर्ष दर्जनों हिंदी फिल्में प्रदर्शित होती हैं। करोड़ों का व्यापार एवं मुनाफा हिंदी फिल्मों को इन राज्यों से होता है। पर क्या बॉलीवुड में नॉर्थ ईस्ट के कलाकार, निर्देशक, गायक, निर्माता आदि का उसी अनुपात में योगदान है? पत्रलेखा पॉल ने इंडियन एक्सप्रेस को दिये इंटरव्यू में पत्रकार के प्रश्न- हिंदी सिनेमा में नॉर्थ ईस्ट इंडिया के कलाकारों की संख्या इतनी कम क्यों है? क्या किसी नॉर्थ-ईस्ट के कलाकार का हिंदी सिनेमा में इंट्री करना बहुत मुश्किल है? का उत्तर देते हुए कहती हैं- "हाँ यह बहुत मुश्किल है क्योंकि जो पटकथा लिखी जाती है उसमें उनके लिए कोई रोल होता ही नहीं या बहुत कम होता है। लेखक के दिमाग में पहले से ही एक चेहरा होता है, इस वजह से वो चंडीगढ़, दिल्ली या फिर पंजाब की लड़की को रोल देते हैं। अगर निर्माता किसी फिल्म में दक्षिण भारतीय हैं तो वो ऐसे कलाकार को लेते हैं जो या तो दक्षिण भारतीय हो या फिर वैसी दिखने में हो। लेकिन नॉर्थ ईस्ट के कलाकारों की शारीरिक बुनावट अलग है और फिर नॉर्थ ईस्ट के लेखक बहुत कम हैं, जो कि नॉर्थ ईस्ट को केंद्र में रख कर पटकथा लिख सकें। मेरी समझ से यह इसलिए नहीं है कि वहाँ के लोगों को अवसर नहीं मिलता, बल्कि इसलिए है कि कहानी में वैसा कोई पात्र ही नहीं होता है।"[4] पत्रलेखा पॉल कि बातों से तो यही प्रतीत होता है कि क्या बॉलीवुड सिर्फ मुनाफे के बारे में सोचता है? एक तरफ तो हमें बताया, पढ़ाया जाता है कि किसी भी भाषा के सिनेमा में वहाँ की संस्कृति के विविध पक्ष उभर कर आते हैं। भारत जैसे विविधतापूर्ण राष्ट्र में तो यह और भी अधिक महत्वपूर्ण हो जाता है। क्या नॉर्थ ईस्ट के लोग भारतीय संस्कृति का हिस्सा नहीं हैं? क्या हिंदी फिल्में सिर्फ हिंदी भाषी राज्यों के लोगों/दर्शकों के लिए बनाई जाती हैं? क्या हिंदी सिनेमा में काम करने के लिए पंजाब, महाराष्ट्र, दिल्ली, यूपी, बंगाल या बिहार का होना महत्वपूर्ण है? इस आलेख में हिंदी सिनेमा का इसी दृष्टि से अध्यन किया है और जानने की कोशिश की है कि हिंदी सिनेमा जगत में कौन-कौन से कलाकार हैं जिनका ताल्लुक पूर्वोत्तर भारत से है।

हिंदी सिनेमा जगत में पूर्वोत्तर भारत से संबंध रखने वाले कलाकारों में सबसे पहला नाम आता है 'डैनी डेन्जोंगपा' का। हिंदी सिनेमा में 'अमरेश पूरी' के बाद अगर कोई दूसरा खालयनक हुआ है जो दर्शकों के बीच में लोकप्रिय रहा हो तो वो डैनी हैं। शोले में गब्बर सिंह, मिस्टर इंडिया में मोगैंबो, अग्निपथ में 'कांचाचीना' जैसे पात्रों (खलनायक) अभिनेता से अधिक लोकप्रियता हासिल हुई है। खलनायक के बिना भारतीय फिल्में या तो बनती नहीं है या दर्शकों को पसंद नहीं आती हैं (कुछ फिल्मों को छोड़ कर)। "लगभग 190 हिंदी फिल्मों में काम कर चुके डैनी ने नेपाली, बांग्ला, तमिल और तेलगु के साथ ही हॉलीवुड में 'ब्रैड पिट' के साथ 'सेवेन इयर्स इन तिब्बत' में अभिनय किया है।" अपने अभिनय के जादू से दर्शकों के दिलों में राज करने वाले डैनी 2003 में पद्म श्री पुरस्कार से नवाजे जा चुके हैं। "हिंदी फिल्मों के दर्शक भले ही उन्हें खलनायक समझते हों, लेकिन उससे भी पहले वे एक गायक हैं, चित्रकार और लेखक हैं। संगीतकार हैं। माली

हैं। पर्यावरण के संरक्षक हैं।"[5] सिक्किम में जन्में डैनी ने अपने अभिनय से हिंदी सिनेमा के साथ-साथ पूर्वोत्तर भारत का भी मान बढ़ाया है। उन्होंने खलनायिकी को एक नया आयाम दिया। अपने शुरुआती दिनों में डैनी ने फिल्मों में सकारात्मक भूमिकाओं में अभिनय किया था। इनकी पहली हिंदी फिल्म मेरे अपने (1971) थी। डैनी ने द बर्निंग ट्रेन (1980), बंदिश (1980), बुलंदी (1981), गंगा मेरी माँ (1983), धर्म और कानून (1984), सनम बेवफा (1991), खुदा गवाह (1992), क्रांतिवीर (1994), चाइना गेट (1998), लज्जा (2001), जय हो (2014), मणिकर्णिका (2019) आदि फिल्मों में अपने अभिनय से दर्शकों का भरपूर मनोरंजन किया है।

डैनी के बाद पूर्वोत्तर भारत का जो दूसरा सर्वाधिक चर्चित नाम हिंदी सिनेमा में आता है वह 'भारत रत्न भूपेन हजारिका' का है। हिंदी भाषी क्षेत्रों में पूर्वोत्तर भारत को लेकर लोगों में ज्ञान की कमी है या फिर लोग वहाँ के विषय में जानना ही नहीं चाहते हैं। अमूमन उत्तर भारतीय लोगों को शिलांग, नोंगफो, आइजोल, लुंगलेई, लॉन्गतलाई, इम्फाल, तबांग आदि का नाम लेने पर वह पूछते हैं कि यह कहाँ है? परंतु धीरे-धीरे ही सहीयह धारणा अब बदल रही है। अब सभी शिलांग, गंगटोक, इम्फ़ाल, ईटानगर, आइजोल और अगरतला को जानने लगे हैं और अब सब मेघालय, मिजोरम, सिक्किम को भी जानने लगे हैं, स्थितियाँ बदल रही है। देश की राजनीति हो या अन्य क्षेत्र अब पूर्वोत्तर के लोगों की भी भागीदारी भी तेजी से बढ़ रही है। देश के अन्य हिस्सों से भी लोग पूर्वोत्तर भारत में पर्यटक बनकर ही सही घूमने जाने लगे हैं और वहाँ की संस्कृति से वाकिफ़ होने लगे हैं।

अमूमन उत्तर भारत में भूपेन हजारिका को लोग उसी प्रकार जानते हैं, जिस प्रकार गुवाहाटी को (नॉर्थ ईस्ट का मतलब गुवाहाटी उसी प्रकार नॉर्थ ईस्ट के कलाकारों की बात होती है तब सिर्फ भूपेन दा जैसे गिने चुने नाम)। यहाँ बताना महत्वपूर्ण है कि भारत से बाहर भूपेन हजारिका पूर्वोत्तर भारत के आइकॉन के रूप में जाने जाते हैं। "वे पूर्वोत्तर भारत के सर्वाधिक प्रसिद्ध सांस्कृतिक आइकॉन हैं।"[6] यहाँ उनकी तुलना अन्य किसी भी व्यक्ति से करना उचित नहीं होगा। हाँ इतना अवश्य कहा जा सकता है कि असमिया भाषा, संस्कृति, सिनेमा, संगीत के लिए भूपेन हजारिका, असम के लोगों के लिए वाकई में एक पहचान हैं। असमिया ही नहीं, बल्कि हिंदी सिनेमा जगत मेंभी वे एक गायक, संगीतकार औरफिल्म निर्माता-निर्देशक के रूप में विख्यात हैं। 'मेरा धर्म मेरी माँ' सन् 1976 ई. में आई हिंदी फिल्म का निर्देशन उन्होंने ही किया था। सन् 1986 ई. में आयी हिंदी फिल्म 'एक पल' में अभिनय के साथ-साथ निर्माता, गायक और संगीतकार की भूमिका में भी वही थे। भूपेन दा ने दर्जनों हिंदी फिल्मों में किसी न किसी रूप में अपना योगदान दिया है। भारतरत्न, पद्मश्री, पद्मभूषण, पद्म विभूषण, दादा साहब फाल्के पुरस्कार, राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार, संगीत अकादमी पुरस्कार सहित लगभग 100 से भी अधिक पुरस्कार पाने वाले भूपेन हजारिका सही मायानों में पूर्वोत्तर भारत के आइकॉन के रूप में हिंदी सिनेमा में याद किए जाते रहेंगे। हिंदी सिनेमा में रुचि रखने वाले या फिर गंभीरता से रुचि रखने वाला शायद ही कोई व्यक्ति डैनी और फिर भूपेन हजारिका का नाम न जान रहा होगा।

2017 ई. में पिंक फिल्म आई थी जिसकी देश-विदेश में खूब चर्चा हुई। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार सहित कई पुरस्कार इस फिल्म को मिले। इस फिल्म की मुख्य भूमिका में अमिताभ बच्चन, तापसी पन्नु, कृति कुल्हारी के साथ 'आन्द्रेया तारियांग' थीं। आन्द्रेया तारियांग जिनका जन्म शिलांग में हुआ है। नॉर्थ ईस्ट के लोगों को तो शायद यह पता होगा पर, भारत के अन्य किसी भी दूसरे राज्य के लोगों को शायद ही यह पता होगा कि आन्द्रेया शिलांग की रहने वाली हैं और अगर यह पता भी होगा की शिलांग की हैं तो फिर उनके मन में यह विचार आता है कि ये तो बाहर की हैं, मतलब भारतीय नहीं है। ऐसा मैंने इस फिल्म को देखने के दौरान अनुभव भी किया कि किस प्रकार से इस फिल्म देखने के दौरान मेरे दिल्ली के एक मित्र ने सिनेमा हॉल में ही कह डाला- 'ये जो विदेशी है न इसकी हिंदी बहुत अच्छी है, लग ही नहीं रहा कि विदेश की है।' तब मैं सन्न रह गया कि उसने फेस देख कर ही यह जज कर लिया कि वह भारत की नहीं है। वैसे लोगों की इस मानसिकता के लिए यहाँ की शिक्षा व्यवस्था और राजनेताही जिम्मेदार हैं। इस फिल्म में भी इसी यथार्थ को दिखाया गया है कि किस प्रकार पूर्वोत्तर भारत के लोगों के साथ दिल्ली (जो कि देश की राजधानी है, जहां देश के सभी नागरिकों का एक समान अधिकार होना चाहिए) में उनके साथ अभद्रतापूर्ण व्यवहार किया जाता है।

2016 ई. में रितिक रोशन अभिनीत फिल्म मोहन जोदारो (2016) आई जिसमें असम के रहने वाले 'दीगांता हजारिका' के अभिनय की भी खूब तारीफ हुई। हजारिका असम के नगाँव जिले के रहने वाले हैं। नागालैंड के अभिनेता 'ज़्होखोई चुजहों' ने फोर्स-2 में अभिनय का जलवा दिखाया है। उन्होंने इससे पहले सुशांत सिंह राजपूत अभिनीत फिल्म ब्योमकेश बक्शी (2015) में भी अभिनय किया है। द्वितीय विश्वयुद्ध की एक घटना को केंद्र में रख कर बनी फिल्म रंगून (2017) में मणिपुर की 'लिन लाइशरम' ने अपने अभिनय से दर्शकों को प्रभावित किया। साथ ही फिल्म उमरिका (2015) में भी इन्होंने शानदार अभिनय किया है। अरुणाचल प्रदेश के अभिनेता 'रिकेन ड्गोंले' रणवीर कपूर के साथ जग्गा जासूस (2017) में शानदार अभिनय कर के दिखा चुके हैं। अरुणाचल प्रदेश की ही एक अभिनेत्री ने मोहेनजोदारो में अपने अभिनय के जादू से हिन्दी सिनेमा के दर्शकों को काफी प्रभावित किया है।

पूर्वोत्तर भारत के कलाकार अपने अभिनय के जादू से हिंदी सिनेमा को ही मजबूती प्रदान नहीं कर रहे हैं बल्कि हिंदी सिनेमा में एक नई परंपरा को भी जन्म दे रहे हैं। हिंदी फिल्में, पूर्वोत्तर में जितनी तीव्र गति से विस्तार पा रही हैं उसी गति से वहाँ हिंदी भाषा भी मजबूत होती जा रही है। पूर्वोत्तर के लोगों का हिंदी सिनेमा जगत में अभिनय करना देश को एकजुट करने में भी सहायक सिद्ध हो सकता है। देश की असली पहचान जिस अनेकता में एकता की बात की जाती है उसको हिंदी सिनेमा आगे बढ़ाने या कह सकते हैं कि विस्तार देने का काम कर रहा है। आखिरकार क्यों पूर्वोत्तर भारत के लोग अपने आपको शेष भारत से कटा हुआ महसूस करते हैं और अलग रहना पसंद करते हैं? इसका सबसे प्रमुख कारण यही है कि उनकी अपनी संस्कृति, वेश-भूषा, भाषा-बोली, खान-पान, आचार-विचार, रहन-सहन है जो भारत के अन्य प्रान्तों से अमूमन भिन्न है, जिससे वहाँ के लोग मुख्यधारा से जुड़ नहीं पाते हैं और न ही मुख्यधारा के लोग उन्हें खुद से

जोड़ पाते हैं। यहाँ मुख्य धारा कहने का तात्पर्य है हिंदी भाषी क्षेत्रों से या देश के वे राज्य जहां आधारभूत संरचनाओं का विकास हो रहा है या फिर जहां के लोग राष्ट्रीय राजनीति में सक्रियता से हिस्सा लेते हैं (महाराष्ट्र, गुजरात, पंजाब या फिर दक्षिण भारत के राज्य)। देश के प्रमुख बड़े-बड़े नेता इन्हीं राज्यों से रहे हैं और उनका ध्यान सिर्फ उनके अपने क्षेत्र विशेष के विकास तक ही सीमित रहा है जिससे कि देश के अन्य क्षेत्र खास करके पूर्वोत्तर भारत पिछड़ता चला गया। पूर्वोत्तर भारत की हमेशा से ही शेष भारतियों के द्वारा राजनीतिक, आर्थिक और सांस्कृतिक रूप से उपेक्षा की जाती रही है। "शेष भारत के लोग पूर्वोत्तर को हमेशा उपेक्षा की दृष्टि से देखते हैं। अधिकाधिक लोगों में पूर्वोत्तर के बारे में जानने-परखने की उत्सुकता नहीं है, जिसके कारण पूर्वोत्तर को शेष भारत से उपेक्षित होकर रहना पड़ता है।"[7]

आज तक पूर्वोत्तर भारत में ठीक से यातायात के साधन तक विकसित नहीं हो पाये हैं जिससे वे देश के अन्य हिस्सों से कम से कम समय में जुड़ सकें। उन्हें अगर देश के अन्य हिस्सों में आना हो तो बहुत सारी कठिनाइयों का सामना करना पड़ता है। सरकारी नौकरी हो या राष्ट्रीय राजनीति उनकी पहुँच लगभग न के बराबर रही है, इस वजह से वे मुख्यधारा से कटे रहे हैं। न तो उत्तर, दक्षिण, पश्चिम भारतीय उनके साथ नजदीकी और अपनत्व का भाव रखते हैं और न ही वे (पूर्वोत्तर के लोग) उनके साथ ऐसा संबंध रख पाते हैं। हम आए दिन देश के विभिन्न हिस्सों से आने वाली ऐसी अनेक घटनाएँ सुनते, पढ़ते और देखते हैं जिसमें पूर्वोत्तर भारत के लोगों के साथ दुर्व्यवहार या फिर अभद्र व्यवहार किया जाता है। दिल्ली, मुंबई, बेंगलुरु, पुणे आदि देश के बड़े शहर हैं जहां, शिक्षा, नौकरी तथा व्यापार हेतु पूर्वोत्तर भारत के लोग बड़ी संख्या में रहते हैं और उन्हें वहाँ अनेक प्रकार से प्रताड़ित होना पड़ता है। राष्ट्रीय फिल्म पुरस्कार जीत चुके फिल्म निर्माता जहनु बरुआ ने कहा है कि "आजादी के बाद से ही शेष भारत के लोगा नॉर्थ ईस्ट के लोगों को अपने से अलग समझते रहे हैं। बॉर्डर के नजदीक हमेशा डर का माहौल रहता है। वे उस क्षेत्र से कोई भी सूचना लेना-देना नहीं चाहते। संयोग से अब इस स्थिति में बदलाव हो रहा है।"[8]

हिंदी सिनेमा एक सशक्त साधन (माध्यम और प्लेटफॉर्म) है जिससे कि इस दूरी (पूर्वोत्तर भारत और शेष भारत के बीच) को पाटा जा सकता है या पाटा जा रहा है। हिंदी फिल्में पूर्वोत्तर भारत के लगभग आठो राज्यों के लोगों के बीच अब खासी पसंद की जा रही है। पहले कुछ सीमित क्षेत्रों या लोगों तक इसकी पहुँच थी और वह भी हिंदी फिल्मों के गाने ही परंतु आज फिल्में भी यहाँ की अधिसंख्य जनता के द्वारा पसंद की जा रही हैं। अगर हिंदी सिनेमा में यहाँ के लोगों का योगदान बढ़ेगा तो यह बहुत ही क्रांतिकारी कदम माना जाएगा। किसी भी भाषा के साहित्य का अध्ययन करने के लिए उस भाषा विशेष की अच्छी जानकारी होनी चाहिए जबकि फिल्मों को समझने के लिए ऐसा नहीं है। हिंदी फिल्मों ने जिस प्रकार से पूरे हिंदुस्तान को एकता के सूत्र में बांधने का कार्य किया है वह बहुत ही महत्वपूर्ण है। पूर्वोत्तर भारत के लोगों का हिंदी सिनेमा में अभिनय करने से वहाँ के लोगों का जुड़ाव हिंदी सिनेमा से और अधिक होने लगा है। ऐसा होने से उनके मन में जो एक अलगावादी नजरिया बना हुआ है उसमें भी बदलाव आएगा और वे भी खुद को भारत से कटा हुआ नहीं

बल्कि जुड़ा हुआ महसूस करेंगे। साथ ही शेष भारत के लोगों के लिए भी पूर्वोत्तर भारत के लोगों से अपनत्व बढ़ेगा तथा हिंदी सिनेमा का भी विस्तार होगा।

हिंदी सिनेमा में काम करने वाले पूर्वोत्तर भारत के कुछ ऐसे भी कलाकार हैं जिनका अभिनय उत्कृष्ट रहा है, परंतु किसी को यह नहीं पता है कि वे कलाकार हमारे देश के ही हैं। ऐसे ही एक कलाकार इम्फाल, मणिपुर के हैं जिनका नाम है 'बिजौ थाहड्ग्जम'। इन्होंने रॉबिनहूड के पोते (2016), 3 स्मोकिंग बैरेल्स (2017), कर्मा कैफे (2019), पेनाल्टी (2019) और अजय देवगन अभिनीत फिल्म शिवाय (2016) में अभिनय किया है। पेनाल्टी फिल्म में मणिपुर के ही एक और अभिनेता 'लुकराम स्मील' ने भी अभिनय किया है। अपनी खूबसूरती के लिए फेमस 'गीतांजली थापा' सिक्किम की रहने वाली हैं। 2013 में आयी फिल्म मानसून शूटआउट के लिए उन्हें नेशनल फिल्म अवार्ड दिया गया। 2017 में उनकी दो फिल्में आई थीं- पहली फिल्म ट्रैप्ड और दूसरी इमरान हाशमी के साथ टाइगर्स। रीमा देबनाथ अगरतला की रहने वाली हैं। इन्होंने कई हिंदी फिल्मों में कार्य किया है। सलमान खान अभिनीत बॉडीगार्ड (2011), पीके (2014), मछली जल की रानी है (2014), वेलकम बैक (2015) आदि कई फिल्मों में अभिनय किया।

असम के 'केनी बसुमतरी' ने यारा (2020) फिल्म में अभिनय किया है। असम के ही 'मॉनसून बरुआ' ने चाईनिज भसड़ में अभिनय किया है। असम के 'सिद्धार्थ बोको' ने भी 3 स्मोकिंग बैरेल्स (2017) में अपने अभिनय के जादू से दर्शकों का मन मोह लिया था। असम की ही रहने वाली अभिनेत्री 'परिणीता बोर ठाकुर' ने फोर्स (2011), चलो दिल्ली (2011) और कुर्बान (2009) में अपने अभिनय के जलवे बिखेरे हैं। हिंदी फिल्म सिटिलाइट (2014) में शिलांग की रहने वाली पत्रलेखा पॉल ने जबर्दस्त अभिनय किया है। अरुणाचल प्रदेश की अभिनेत्री 'देवी दोलो' ने भी मोहेनजोदारो में अपने अभिनय से पूर्वोत्तर भारत का मान सम्मान बढ़ाया है। असम के गोलपाड़ा जिले के 'आदिल हुसैन' को आप सभी ने एक नहीं बल्कि कइयों हिंदी फिल्मों में देखा होगा, परंतु आप में से बहुत कम लोगों को पहले से यह जानकारी रही होगी कि आदिल हुसैन असम के रहने वाले हैं। दर्जनों राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित आदिल हुसैन ने सिर्फ हिंदी सिनेमा में ही अपनी प्रतिभा का प्रदर्शन नहीं किया है, बल्कि हॉलीवुड की फिल्म, 'द रिलाक्टेंट फाउंडमेंट लिस्ट'(2012) और 'लाइफ ऑफ पाइ (2012)' में अपने अभिनय का जादू दिखा चुके हैं। इन्होंने हिंदी के अलावा, असमिया, बांग्ला, तमिल, मराठी, मलयालम और फ्रेंच फिल्मों में भी अपने अभिनय का जादू बिखेरा है। पूर्वोत्तर भारत क्या बल्कि पूरे हिंदुस्तान में ऐसा बहुत कम कलाकार या अभिनेता होगा जिसने इतनी भाषाओं के सिनेमा में काम किया हो। इनकी कुछ प्रमुख हिंदी फिल्में जिसमें इन्होंने अभिनय किया है, कमीने (2009), इश्किया (2010), एजेंट विनोद (2012), इंग्लिश विंग्लिश (2012), लुटेरा (2013), द एक्सपोज (2014), पार्च्ड (2015), फोर्स-2 (2016), कमांडो-2 (2017) जैसी सुपरहिट फिल्मों में अभिनय किया है। 2018 में इनकी एक और बड़ी फिल्म अक्षय कुमार और रजनीकान्त अभिनीत 2.0 (2018) आयी थी। अन्य कई हिंदी फिल्मों में आदिल हुसैन अभिनय कर चुके हैं तो वहीं दर्जनों शॉर्ट फिल्में भी कर चुके हैं। इनके विषय में यह

भी जानना आवश्यक है कि इन्होंने कई वर्षों तक थियेटर में भी अभिनय किया है साथ ही स्टैंडअप कॉमेडियन भी रह चुके हैं। 2017 में राष्ट्रीय पुरस्कार तथा 2018 में आमंदा पुरस्कार से पुरस्कृत हो चुके हैं।

अभिनय के अलावे पूर्वोत्तर भारत के कुछ ऐसे कलाकार भी रहे हैं जिन्होंने अपनी कला के जादू से सिनेमा प्रेमियों का मन मोह लिया है। 'पाप ऑन' और 'जुबीन गर्ग' दो ऐसे नाम हैं जिनके गाने आज हर एक संगीत प्रेमी गुनगुनाते मिल जाते हैं। परंतु बहुत कम को पता होगा कि ये दोनों गायक असम के रहने वाले हैं। पाप ऑन का गया हुआ गाना 'बुलेया' सुल्तान (2016) फिल्म का बहुत ही हिट हुआ तो वहीं जुबीन गर्ग का गाया हुआ गैंगस्टर (2006) फिल्म का गाना या अली आज भी उतना ही पसंद किया जाता है। इन दोनों ने कई हिंदी फिल्मों के गाने गाये हैं। इनकी दीवानीगी का अंदाजा इसी से लगाया जा सकता है कि आज इन दोनों के बड़े-बड़े स्टेज शो हिंदी भाषी जनता के बीच खास करके कॉलेज के विद्यार्थियों के बीच होते हैं जहां छात्रों का हुजूम उमड़ आता है।

अब कुछ ऐसी फिल्मों पर प्रकाश डालते हैं जिनकी शूटिंग नॉर्थ ईस्ट में हुई है। वैसे तो बहुत सी हिंदी फिल्मों की शूटिंग पूर्वोत्तर भारत के भिन्न-भिन्न स्थानों पर हुई है, परंतु यहाँ कुछ प्रमुख फिल्मों का जिक्र ही किया जा रहा है। रॉक ऑन (2016) और रंगून (2017) की शूटिंग क्रमशः शिलांग और अरुणाचल प्रदेश, असम में हुई है। 2015 में आई फिल्म 'ऐसा ये जहां' की शूटिंग असम में हुई थी। साथ ही इस फिल्म के लेखक और निर्देशक 'विश्वजीत बोरा' भी असम के ही हैं। दंश (2005) की शूटिंग मिज़ोरम में हुई है। इस फिल्म की कहानी भी पूर्वोत्तर भारत की घटना से ही जुड़ी हुई है। इस फिल्म को मिज़ोरम नेशनल फ्रंट और इंडियन आर्मी के बीच हुई लड़ाई पर फिल्माया गया है। जॉन अब्राहम अभिनीत फिल्म साया (2001) की शूटिंग नागालैंड में हुई है। शाहरुख खान की हिट फिल्म कोयला (1997) की शूटिंग अरुणाचल प्रदेश में हुई है। कुर्बान (1991) की शूटिंग मेघालय में हुई है जिसमें ईस्टर्न एयर कमांड (अपर शिलांग) के दृश्य हैं। 1986 ई. में आयी फिल्म एक पल की शूटिंग असम के टी-गार्डेन में हुई है। ये गुलिस्तां हमारा (1972) की शूटिंग अरुणाचल प्रदेश और शिलांग में हुई है, जिसका एक गाना 'मेरा नाम आओ' नागालैंड की एक जनजाति के ऊपर फिल्माया गया है। ज्वेल थिफ (1967) सिक्किम को केंद्र में रख कर दृश्य फिल्माया गया है। अन्य कई फिल्में हैं जिनमें पूर्वोत्तर भारत के दृश्य हैं। अब केंद्र एवं राज्य सरकारों के बीच समन्वय से पूर्वोत्तर भारत में उग्रवादी गतिविधियां कम हुई हैं और उसका प्रभाव वहाँ के पर्यटन पर भी पड़ा है। अब तमाम क्षेत्रीय एवं हिन्दी फिल्मों की शूटिंग पूर्वोत्तर भारत में हो रही है।

कुछ उन व्यक्तियों का परिचय जिन्होंने किसी न किसी रूप में हिंदी सिनेमा में अपना योगदान दिया है। काल संध्या (1997) के निर्देशक 'भवेन्द्र नाथ सैकिया' हैं। 'जोहनु बरुआ' के निर्देशन में बनी फिल्म 'मैंने गांधी को नहीं मारा'(2005) देश-विदेश में बहुत सराही गयी। अरुणाचल प्रदेश के एक बाल कलाकार 'माटिन रे तांगु' हैं जिन्होंने 2017 ई. में सलमान खान अभिनीत फिल्म ट्यूब लाइट में बाल कलाकार के रूप में अभिनय किया है। उल्लेखनीय है, मात्र 5 वर्ष कीउम्र में इस फिल्म में किया गया अभिनय बहुत पसंद किया गया। इस आलेख में जितने फिल्मी कलाकारों और शख़्सियतों का ज़िक्र किया है वे अंतिम नहीं हैं, बल्कि

समय के साथ पूर्वोत्तर भारत के लोगों का हिंदी सिनेमा जगत में आने का सिलसिला बढ़ता ही जाएगा। अपनी योग्यता और मेहनत के बल पर आज पूर्वोत्तर भारत के कलाकार बॉलीवुड में अपना मुकाम हासिल कर रहे हैं। आज वहाँ के कलाकार हिंदी ही नहीं, बल्कि अन्य भारतीय भाषाओं की फिल्मों में भी अभिनय कर रहे हैं। आज वेब सीरीज का दौर चल रहा है जहां ऐसी दर्जनों वेब सीरीज हैं जिसमें पूर्वोत्तर भारत के कलाकार अपनी अदायगी से सभी को प्रभावित कर रहे हैं।

पूर्वोत्तर भारत का क्षेत्र जितना बड़ा है और वहाँ की जितनी जनसंख्या है उसके अनुपात में हिंदी सिनेमा जगत में उनकी भागीदारी न के बराबर ही मानी जाएगी। क्या वजह है कि हिंदी सिनेमा में गिने चुने 4-5 राज्यों के कलाकारों की भरमार है? क्या नॉर्थ ईस्ट के लोग हिंदी सिनेमा में काम करना नहीं चाहते हैं? क्या यहाँ प्रतिभाएँ नहीं हैं? क्या वेइस देश के नागरिक नहीं हैं? इन सभी बिन्दुओं पर हिंदी सिनेमा जगत के धुरंधरों को विचार करना चाहिए। जितनी विविधता हमारे देश में है उतनी फिल्मों में भी दिखनी चाहिए। विविधता में एकता ही हमारी पहचान है और इस पहचान को हमें धूमिल नहीं होने देना है। पूर्वोत्तर भारत के कलाकारों की जितनी संख्या हिंदी सिनेमा में बढ़ेगी, हिंदी सिनेमा का विस्तार और स्तर उतना ही अधिक बढ़ेगा। पूर्वोत्तर के लोगों को शेष भारत से जोड़ने का बड़ा जरिया हिंदी सिनेमा बन सकता है।

संदर्भ :-

[1]http://vanchitvimarsh.blogspot.com/2017/12/blog-post.html?m=1,

[2]https://www.jansatta.com/sunday-magazine/literature-and-cinema/204973/?utm_source=whatsapp_web&utm_medium=social&utm_campaign=socialsharebuttons

[3]m.hindustantimes.com,indian film industry expected to earn $ 3.7 billion by 2020. That's 25000 crore, sep 25, 2016

[4]pramodgaikwad,indianexpress.com,February 20, 2016

[5]WEBDUNIA, डैनी: कभी दोस्त, कभी दुश्मन, समय ताम्रकर, रविवार, 16 अप्रैल,

[6]https://theprint.in/theprint-profile/identity-music-bhupen-hazirika-the-man-who-united-assam-talked-inclusivity/275471/

(लेखकीय परिचय: *अतुल वैभव दिल्ली विश्वविद्यालय के हिंदी विभाग में शोधरत हैं।)*

***

रवि रोदन की दो कविताएं

(1)

बर्फ की चादर और डिजिटल सपनें

हर रात
इस शहर में
जैसे कोई दबे पाँव
ठहर-ठहर कर चलता है
और ढक देता है
बर्फ की चादर से
सपनों की ढेर सारी किताबें।

और जब सुबह होती है
धूप अपने पल्लू बाँधे
चश्में से जिन्दगी को नहीं देख पाती।

बेघर लोग
बर्फ की चादर ओढ़ने से पहले
ईश्वर से दुआ करते हैं
कि उन्हें भूख और ठंड की मार से बचा लेना
जिन्हें वह छोड़ आए हैं।

महाशय,
हम डिजिटल युग में जी रहें हैं
हमारी भूख डिजिटल
हमारी गरीबी डिजिटल
हमारा बहता लहू डिजिटल
पसीना डिजिटल
डिजिटल
डिजिटल

और डिजिटल।
सर्दी की हर रात
मौत अपनी बन्दूक में बारूद भर कर
जिन्दगी के पन्नों पर अपना नाम लिख देती है
लिख देती है खामोशियों के अल्फ़ाज़

महाशय,
उसकी सारी तस्वीरें
कैमरे में बुदक कर बैठी हुई हैं
जब भी मन करे
आइये
डिजिटल सपनों को देखने।

(2)

सुबह की चाय और अख़बार

हर सुबह
घर की चौखट तक
दौड़ आते हैं
सकपकाते हुए
खूब सारे चेहरे
और सहमी हुई आवाजें।

अखबारों की सुर्खियों में
हँसी की किलकारियां को
जैसे गुम हुए वर्षों बीत गए हों...

शब्द कभी ठंडे नहीं पड़ते
वे तो पन्नो में सिमटकर
आग के ही गीत गाते हैं।

सूखी पत्तियों की सरसराहट
और जलते हुए सपनो को
हर सुबह हम देखते हैं
हाथों में चाय का कप थामे हुए।

गांव/शहर
सड़कें/ मीड-डे-मील
जेहाद/पॉलिटिक्स
और कुछ विचलन की कविताएं
चाय की चुसकियाँ लेते हुए
पढ़ लेता हूँ।

सुबह की चाय
जितनी मीठी होती है
काश उतनी ही मीठी हो पाती
बगान की कहानियाँ
क्षुब्ध आँखे
बस इंतजार में हैं
कि कब वह सुनहरी सुबह आए
जब हर ख़बर की मिठास
चाय जैसी लगने लगे।

*(**लेखकीय परिचय:** रवि रोदन सिक्किम के युवा कवि हैं। साहित्यिक गतिविधियों में निरंतर संलग्न और सक्रिय हैं।)*

***

कविता कर्मकार की तीन कविताएं

(1)

इतिहास

शिरीष की जड़ों में
दफ़्नहै हमारा इतिहास
दिल में निचोड़ दी गयी है
चाय-पत्तियों की सुगंध
मुझे बधिर बनाते
शोषित प्रताड़ित पूर्वजों की आर्त आवाजें

सम्भोग और निद्रा के हर पल
भूख की ज्वाला में जलकर राख हो जाते
इतिहास में
मार्क्स, लेनिन अथवा बुद्ध की ज्ञान दीक्षा
दुर्बुद्धि थी उस काल में

उनमें प्रतिवाद के पन्ने
कोरे ही रह गये
अथवा किसी ने भी नहीं खाया
ज्ञान वृक्ष का कोई फल

एक दिन ...
गंदी नालियों के कीड़ों की तरह
प्रतिबाहित जीवनयापन से
अँधेरा मिटेगा
पेड़ों में रोशन होगा चिड़ियों का घोसला
गीत गाये जाएँगे भोर के
यातना और भूख से मिलेगी मुक्ति
इतिहास के पन्ने भरे जाएंगे
नयी कहानियों से

कुछ आप लिखोगे
कुछ हम लिखेंगे

हम सबके खून का रंग एक है
भूख की भी रहेगी एक ही संज्ञा
मेरी तरह हाहाकार नहीं करेगा कोई
पूर्वजों की कब्र में
लिखा गया उन मिथकों को याद करके

(2)

जाड़े की रात

जाड़े की रात में
हमारे छोटे -छोटे घरों में वे आग लगाते हैं
उस आग से सेंकते हैं अपना कलेजा
हमारे अरण्य रोदन में
ठहाके लगाकर हँसते

आग पसरती एक गाँव से दूसरे गाँव तक
एक शहर से दूसरे शहर तक
भौगोलिक सारी सीमाओं को पार कर
आग फैलती है
गलियों से गाँव तक
हर शहर तक
सीधे - साधे लोगों के दिलों तक
सोते बच्चे की तरह शांत
चेहरे और आँखो तक
खून से भीगे सूर्यमुखी फूलों तक

खून के नशे में मदहोश हैंसब
प्रतिरोध और प्रतिवाद में

प्रतिदिन जंगी होते हैं
नशेड़ी रातें क्रोध में हुंकारती हैं

कितनी बार कितने दिन कितनी रातें
देखी हमने
मुखौटे उतरते चेहरे
मुखौटे की आड़ में नये चेहरे
सब देखा हमने
परिचित चेहरे की आड़ में अपरिचित चेहरे

समझकर भी नहीं समझ सके वहगोपनीय कथा
युध्दकालीन तत्परता में
कैसे बदलते हैं सारे
मेकअप रूम राजा को प्रजा बनाती
प्रजा को राजा
और दुश्मनों को दोस्त
भोग और लालसा के लिये
अपने बनते पराये
अदृश्य इशारे सबको नचाती
पुतले बनकर रह जाते सब

छल से, कहाँ से आते हैं
हमारे हिस्सों के
भोग के दाने
प्यार के बोल

कनाट से
चमत्कारी इश्तहार उड़ते
मोल भाव चलते हैं
हमारे सपनों और सांसो के

(3) युद्ध

बाँटा तो यूं बाँटा
न हम अलग रहे न मिल पाए !
युद्धोन्माद कभी युद्ध में नहीं जाते ! !
बस मृत्यु पर हर्षोल्लास करते ठहाके लगाकर !

असल युद्ध तो वे लड़ते हैं
जिन्हें आस रहती है कि युद्ध कभी न हो !
जो चिट्ठियों में लपेटकर प्यार भेजते हैं राखी की डोरी में !
विरह के अगन में झुलसते हुए प्रीत को
दूर से ही एक साथ चाँद को देखकर दिल बहलाते !
अनायास बहती अश्रुधारा को व्यर्थ छुपाते हुए
बेचैनी और शंका के भँवर में बस डूबते हैं और डूबते चले जाते हैं !
युद्ध उनका होता है !

राजनीति की हठकारिता को बिना समझे नियति मान लिया जाता है !
असल युद्ध तो उनका होता है
जिनके लिए बारूद बस रोटी का अंतिम साधन बनता है !
असल युद्ध वहाँ होता है
दबी स्वर से प्रार्थना गूंजती है जिन प्रार्थना गृहों में
सिसकते हिमखंड पिघलते-पिघलते ख़त्म नहीं होते

अथवा यू मानें
किसी की प्रतीक्षित कुशल वार्ता के लिए
बेबसी बेचैनी बेबाक होती है अँधेरे में !
उस अँधेरे से कभी पूछा जाये तो जाने युद्ध होता क्या है !

युद्ध उनका होता है
जो थमे हुए वक़्त के एकांत में
अंदर से टूट बिखर कर भी हौसला बनते हैं
हौसले होते हैं पोशीदा
कपाल में रेखांकित उम्र भर की प्रौढ़ता !

युद्ध की नियति हर पक्ष के लिए एक ही होती है !

(**लेखकीय परिचय:** कविता कर्मकार असम की चर्चित कवयित्री और अनुवादक हैं।)

भीम ठटाल की तीन कविताएं

(1)

सिन्कोना* बाग से मेरा संसर्ग

सिन्कोना किसी एक भूगोल का नहीं था
सिन्कोना किसी समय मेरी भी चिट्ठी के पहुंचने का
ठिकाना हुआ करता था।
सिन्कोना बाग में श्रमदान देने वाले
हमारे अपने हुआ करते थे
हमारे गम और खुशियों में भी
उनके होने का अपनापन था।

सिन्कोना बाग से होते हुए जाने वाली सड़क से हम
ऊपर पहाड़ की ओर कहीं जाया करते थे
जाया करती थी हमारे सुख और दु:ख की नीरवता भी
सड़कें हमें बीच में ही कहीं छोड़कर
हमें अपनी सड़क अपने आप खोजने को
उत्साहित करती हुई कहीं खो जाया करती थी।

अपनी सड़क न खोज पाने पर हम
इन्हीं सिन्कोना के पौधों और छोटी-छोटी टहनियों को पकड़कर
वापस लौट आया करते थे।

खुद बीमार रहकर भी दवा और जड़ी बूटियाँ उगाने वाले
यहाँ के लोग कब ठीक होंगे सोचकर

* सिन्कोना: कुलैन अर्थात् सिन्कोना पौधे से मलेरिया के उपचार की औषधि बनाई जाती है।

हम कभी कभार चिन्तित हुआ करते थे।

मन की बात समझने और
बोले बगैर बातें जिनसे करने को
मन आतुर था
उन बंधुओं के साथ
कई बार साथ-साथ हम चले!

आज मैं जो खत भेजता हूँ
वहाँ से संबंधित लोगों के न मिलने पर
बेरंग, विरक्त वापस लौट आते हैं!
सोचता होगा डाकिया भी
कि बिना बताए ऐसे ही ये सब के सब
किधर चले गए?
किनारा हो या पहाड़ कहीं तो होंगे!
किन्तु बताए कौन कि कहाँ होंगे ये सब?
किससे पूछें उनके घर का पता ? कहाँ खोजें?
और अगर मिल भी गए तो पहचानें कैसे?

तमाम ये सारे सवाल करें तो करें किससे?
कौन हैं ये सिन्कोना बाग के रखवाले?
उनके चेहरों पर मुझे पहले जैसा
अपनापन क्यों नहीं दिखता?
मुझे सिन्कोना बाग के साथ प्यार से जोड़ने वाले
वह प्यारे संबंध और उनका अपनापन कहाँ चला गया?
पर मैं निराश नहीं हूँ,
मेरे खतों को आज नहीं तो कल,
कभी न कभी तो ठिकाना मिलेगा!

(2)

जीवन और आवश्यक उपकरण

आस-पास कुछ करीबी दोस्त
ठीक-ठाक दो वक्त की रोटी
साथ देने वाला मजबूत कंधा
तरो-ताजा रखने लायक कुछ पुरानी यादें
पछताने को भद्दी सी कोई घटना
प्रावधान के एकाध पैकेट
कुछ अच्छी किताबें और
बैट्री से चलने वाली पुरानी लंबी टॉर्च

फोन करने को कुछ खास दोस्त
दीवार में लटका पुराना एक पोस्टर
पूरा कंचनजंघा झट से अन्दर
घुसना चाहता है एक छोटी सी खिड़की से
पता लगभग मिट चुका
न भेजी हुई एक पुरानी चिट्ठी
प्रगति-पत्र में कुछ प्रभावकारी टिप्पणियाँ
बरसात की शाम को निकलने के लिए एक जोड़ा गमबूट
कहीं से भी सामाजिक नहीं लगता
सोशल मीडिया पर कुछ दोस्त
कहाँ सुधारना है पता ही न चलता

कभी न खत्म होने वाली जिन्दगी की अनुभूति का वाक्य
दायरे में रहकर मजाक करने को पहचाना सा कोई
बच्चू कैलाश और मुकेश के गीत
एक ही सुर में बजता पुराना छोटा सा रेडियो
गाँव की लड़की की विदेश में कोई स्पर्धा जीतने की ख़बर
बिना जूतों के चलने के लिए थोड़ी सी मिट्टी

राजनैतिक शोर-शराबा से परे
पीले फूलों को दिखाता पुराना केबल टीवी.
सर टिकाने को नरम एक तकिया

चैन से सोने को एक विश्वस्त शुभ रात्रि
अच्छे से जागने को एक निश्चित शुभ प्रभात
जिन्दगी को इससे ज्यादा और क्या चाहिए? ....

(3)

रियालिटी शो से साक्षात्कार

रोग और भूख से ग्रस्त बच्चे सड़क के किनारे मर रहे हैं
सिने स्टार और सुपर मॉडलों की
इन्हें बचाने की चैरिटी कसमों के साथ
रोग और भूख से ग्रस्त बच्चे सड़क किनारे मर रहे हैं!

समय ने सब कुछ बोया-उगाया है
अपना भविष्य सुरक्षित करने के लिए हमारे अपनों ने
इज्ज़त, सम्मान और अर्थबोध
अपने संस्कार के बगीचों को जड़ से उखाड़ फेंका है।
टीवी. के सेलेब्रिटी गरीब उत्थान की कसमें खाते हैं
और अपना मीडिया आँखों के विज्ञापन आँसू
सूखने से पहले उनके कर्तव्यबोध के मगरमच्छ
स्टेज पर थिरकने लगते हैं
गरीबी के मगरमच्छ दिन दहाड़े गलियों में
हमारे बच्चों को निगलते हैं।

हमारे इन बच्चों के शायद कई सारे सवालात होंगे!
जैसे कि:
बच्चे बार-बार क्यों बोर-वेल के गड्ढों में गिर जाते हैं?
क्यों भ्रूण डस्टबिन से बरी किए जाते हैं?
क्यों बच्चों की हड्डियाँ नालों से बरामद होती हैं?
क्यों दिन चुके बगैर रेलगाडियाँ पटरियों से उतर जाती हैं?
क्यों शिक्षा और विवेक तिजारत बनते हैं?
क्यों मंत्री अपने दिए गए विभागों से असंतुष्ट रहते हैं?

खौलना चाहिए था जिस खून को
वह अब ठंडा पड़ गया है
कितना भयावह समय है यह
जब रक्त-रञ्जित जर्जर युद्ध से आक्रांत रक्तिम शहर में
रक्त न मिलने से एक बच्चा मर जाता है
और मैं
देश की राजधानी के बड़े अस्पताल में
एक एस.एम.एस नहीं भेज सकता हूँ!

लगता है अब बहुत हो चुका
किसी मोर्चे के दबाव में आकर
पानी के ऊपर राजनीति और म्युनिसिपालिटी के आग्रह पर
स्वतंत्रता समारोह में आत्मघाती हमला
लगता है अब बहुत हो चुका।

शायद समय आ गया है अब
विद्वानजनों के वनवास जाने का
विवेक के वनवास जाने का।

*(**लेखकीय परिचय:** भीम ठटाल चर्चित कवि एवं भाषाविद् हैं। हिंदी साहित्य सेवा समिति, सिक्किम के अध्यक्ष के रूप में हिंदी भाषा एवं साहित्य के प्रचार-प्रसार में भीम ठटाल का योगदान उल्लेखनीय है।)*

***

मनीषा झा की चार कविताएं

(1)

समय के रंग

वहाँ सूर्य था अपनी किरणों के साथ
ईमानदारी में सबके लिए थी रोशनी
पारदर्शिता का स्थायी निवास था वहां
जो भीतर था वह दिखाई पड़ता था बाहर भी

गर्दन उठाने पर जो चाँद नज़र आता था
उसमें दिखता धब्बा चाँद की नियति थी
मगर इससे क्या
धरती के लिए वह मधुर और शीतल था

उस ओर मृगमरीचिका थी
चमक देख कर ललचाया मन कुलांचे भरता था
लपकता था हिरण की तरह
एक ओर अंतहीन दौड़ थी वहाँ दूसरी ओर
हाथ न आने की निर्मम चालाकी

देखा गया है
कि हर मौसम के अपने -अपने फूल होते हैं
कोई बसंत में रहता है सहज तो कोई बरसात में
कोई सर्दी में खिलता है निश्चिंत तो कोई गर्मी में
कुछ होते हैं जिन्हें ऋतुओं के बदलने से
खास फ़र्क नहीं पड़ता वो होते हैं सदाबहार

सक्षम होते ही चिड़िया का बच्चा
उड़ जाता है माँ का घोंसला छोड़कर
ढूंढ़ता है अपनी राह
उड़ सकने की धुन में

सहेजता है आत्मविश्वास
फिर एक दिन आती है आंधी साथ में तबाही
तो क्या वह सोचता है
बचपन की सुरक्षा और लौटने के बारे में

उस समय की बात है
दुनिया एक थी और जीने की आदतें अनेक
उन अनेक आदतों ने दुनिया को दिया था वैविध्य
वैविध्य एक जाल था जिसमें फंसा रहता था मनुष्य
रहने लगा था व्यस्त और बेचैन।

(2)

बिरवा

चाहिए तो बहुत कुछ
एक मुकम्मल जीवन में
सभ्यता की बढ़त परवान पर हो जब
मेरी खुशी फिलहाल
एक बिरवे में है जो अभी-अभी फूटा है
मुझे देखना यह नहीं कि यह कितना ऊपर जाएगा
बल्कि देखना है गौर से
कितना हरा होता है यह।

(3)

मेघ जैसा जीवन

आया मानसून का मेघ
तो निहाल हो गई नदी
बेहाल थी वह भी
जेठ की गरमी में तपकर
जैसे तपता है
हर जेठ में
सर्वहारा।

(4)

पानी का पता

पानी का पता समुद्र से नहीं
उन झरनों से पूछो
जो प्यास की तड़प सुनकर
दौड़ जाते हैं व्याकुल होकर
खाया करते हैं अक्सर
चट्टानों की चोट
फिर भी जो लौटते नहीं पीछे
रुकते भी नहीं
न लेते हैं अंबर की ओट

पागलपन और क्या है
उस पानी से पूछो जो बहता है
हाहाकार बन उमड़ता है
कभी सागर की सीमा में
हरहरा कर बढ़ जाता है
कभी झरने के असीम पथ पर
रस बन बरसता है
शब्दों के शरीर से
आँसू बन झरता है
आँखों के रास्ते

पागलपन का पता पानी से पूछो
पूछो कि पागलपन नहीं होता अगर
तो कितना बोझिल होता जीवन।

*(**लेखकीय परिचय:** मनीषा झा चर्चित कवयित्री हैं। वर्तमान में उत्तर बंग विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल के हिंदी विभाग में प्रोफेसर पद पर कार्यरत हैं।)*

***

 ISSN: 2582-6530

आईनाम इरिंग की चार कविताएं

(1)
उस रोज

जब यह रात बीत जाएगी,
उस रोज सूर्योदय से पहले उठूंगी
और सब से मिलने निकल जाऊंगी।

बाजार के बीच बहती नदी के पास बैठूंगी
बाजार ने जिसे नाला बनाकर छोड़ दिया है।
क्षितिज के ओट से जब सूरज निकलेगा
जलते हुए आग के गोले के पीछे छुपे
सूरज की सूरत को देखूंगी।

दोपहर को शहर के बीच अकेली खड़ी
पीपल के उस पेड़ से भी मिलने जाऊंगी
उसकी बाहों से लिपट जाऊंगी।
हवा जिसे कभी किसी ने नहीं देखा है
पत्तों से खूबसूरती के किस्से सुनूंगी।

शाम को घर लौटकर आईना देखूंगी
उस ओर खड़ी प्रकृति को देखूंगी
जिसे अधिक मनुष्य बनकर उस रोज उठना होगा
अधिक करूणामय हृदय लिये जागना होगा।

(2)

कैसे हो?

जब कोई हाल पूछता है
तब सच बताना कितना मुश्किल होता है।
'मुश्किल'
यही तो है वह जेब
जो रहने देता है सारे जवाबों को।
हम यूं ही कह देते हैं
'सब ठीक है'
और सवाल की गंभीरता,
एक हिचकी में टल जाती है
क्योंकि यह सवाल बहुत गहरा है
इतना कि लोग डूब जाएँ
उसके अंतस में।

इसलिए बचने-बचाने के लिए
हर बार कह देती हूँ
'सब ठीक है।'

(3)

अकेला होना

शहर में
घर में
और एक कमरे में
अकेले रहना
अकेला होना नहीं है मीत
जब तक कि दूर पहाड़ी के उस पार
कोई तुम्हें भी याद करता हो
सुबह, दोपहर और शाम।

(4)

टाँके लगा लेती हूँ

मेरी दो जूतियाँ
दोनों की गहरी दोस्ती
आज एक टूट गयी
और टाँके लग गये।

मुझे ख़याल आया कि
कई बार मैं भी टूट जाती हूँ
हर बार टाँके लगा लेती हूँ।
बल्कि सब टूटते हैं
अपनी-अपनी राहों में
सब टाँके लगवा लेते हैं
बची हुई जूती के खातिर
ताकि दूसरे का बचना बचा रहे
और जब दूसरा टूट जाये
तब उसके पास भी तो बचा रहे,
टाँके लगवाने का कोई एक कारण।

***(लेखकीय परिचय:** आईनाम इरिंग अरुणाचल प्रदेश के अपर सियाङ जिले में स्थित शासकीय मॉडल कॉलेज गेकू में हिंदी की सहायक प्रोफेसर हैं।)*

***

धनंजय मल्लिक की तीन कविताएं

(1)

स्त्री जब कहीं नहीं बचेगी

स्त्री जब कहीं नहीं बचेगी
पूरी दुनिया में
पुरुषों के गिद्ध जैसी हो रही आंखों से
तब भी वह मौजूद रहेगी
बिल्कुल स्वस्थ और सुरक्षित
खासी जनजाति में।

(2)

नॉर्थ ईस्ट के प्रवेश द्वार से

भारत के भिन्न-भिन्न प्रदेशों से आकर
रेलगाड़ियां जब घुसती हैं नॉर्थ ईस्ट की ओर
मैं देखता हूं
प्रवेश द्वार पर खड़े होकर
उसमें दिल्ली होती है
कोलकाता होता है
मुंबई, चेन्नई और भोपाल होते हैं

जब वो लौटती हैं वापस
गाड़ियों में कहीं नहीं होता है
गुवाहाटी
शिलांग, दीमापुर और ईटानगर
जो जैसे आता है
उसी तरह लौटता है
बिना कुछ स्वीकार किए।

(3)

माजुली

हर साल मानसून में
ब्रह्मपुत्र[1]
निगल जाता है
दुनिया के सबसे बड़े नदी के द्वीप को
थोड़ा थोड़ा करके

नदी में
समाहित होती जाती हैं हर वर्ष
कोई न कोई सभ्यता और संस्कृति
जिसे दुनिया ने अब तक देखा भी नहीं है

एक और भाषा
एक और जाति
एक और समुदाय
अज्ञात ही रह जाती है
और किसी को कोई फर्क नहीं पड़ता

माजुली को जिस तरह लुप्त किया जा रहा है
आने वाले समय में
माजुली का सिर्फ इतिहास होगा
भूगोल नहीं।

*(**लेखकीय परिचय:** धनंजय मल्लिक उत्तर बंग विश्वविद्यालय, पश्चिम बंगाल के हिंदी विभाग के शोध-अध्येता हैं।)*

***

[1] **ब्रह्मपुत्र ही एक मात्र नदी है जिसके लिये पुलिंग का प्रयोग किया जाता है, इसे 'नद' कहा जाता है।**

सुधा एम. राई की तीन कविताएँ

अनुवादक: सुवास दीपक

(1)

पुन: स्मरण

हर सुबह
खुलती है जब आँख
खिड़की खोलकर देखती हूँ

मंदिर के बुर्ज की परछाईं तले
याद करती हूँ
एक लोलुप, दरिद्र पुजारी
ऊँघ रहा एक कोने में
निकम्मा ईश्वर
अर्द्धमुदित नयन अंधेरे में

और मैं फिर याद करती हूँ
रात भर पति द्वारा भोग्या स्त्री को
खड़ी फूल–प्रसाद लिए मंदिर के सामने!

(2)

दुशवारियाँ

लौट आ
ओ, सपनों के मुसाफिर
मेरी साधना के निबिड़ अक्षरों को रौंदे बिना।

कितना कठिन है
हाशिए पर धकेल दिए व्यक्ति को
ऊँची उठती मन की दीवार से
तृष्णा की एड़ी उठाकर ताक–झाँक करना
और
जब दौड़ते हैं निरंकुश बेलगाम घोड़े
स्वाभिमानी छाती पर
तो अप्रभावित बन जिंदा रहना।

कितना कठिन है
मौत की काली गुफा में
जीवन के रंग पोतना।

और
मरुभूमि में
समय के अपने पदचिह्न तराशना

और कितना कठिन है
एक सच्चे कवि को
कविता में जिंदा रखना।

(3)
शब्द

कालजयी पाषाण की तरह
धड़ाम से गिरा
मेरी छाती पर
शब्द।

दर्द के आधार शिविर से
अक्षरों का आर्तनाद
मृत्यु के ही किनारे
छितरा गया।

एक शोक धुन बजती है
स्मृतियों की शवयात्रा...

अस्तित्व पीड़ा की हर पंक्ति में
अनुभूति और बिंबों की हथेलियों से
लगातार सहलाती रहती हूँ
शब्दरंजित
इस छाती को।

(**परिचय:** सुधा एम. राई भारतीय नेपाली कविता की सशक्त हस्ताक्षर हैं। इनकी कविताओं का नेपाली से हिंदी अनुवाद सिक्किम के चर्चित कथाकार एवं अनुवादक सुवास दीपक द्वारा किया गया है।)

ब्रजेन्द्र कुमार ब्रह्मा की तीन कविताएं

अनुवादक: सूर्जलेखा ब्रह्मा

(1)

बोधिद्रुम से बढ़कर

मैं जैसे ही इस धरती पर आया
मुझे बर्फ की ठंडी दुलार महसूस हुई ;
एक अनदेखे हाथों का
कब्रिस्तान, नंगे धड़ और आकाश में गिद्धों की उड़ान देख
न जाने क्यों मैं काँप उठता हूँ।

यह शरीर खून-पसीना बहाता है
जी भर कर लड़ता है
एकांत जीवन की सीमाओं को बनाए रखने के लिए।

मैं पुरानी सड़कों को फिर से पिरोना चाहता हूँ
वही सड़क
जिस सड़क से सिद्धार्थ चलकर आए थे,
अपनी दोनों आँखों में एक स्वतंत्र यात्री का चिह्न पहने हुए
भूख-प्यास के साथ
मन में कई प्रश्न लेकर
अपने भौतिक जीवन से परे
क्या जन्म से भी अधिक कोई है प्यारी वस्तु?
मैं प्रेम, त्याग और घृणा से
इस दुनिया को जाँचकर
बैठ जाता हूँ बैचेन मन से
बोधिद्रुम[1] की छाया में;
जहाँ एक अनजाने तारे की किरण पहुँच प्रकाशित करती है कि
यह अंत नहीं है
मेरी यात्रा स्तंभ है

[1]बोधिद्रुम अर्थात जिस पेड़ के नीचे बैठकर गौतम बुद्ध ध्यान करते थे।

जीवन का लक्ष्य अभी प्राप्त नहीं हुआ है
एक अप्रत्याशित सितारा जिसका जन्म अभी नहीं हुआ है
वही है मेरा लक्ष्य।
स्वर्ग और नर्क
वर्तमान और भविष्य जन्म के असमंजस को तोड़
इन हाथों से मैं वर्तमान को मापना चाहता हूँ
वही है मेरा लक्ष्य।

(2)

आसमान की तलाश में

हमें आज एक आसमान की तलाश है।
हमें आज जरूरत है
ताजा और मुक्त हवा की
जहां सफलता के लिए
हमारी कोई सीमा नहीं होती।
खाली शरीर अब भर गया है,
भूखे मन में जहर का ख़याल आने लगा है।
इसीलिए आज
इतिहास खुद को याद कर रहा है,
वह अश्लील रूप
उसकी अलग सोच और परवरिश
अमर जीवन वृक्ष में विषैला फल।
उसकी सज़ा को
आखिर भूलाने का क्या उपाय है ?
उपनिषद्, बाइबल, कुरानों को
अपने ही पैरों तले कुचल
शुद्ध जल में भी अगर मैल जम जाय
दोषी किसे ठहराएँगे ?
क्रोधित मन से व्यक्ति की हत्या करने वाला
आज दुविधा में है।
आज़ादी और
सादगी मन से भरपूर
इधर से उधर उड़ान भरने वाली चिड़ियाँ
आज पिंजरे की सीमा में बंद है
इसीलिए आज हमें एक सम्पूर्ण आसमान की तलाश है।

(3)

वे कलर ब्लाइंड हैं

(एक फूल की पंखुड़ी : शोभा ब्रह्मा के लिए)

शायद वे नहीं जानते
सफ़ेद से काला कितना अलग है।
क्योंकि वह कलर ब्लाइंड हैं
इसीलिए उन्हें इंद्रधनुष भी
पीला दिखाई पड़ता है।
जहां आप एल डोराडो[2] की असली तस्वीर पेश करना चाहते हैं,
वहाँ वह केवल तिरछी नज़रों से देख चले जाते हैं।
शायद इसीलिए
कला को कला के लिए कहा जाता है।
घर के पीछे कालीन घास पर प्रशांत महासागर की एक बूंद
हजारों लोगों के पैरों तले
अनगिनत 'विश्वब्रह्मांड'।
हिरोशिमा और नागासाकी की धूल में
जीवन की नई उन्माद के साथ
जब आप स्वर्ग की सृष्टि चाहते हैं,
मैं भी कहना चाहता हूँ-
'मैं मरना नहीं चाहता।'
लेकिन वे कलर ब्लाइंड हैं।
उन्होंने अभी तक अपने चेहरे से
अँधेरे का जाल नहीं हटाया है।

*(**लेखकीय परिचय:** बोड़ो साहित्य सभा के पूर्व अध्यक्ष ब्रजेन्द्र कुमार ब्रह्मा समकालीन बोड़ो कवियों में एक नामचीन हस्ताक्षर हैं। वर्ष 2015 में 'बाइदी गाब बाइदी देंखो' कविता संग्रह के लिए ब्रजेन्द्र कुमार ब्रह्मा को साहित्य अकादमी पुरस्कार से सम्मानित किया जा चुका है। बोड़ो से हिंदी कविता का अनुवाद सूर्जलेखा ब्रह्मा द्वारा किया गया है, जो कि हिंदी विभाग, सिक्किम विश्वविद्यालय की शोधार्थी हैं।)*

[2] एल डोराडो जो अपने को सोने का राजा कहता था और हर वर्ष सोने की पानी में लपेटकर नदी में डुबकी लगाता था।

हरेकृष्ण डेका की तीन कविताएं

अनुवादक: विनोद रिंगानिया

(1)

किसी को यदि ईश्वर मिले तो

आप में से यदि किसी को ईश्वर मिले तो
मुझे बताना और मैं उनके पास जाकर कहूँगा
कि उनका इतने अलग-अलग नाम रखना उचित नहीं है

इतने भिन्न-भिन्न पंथ
भिन्न-भिन्न धर्ममत
भिन्न-भिन्न निषेधाज्ञाएँ
इतने अलग-अलग समर्पण और त्याग।
उनके नाम से निर्मित हों विभिन्न स्थापत्य
अंकित हों विभिन्न पोथी चित्र
गाए जाएँ भिन्न भिन्न भक्ति गीत
लिखी जाएँ भिन्न भिन्न किताबें
रचे जाएँ भिन्न भिन्न नृत्य।

एक दिन उनके अलग-अलग नामों से
इतनी अधिक उष्मा पैदा होगी
अलग-अलग पवित्रताओं की रक्षा करने
इतने अधिक संघात होंगे
कि
सभी मारकाट करते हुए
अलग-अलग रास्तों से होकर उनके यहाँ जाएँगे।
उनकी आत्माएँ दौड़ में एक-दूसरे को पछाड़ने की
कोशिश करते हुए भी
सभी एक ही समय पर उनके घर पहुँचेगीं
और देखेंगी कि वे घर पर नहीं हैं।

(2)

प्रव्रजक

कौन सा स्थान या कौन सा देश तुम्हारा अपना है
कौन सी जमीन?
तुम जिस पर खड़े हो वह जमीन तुम्हारी है
या
वह स्थान जिसकी सीमा नक्शे में निर्धारित है
लेकिन भूपृष्ठ पर जिसकी सीमा नहीं है?
कौन से स्थान या जमीन का कौन सा टुकड़ा
तुम्हें अपना बतलाता है? क्या जमीन का वह टुकड़ा
तुम्हें स्थायी बाशिंदा कहकर स्वीकार करता है?

प्रव्रजक,
तुम्हारी देह की भष्म या कब्र के ऊपर बने स्मृति चिह्न
जमीन के जिस टुकड़े पर
विश्राम करते हैं
वह जमीन भी तुम्हारी नहीं है।
कोई और आकर उसी जगह विश्राम करेगा।
तुम्हारे पीछे-पीछे असंख्य प्रव्रजकों की
कतार लगी हुई है।

(3)

जंगल भी कभी-कभी अपने आपको जलाता है

जंगल कभी-कभी अपने आपको जलाता है
जब तरु-तृण हो जाते हैं विश्रृंखल।
जंगल को भी चाहिए एक संसार
परिष्कार।
लेकिन वह अपने सीने में छुपा रखता है
बीज नूतन के।

बारिश आने पर
जंगल नया रचता है,
बढ़ते अंकुरों से
पत्र-पल्लव के आह्वान से।
बढ़ने पर अराजकता,
सरल है कर पाना खत्मा
विश्रृंखल व्यवस्था का,
लेकिन यदि न हो नया रचने का उद्यम
हो केवल ध्वंस का आह्वान,
तो ऐसा ध्वंस बन जाता है श्मशान
की अराजक निस्तब्धता।
सृष्टिहीन निष्फल शून्यता।

*(**लेखकीय परिचय:** हरेकृष्ण डेका समकालीन असमिया साहित्य के प्रमुख कवि, कथाकार एवं अनुवादक हैं। हरेकृष्ण की कविताओं का अनुवाद विनोद रिंगानिया ने किया है जो पत्रकार के रूप में गुवाहाटी-असम से प्रकाशित पूर्वञ्चल प्रहरी, दैनिक पूर्वोदय आदि के संपादन कार्य से संबद्ध हैं।)*

***

भारत-नेपाल की साझी सांस्कृतिक निधि है रामकथा

डॉ. गोकुल सिन्हा

(अनुवाद: डॉ. नम्रता चतुर्वेदी)

"मुझे प्यारी लगती है, प्रियकथा प्राचीन संसार की

हमारे भारतवर्ष के उदय की, हिमयुग की प्रभा की।"

(देवकोटा: शाकुंतल,1.8)

आर्यावर्त का हिमयुग पौराणिक युग था। इसे पौराणिक कथाओं के स्वर्णिम युग के रूप में जाना गया। इसमें पुराण, रामायण और महाभारत की रचना हुई। पुरानी कथाओं से प्रेरणा लेकर ही रघुवंशम्, अभिज्ञानशाकुंतलम् और गीत गोविंद लिखे गए। ये कृतियाँ भारत-नेपाल की साझी सांस्कृतिक निधि हैं। साहित्यिक विरासत हैं, पुरा-ऐतिहासिक धरोहर हैं, मैत्री सूत्र हैं और कूटनीतिक कड़ी भी। रामायण को भारत और नेपाल में बांटकर, इसे अलग-अलग मानते हुए भी रामकथा कुटुंब का नाता जोड़कर इन्हें एक ही परिवार के दो घर के रूप में जाना जाता है। जनकपुर की बेटी सीता और अयोध्या के बेटे राम के परिणय सूत्र ने नेपाल और भारत को त्रेतायुग से ही प्रणय बंधन में बांधे रखा है। विद्याशिरोमणि कुलचन्द्र गौतम के संस्कृत एवं नेपाली भाषा में आदर्शदंपति सीतारामौ: लिखने का प्रयोजन भी यही है।

सिद्धां राष्ट्रद्वयीप्रीतिम समृद्धाम वांछता मय।

भाषाद्वयेन दांपत्यम जगत्पित्रोह प्रदर्शितम॥

नेपाला भारतीयश्च सर्व एव सचेतस।

समां प्रीतिम प्रपद्येरन?

सूकत्युपायनपूजिता॥

देवकोटा के मतानुसार रामकथा ने केवल भारत-नेपाल के संबंध को ही नहीं, अपितु नेपाली सभ्यता को भी अभिसिंचित किया है। "भानुभक्त ने रामायण लिखी। यह मधुर कथा सत्य बनकर पहाड़ के हृदय में नदी नालों के मधुर गीत जैसी गुनगुनाई जाती है। यह भारत की आत्मा, अक्षर के आरंभ के साथ ही बढ़ने लगी। निश्चित रूप से इससे रामायण की जड़ों से नेपाली सभ्यता में नए अंकुर फूटने लगे थे।" *(देवकोटा: 'नेपाली साहित्य का इतिहास में सर्वश्रेष्ठ पुरुष, लक्ष्मी निबंध संग्रह)*

भारत-नेपाल संबंध को कूटनीति के दृष्टिकोण से देखें तो भी रामायण एक उत्तम उदाहरण है। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति सर्वपल्ली राधाकृष्णन अपनी नेपाल यात्रा (नवंबर1963) मेंजाते समय तुलसी रामायण के नेपाली अनुवाद की 5000 प्रतियाँ उपहार ले गए थे। 1965 में भारत के तत्कालीन प्रधानमंत्री लाल बहादुर शास्त्री भी अपनी नेपाल यात्रा में वाल्मीकि रामायण के नेपाली अनुवाद की उतनी ही प्रतियाँ साथ ले गए थे। इससे स्पष्ट ज्ञात होता है कि नेपाल- भारत मैत्री की सांकेतिक धरोहर रामायण है। कोई भी अन्य वस्तु इसकी जगह आसानी से नहीं ले सकता।

रामकथा के इस बुनियादी सांस्कृतिक अंतर्संबंध को भारत और नेपाल के बीच सीमित न रखकर सम्पूर्ण एशिया को सांस्कृतिक और भावनात्मक सूत्र में पिरोने और मानवता का व्यापक वृत्त निर्माण करने तथा सीमा में बंधे लघुमानव को मुक्त और विराट रूप देने का प्रयास करने में सर्वप्रथम भारतीय चिंतक डॉ. राममनोहर लोहिया का नाम आता है। विश्व में व्याप्त समस्त रामकथाओं को रामायण का नाम देने और विश्व सम्मेलन को मेले का दर्जा देकर 21-31 अक्टूबर,1961 में चित्रकूट में रामायण मेला आयोजित करने का प्रयत्न डॉ. लोहिया ने किया था, परंतु किन्हीं कारणों से यह सम्पन्न नहीं हो सका।

डॉ. लोहिया के सपने को आगे बढ़ाते हुए नेपाल के लुम्बिनी ज़िले के भैंसालोटन में नेपाल सरकार ने सरकारी स्तर पर 3 फ़रवरी,1965 के दिन एक बड़े आयोजन के साथ आदि कवि वाल्मीकि का जन्मोत्सव मनाया। समारोह में भारत से आमंत्रित बिहार के तत्कालीन राज्यपाल अनंत शयनम आयंगर और सिचाई मंत्री दीपनारायन सिंह की उपस्थिति में वाल्मीकि के जन्मस्थल भैंसालोटन को वाल्मीकि नगर का नाम दिया गया। अपने अध्यक्षीय भाषण में श्री आयंगर ने कहा था- "भारत और नेपाल के प्राचीन काल से चले आए सांस्कृतिक और सामाजिक संबंध की पुष्टि आज नेपाल का यह वाल्मीकि आश्रम कर रहा है जहां आदि कवि वाल्मीकि जैसे महर्षि पैदा हुए, इसी भूमि के इसी आश्रम में कुश और लव जैसे वीर योद्धा पैदा हुए। यह वही आश्रम है जहाँ आदिकवि द्वारा रामायण की रचना हुई, जिसे हम भारत और नेपाल के लोग गर्व के साथ आदिकाव्य 'वाल्मीकि रामायण' कहते हैं। इसी आश्रम ने हम दोनों देशों की जनता को राम युग की पुनः याद दिलाई है, क्योंकि राम भारत में जन्मे महामानव युगपुरुष थे और सीता नेपाल की पवित्र भूमि में जन्मी जगत जननी थीं। अगर रामायण से राम और सीता को अलग-अलग किया जाय तो रामायण का अवशेष ही समाप्त हो जाएगा। इसी अर्थके साथ हम दोनों देशों की जनता को यह बातें दिल में सँजोकर रखनी हैं। हम अलग-अलग हैं कहने से क्या होगा? हमें अपनी पूर्व परंपरा के संबंध को और गाढ़ा बनाना है और इसका माध्यम यही आश्रम बनेगा।" *(एस. एल. शर्मा, खोज-खाज, पृ. 58)*

धन्यवाद ज्ञापन देते समय माननीय मंत्री श्री सिंह जी ने कहा "वाल्मीकि आश्रम में आदिकवि महर्षि वाल्मीकि का स्मारक दोनों देशों की सरकारों के संयुक्त प्रयास से बनाने की ज़रूरत है।" *(एस. एल. शर्मा, खोज-खाज, पृ. 58)* इस समारोह में बारह सूत्रीय कार्यक्रम का प्रतिवेदन भी पेश हुआ जिसके सूत्र 2 में लिखा गया है कि "वाल्मीकि साहित्य के शोध, संस्करण तथा प्रकाशन करने का प्रस्ताव- कार्यक्रम की संपन्नता के लिए समिति ने दोनों देशों की सरकारों से अनुरोध करने का प्रस्ताव रखा था। एक शोधकार्य समिति का भी

गठन करने और शोधकार्य के लिए पाँच लाख रुपये की योजना तैयार करके उक्त समिति को संरक्षण देने के लिए श्रीमहाराजधिराज महेंद्र वीर विक्रम शाहदेव मौसुफ की सरकार में विनती करने और अध्यक्षता पद पर बैठने के लिए भारत के तत्कालीन सिचाई मंत्री श्री दीपनारायन सिंह से अनुरोध करने की बात की गई थी।" *(एस. एल. शर्मा, खोज-खाज, पृ. 58)*

वाल्मीकि जयंती मनाने के एक दशक बाद सन्1975 में साहित्य अकादमी नई दिल्ली ने डॉ. सुनीति कुमार चटर्जी की अध्यक्षता में अंतरराष्ट्रीय रामायण संगोष्ठी का आयोजन किया गया। इसी तरह की एक और संगोष्ठी का आयोजन सन् 1981 में प्रो. उमाशंकर जोशी की अध्यक्षता में हुआ। सन्1985 में 'नेपाली में रामायण' शीर्षक से अकादमी और नेपाली साहित्य सम्मेलन ने दार्जिलिंग में एक और गोष्ठी का आयोजन किया। इसके बाद विश्व साहित्य संस्कृति संस्थान, नई दिल्ली ने अंतरराष्ट्रीय रामायण सम्मेलन की एक परंपरा ही स्थापित कर दी।

सन् 1985 में इसका पहला सम्मेलन भारत के अयोध्या में संपन्न हुआ। रूसी विद्वान ई. पी. चेलिसेभ के हाथों इसका उद्घाटन हुआ। दूसरे विश्व रामायण सम्मेलन की शुरुआत भी अयोध्या में ही हुई और थाईलैंड में इसका समापन हुआ। थाईलैंड की राजकुमारी महाचक्री सीरिन्धर्ण की भी इसमें सहभागिता थी। थाई-भारत सांस्कृतिक संघ, थम्मसत और सिल्पकर्ण दो थाई राष्ट्रीय विश्वविद्यालय और भारतीय दूतावास द्वारा आयोजित इस दूसरे विश्व रामायण सम्मेलन में सात देशों ने भाग लिया था।

तीसरा सम्मेलन (1987) कनाडा में और चौथा भारत में आयोजित हुआ। भारत के तत्कालीन राष्ट्रपति आर वेंकटरमन ने चौथे विश्व रामायण सम्मेलन का उद्घाटन किया था। विश्व रामायण सम्मेलन का पांचवा आयोजन 1989 में नेपाल अधिराज्य के जनकपुर में संपन्न हुआ। इसका उद्घाटन नेपाल के तत्कालीन प्रधानमंत्री के कर कमलों द्वारा हुआ। छठवाँ विश्व रामायण सम्मेलन (1990) मॉरीशस में, सातवाँ भी उसी साल सूरीनाम में, आठवाँ (1991) बेल्जियम में, नवाँ (1992) इंडोनेशिया में, दसवाँ (1993) पुनः भारत में। ग्यारवाँ (1995) थाईलैंड में, बारहवाँ (1995) और तेहरवाँ (1996) क्रमशः हॉलैंड और चीन में संपन्न हुए। थाईलैंड में संपन्न17वें विश्व रामायण सम्मेलन (2000) में 'नेपाली रामायण वर्जन्स एंड वेरिएशन' शीर्षक का पत्र प्रस्तुत करने का अवसर मिला।

रामकथा की प्रासंगिकता आज भी उतनी ही महत्वपूर्ण और अर्थपूर्ण है। कुछ वर्षों पहले कन्नड़ के कवि कुवेम्पु ने 'रामायण दर्शनम्' महाकाव्य लिखकर ज्ञानपीठ पुरस्कार प्राप्त किया। फादर कामिल बुल्के ने 'रामकथा: उत्पत्ति और विकास' लिखा, इसके जरिये उन्होंने प्रयाग विश्वविद्यालय से डी. फिल. की उपाधि ही प्राप्त की ही साथ ही भारत सरकार द्वारा पद्मभूषण का सम्मान भी प्राप्त किया। बुल्के की रामकथा के साथ हम नेपाली भाषियों को कुछ शिकायतें हैं। रामकथा के संबंध में अध्ययन एवं शोध के संदर्भ में उनकी कृति एक बेहद महत्वपूर्ण ग्रंथ है। परिचय में डॉ. धीरेंद्र वर्मा ने भी लिखा है- "यह प्रबंध वास्तव में रामकथा संबंधी समस्त सामग्री का विश्वकोश कहा जा सकता है।" परंतु इस विश्वकोश में नेपाली रामायण की चर्चा नहीं

मिलती। आठ सौ पृष्ठ के इस प्रबंध में केवल दो वाक्य लिखे हैं- " नेपाली राम साहित्य की सबसे महत्वपूर्ण रचना भानुभक्त (यथामूलम) कृत रामायण है, यह आध्यात्म रामायण का पद्यानुवाद है, जो सन् 1852 ई. में पूरा हुआ था। इसके पूर्व ही रघुनाथ उपाध्याय ने रामायण सुंदरकांड लिखा था। इस ग्रंथ में रामकथा साहित्य की लंबी तालिका भी शामिल है, परंतु पूरी तालिका में नेपाली रामायण को कोई स्थान प्राप्त नहीं हो सका है, न भारतीय भाषाओं की सूची में और न ही विदेशी भाषाओं की सूची में। वहाँ तिब्बत और खोतान, फारस और सिंहल, जावा और मलेशिया, कंबोडिया तक के रामायणों की चर्चा सम्मिलित है पर नेपाली रामायणों का, जहां सब मिलाकर पचास से अधिक रामायण तथा रामकथा उपलब्ध हैं, एक भी प्रसंग नहीं मिलता। गौर करने की एक और बात यह है कि फादर कामिल ने अपने जीवनकाल में अपने हाथ से इसका तीसरा संस्करण तक निकाला था जिसमें उन्होंने तमिल, कन्नड़, बंगला, उड़िया, मराठी आदि भाषाओं से नयी सामग्री इकट्ठी की, पर लगता है कि नेपाली से एक भी नया वाक्य जोड़ना तो छोड़ दीजिये भानुभक्त का नाम भी 'भानुभक्त' ही रह गया। डॉ. वी राघवन की 'द रामायण इन ग्रेटर इंडिया', लल्लन प्रसाद व्यास की 'द रामायण: ग्लोबल व्यू', पॉल रीमक्यान की 'मेनी रामायन्स' में कहीं पर भी नेपाली रामायण का उल्लेख नहीं मिलता। यह सिर्फ उनकी उदासीनता नहीं हमारी भी उदासीनता है। इसके प्रति हम भी उत्तरदायी हैं कि नेपाली राम साहित्य के संबंध में हमारे पास कोई भी अध्ययन या शोध का संदर्भिक ग्रंथ उपलब्ध नहीं है। यह एक विचारणीय विषय है।

*(**लेखकीय परिचय:** यह लेख मूलतः नेपाली भाषा के चर्चित साहित्यकार डॉ. गोकुल सिन्हा जी द्वारा लिखित है, जिसका नेपाली से हिंदी अनुवाद डॉ. नम्रता चतुर्वेदी द्वारा किया गया है। नम्रता चतुर्वेदी अंग्रेजी, नेपाली और हिंदी की गंभीर अध्येता हैं। वर्तमान में दिल्ली विश्वविद्यालय में अध्यापन कार्य से संलग्न हैं।)*

***

अज्ञात यात्रा

उषा शर्मा

हैलो ये कहाँ लगा है ?

हैलो.... हैलो यह कहाँ लगा है ?

"हैलो कौन बोल रहा है?"

'ये कहाँ का नंबर होगा?'

'ये डाउहिल है। आपको किससे बात करनी है?'

'डाउहिल में मंजू बहन के घर में किया है.....!'

'तब तो गलत नम्बर लगा है। ये तो मंजू का घर नहीं है।'

इतना कहकर सविता ने फोन रख दिया और अपने काम में व्यस्त हो गई।

'दूसरे दिन फिर उसी समय दिन के लगभग दो बजे फोन की घंटी बजती है।

सविता ने फोन उठाया- तो वही आवाज आती है। मंजू से बात हो जाएगी?

'अरे! क्यों बार-बार यहाँ फोन कर रहे हो?' नम्बर थोड़ा जाँच लिया करो?'

सविता के बोलने के साथ ही उधर से जल्दी-जल्दी आवाज आयी–"देखिए न! मेरी दीदी ने यही नंबर दिया था....! सॉरी... पर जो भी हो आपकी आवाज सुनने से भीतर से खुशी मिलती है।

कल का दिन भी प्रसन्नता से बीता था। आज भी ऐसा ही हो।

मेरी खुशी के लिए कल भी फोन पर कुछ पल बोलने की अनुमति दोगी?"

युवा अवस्था में प्रवेश कर चुकी सविता को किसी अनजान व्यक्ति, वह भी पुरूष द्वारा इस प्रकार की बातें सुनना। उससे असीम आनन्द की प्राप्ति होना, स्वाभाविक ही था।

अपने हम उम्र की बातें करने पर अठारह साल की उम्र होने तक किसी के द्वारा आज तक प्रेम प्रस्ताव न पाने वाली सविता को किसी अंजान व्यक्ति से फोन पर हुई अपनी प्रशंसा से गुदगुदी का एहसास हुआ। परन्तु हल्की तरह से चिढ़ाकर 'मंजू का सही नंबर पता करके उसी को ही फोन करना' इतना कहकर फोन का

रिसीवर रख देती है। बिना पता चले ही दिनोंदिन दोपहर दो बजे सविता को उस फोन की प्रतीक्षा करने का क्रम चलता रहा। अब 'लैंडलाइन' पर नहीं। मोबाइल पर फोन आने लगा।

'आपकी आवाज ही इतनी मीठी है कि दु:खी मन को शांति का अनुभव हो जाए। उस पर साक्षात दर्शन हो तो सभी पाप धुल जायें। जीवन सार्थक हो जाने जैसा आभास हो"। इस प्रकार के प्रशंसापूर्ण वाक्य के मायाजाल में फँसती जा रही सविता भी इस तरह का प्रत्युत्तर देने में पीछे नहीं रहती थी "हाँ तो... आपकी प्रिय मंजू के चलते....

बातचीत का प्रसंग धीरे-धीरे प्रेममय बातों में परिणत हो रहा था। एक दूसरे की यादों में रातें कटने लगी। मिलकर सुख-दु:ख की बातें साझा करने तथा भावी जीवन की योजना तैयार करने वाली बातें करते हुए फोन पर बातचीत की अवधि भी बढ़ गई थी।

बहुत दिनों तक इसी तरह बातचीत का क्रम चलता रहा। अब मन की भावनाओं का आदान-प्रदान करने के लिए सलाह-मशवरा करना तय हुआ।

'कहाँ मिलें?' मिलने की जगह भी डाउहिल और भिक्टोरिया (विक्टोरिया) बीच के एकांत स्थल पर तय हुआ।

खर्साङ बाजार से लगभग चार किलोमीटर की दूरी पर अवस्थित उस जगह में सूर्य दर्शन नहीं होता है। बादलों की लुकाछिपी में कभी-कभी सूर्य निकलने की भी चेष्टा करता तो उस पर बड़े-बड़े देवदार (धुप्पी) के पेड़ बाधक बन जाते।

वन्य क्षेत्र होने के कारण वहाँ घरों की संख्या बहुत कम थी। कुछ ही लोगों का आना-जाना रहता था। कोमल और खिलते हृदय के प्रेमगीत गाने की चाह रखने वालों के लिए यह स्थान उपयुक्त था। सर्द मौसम की तरह सविता के प्रेम मिलन के गरम स्पन्दन धीरे-धीरे बढ़ने लगे।

वह नहा-धोकर साफ सुथरी होकर रुचिकर कपड़े छाँटकर पहनने लगी। हरे रंग का कुर्ता पायजामा और लाल रंग के स्वेटर को आज उसने अपने ऊपर फबता हुआ महसूस किया। घर का काम पहले ही निपटा चुकी सविता अपनी माँ को साथी से मिलने की बात कहकर धीरे से घर से निकलकर ऊपरी रास्ते पर चलने लगी। लंबे केश राशि को खुला रखकर आकर्षक सैंडिल और सुंदर कपड़े पहने रास्ते में बहुत परिचित लोग मिले जो उससे पूछताछ करते रहे। 'डाउहिल स्कूल तक जाना है, एक जरूरी काम है..' ऐसा उत्तर देती ऊपरी रास्ते पर चढ़ने लगी। गंतव्य स्थल पर पहुँचने से पूर्व वह असहज होने लगी। अपने इस व्यवहार से वह खुद ही आश्चर्य चकित हो रही थी। 'कभी इस तरह किसी अपरिचित व्यक्ति से मिलना नहीं हुआ। क्या ऐसे व्यक्ति से मेरा मिलना उचित होगा?' नहीं....एक बार मिलने मात्र से क्या होगा?' जान-पहचान ही तो बढ़ेगी।'

इस तरह के अंतर्द्वंद्व से उलझती वह निश्चित स्थल पर पहुँच गई। अजय उससे पहले ही वहाँ घड़ी देखते हुए पहुँच गया था.., उसके आने के इंतजार में था। लंबा, गठीला, आकर्षक शरीर और हँसमुख चेहरा देखकर प्रथम मिलन में ही फोन संगी अजय उसे बहुत भाया। उसके बोलने का तरीका और बीच-बीच में हँसी ठिटोली कर गंभीर वातावण को सहज बनाने की कला से वह मंत्रमुग्ध हो गई।

बातों का सिलसिला बहुत देर तक चलने के बाद, कभी-कभी हफ्ते में एक बार इसी स्थान पर भेंट करने की बात कहकर दोनों अब अपने रास्ते लौटने को मुड़े। 'साथ नहीं चलेगें..., फिर तुम्हें गाँव के लोग शंका की दृष्टि से देखेगें'..... अजय के इस सुझाव व दूर से आते लोगों को देख जल्दी-जल्दी छिपना, उसके इस व्यवहार से सविता अजय के प्रति और प्रभावित हो उठती है। वह मन ही मन सोचने लगी..... 'पहली मुलाकात में ही मेरी बदनामी का डर रखने वाला अजय, जीवन साथी बन जाने पर और भी ज्यादा प्रेम और इज्जत करेगा'।

मन में खटास लिए वहाँ अजय से बिछड़ने के बाद वह जल्दी में घर पहुँची। घर में उनके गाँव की माया दीदी आयी हुई थी।

सविता के घर पहुँचने पर उनकी माँ ने उसे माया दीदी से बातचीत जारी रखने की बात कह स्वयं नाश्ता बनाने के लिए रसोई घर चली गई। इस बीच सविता और माया दीदी के बीच ढेर सारी बातें होती रही। साथियों की बातें, गाँव घर की खबर पूछने जैसी औपचारिकता पूरी होने के बाद माया दीदी ने चिढ़ाकर मजाक बनाते हुए कहा- "आज तो सविता बहन रोज से कहीं भिन्न दिख रही हो, आज ज्यादा सुंदर और चेहरे पे दमक देख रही हूँ। क्या कोई खुशी की खबर है? चेहरे पर चमक, हृदय की प्रफुल्लता तो नहीं?"

ऐसे प्रश्न से सविता आश्चर्य से झनझनाती हुई उत्तर देती है- नहीं दीदी! अब बारहवीं कक्षा का परिणाम आने को है। परिणाम आने पर मैं कॉलेज जा पाऊँगी। यह सोचकर हर्षित हूँ। घर में रहते काफी बोर जो हो गई हूँ....।

"परीक्षा परिणाम आने के समय तो सभी डरे हुए होते हैं। बहन के चेहरे पर तो मैं दूसरी तरह की खुशी देख रही हूँ। मुझ दीदी को तो बता ही सकती हो। आवश्यकता पड़ने पर सुझाव भी दे सकती हूँ।"

कभी-कभार घर में आती माया दीदी को अपने मन की खुशी कब किस पर उतारूँ...ऐसी स्थिति में सविता ने कैमरे की रील की तरह फरर... सब बातें खोल दी। एक मन से वह दीदी के प्रति अविश्वास की भावना से भर गई। उसे डर लगने लगा कि कहीं माया दीदी सभी को न बता दें। दूसरी तरफ वह सोचने लगी थी- जो भी हो हृदय की उथल-पुथल तो शांत हुई।

'ओ...! अजय भाई! नीचे डुमाराम बस्ती के हर्के भाई का भतीजा है क्या? पहचानती हूँ। कुछ दिन पहले जब मैं वहाँ गई थी उस समय मिली थी। सचमुच! अच्छा लड़का है। मुझे तो बहुत पसंद है।

माया दीदी के इतना बताने के बाद सविता ने उनसे अजय से संबंधित प्रश्न रखे। घर कहाँ है? क्या काम करता है? कितना पढ़ा है? नौकरी करता है कि नहीं? माँ-बाप, भइया, दीदी क्या करते हैं? आदि-आदि।

स्नातक उत्तीर्ण अजय अभी बैंक में नौकरी कर रहा है, परिवार में एकमात्र बेटा, बाबा सरकारी नौकरी में, माँ भी प्राथमिक पाठशाला की शिक्षिका के रूप में अभी सेवारत है, इत्यादि बातें पता चलते ही वह मन ही मन गदगद हो उठी। अजय का परिवार भी उसे बहुत भाया।

"बारहवीं पास करके कॉलेज से स्नातक की डिग्री हासिल करने के बाद विवाह करने को मिले तो बहुत अच्छा हो"...फिर वह यह सोचने पर बाध्य हो गई कि "इस संबंध के लिए तो? माँ-बाप का राजी होना भी जरूरी है, घर का एक मात्र बेटा है.... वो भी सरकारी सेवा में कार्यरत। उसके ऊपर माँ-बाप भी शिक्षित।" अपने सुखी भविष्य की कल्पना मात्र से ही वह साँतवे आसमान पर पहुंच गई।

उसके पश्चात् अन्य गप्प-गपाष्टक करने के बाद चाय-नाश्ता करके माया दीदी लौट गई।

अगले दिन से अजय से बातचीत करने, उससे मिलने के लिए सविता और अधिक आतुर होने लगी। फोन तो वह रोज करने लगी पर मुलाकात सप्ताह में मात्र एक दिन हो पाने की बाध्यता अजय द्वारा दर्शाये जाने पर एक सप्ताह बिताना सविता को एक वर्ष जैसा लगने लगा। मानो समय रूपी पक्षी फुर्र.... उड़कर सुस्त गति में चला गया हो।

इस बीच माया दीदी का सविता के घर आने का अंतराल भी छूटने लगा (कम हो गया)।

सविता को न जाने क्यों माया दीदी के आने पर अजय का आना जैसा लगने लगा था क्योंकि मात्र उनसे ही वह अजय के बारे में पूछताछ कर सकती थी।

प्रत्येक रविवार को अजय उससे मिलने तो आता है पर निराश चेहरा लेकर। रोज चेहरे पर चमक लेकर चलने वाले अजय के चेहरे को काले बादल समान उदास देखकर उससे पूछा- 'आज आपको क्या हुआ? क्यों आप इतने दुःखी दिख रहे हैं?'

'कुछ भी नहीं हुआ–दो-तीन दिन से नींद नहीं ली, शायद इसी से ऐसा हुआ होगा'।

अजय का संक्षिप्त प्रत्युत्तर पाकर अधिकार जमाती हुई सविता कहती है-'क्यों क्या हुआ?' ऐसे तो नींद हराम नहीं होती? पक्का कुछ तो हुआ है। मुझसे नहीं कहोगे तो किससे कहोगे? हम दोनों मिलकर समाधान निकालेंगे।

सविता द्वारा जबरदस्ती करने के बाद अजय को बताना ही पड़ा। "सविता! हम दोनों इस समस्या को सुलझा नहीं पाएंगे। मैं घर का एक मात्र बेटा हूँ। इस तरह की बाध्यता मेरे सामने आ खड़ी है।"

'कैसी बाध्यता?'

"हिम्मत करके सुनना"। अजय ने अपनी उदासी का कारण बताना शुरू किया- मेरे बाबा ने मेरे जन्म के दस वर्ष पहुँचने पर उनके साथी (हरि अंकल) की बेटी मीरा के साथ मेरा विवाह कराने की प्रतीज्ञा ली हुई थी। हरि अंकल थोड़ा ज्योतिष में विश्वास रखने के कारण मीरा की कुंडली दिखवाये, अभी विवाह का योग नहीं है, आगे दस वर्ष तक लगन नहीं होने की बात ज्योतिष द्वारा बताया गया। ऐसा होने पर हरि अंकल और आंटी घर आकर पंद्रह दिन के भीतर विवाह कर्म संपन्न करने की बात कर रहे हैं। पहले ही वचन देने के कारण बाबा अंकल के प्रस्ताव को नहीं नकार पाए। माँ-बापू ने कल कहा-"मीरा बिटिया की कुंडली ही ऐसी है। विवाह करवा ही देते हैं। दोनों की आपस में जान पहचान है और फिर अजय के पास नौकरी तो है ही। वो पालन-पोषण भी कर ही लेगा।" देखो न..... उस दिन से मुझे अच्छी तरह से नींद ही नहीं आयी। एक तरफ तुम्हारे और मेरे बीच के गहरे प्रेम के बारे में सोचता हूँ तो दूसरी तरफ बाबा की प्रतीज्ञा। 'सविता! मैं तो तुम्हारे बिना जी नहीं पाऊँगा। बाबा का मन रखने के लिए यदि मीरा के साथ विवाह करता हूँ तो विवाह के बाद मैं अपना जीवन समाप्त कर दूँगा। विवाह के पहले भी ऐसा हो सकता है.....।

'चुप रहिए'

इतनी छोटी सी बात को लेकर जीवन समाप्त करने की बात करते हैं.....?'

"मैं लाचार हूँ ना... अभी तुम्हें भगाकर ले जाऊँ तो तुम्हारी और आगे पढ़ने की इच्छा को कैसे मार दूँ? फिर तुम्हारे माँ-बाप से बात कर तुम्हें इज्जत के साथ घर लाने की इच्छा है। मैं बड़ी दुविधा में पड़ गया हूँ। एक तरफ प्रेम की हत्या होगी और दूसरी तरफ आदेश का उल्लंघन....।

बहुत देर तक आँसू बहाकर एक दूसरे को समझाने की प्रक्रिया चलती रही उसके बाद इस बारे में दोनों ने माया दीदी से सलाह लेने का निश्चय किया। वहाँ से दोनों अपने-अपने रास्ते लौट गये। बातों का सिलसिला अभी खत्म भी नहीं हुआ था कि सविता के घर पहुँचने पर माया दीदी पहले से आकर माँ के साथ रसोई घर में जाकर खर्साङ बाजार में लगे 'मीना' मेला के बारे में जानकारी दे रही थी।

सविता को देखकर माया दीदी उसके कमरे में आकर बोली-'क्या हुआ आज! सीता-राम के बीच झगड़ा हुआ है क्या? मुझे तो तुम दोनों की जोड़ी सीता-राम की जोड़ी जैसी लगती है। प्रश्न अभी समाप्त भी न हुए थे कि माया दीदी उनके बीच आ गई। दुविधा की स्थिति के बारे में जानकारी देने के बाद दीदी ने फोन द्वारा अजय के माँ-बाप के साथ सभी बातों को स्पष्ट रूप में बताने की सलाह दी। साथ ही सच्ची बातें बताने पर माँ-बाप के राजी होने पर मंदिर में जाकर विवाह करने को कहा। दीदी के इस सुझाव से पल भर को सविता चकित रह जाती है। इस बीच में माया दीदी ने माँ-बाप के दबाव में पड़कर विवाह करने वाले जिन्दगी भर पश्चाताप करते हैं और जीवन में बहुत दुःख झेलते हुए लोगों का दृष्टांत देती है।

अभी ही अठारह वसन्त पार करने वाली, सुख में पली बढ़ी, जीवन के आरोह-अवरोह से अनभिज्ञ सविता को माया दीदी की बातें एक प्रकार से उपयुक्त लगने लगी। इस बारे में माँ-बाप के साथ चर्चा करके कल फोन में परिणाम बताने का परामर्श देकर माया दीदी अपने घर की ओर लौट गई। सविता रात भर बेचैन और छटपटाती रही। "अजय के माँ-बाप ने क्या कहा होगा, दोनों पक्ष के बीच तर्क हुआ होगा" अपने भविष्य को लेकर वह सोचने लगी कि उसका भविष्य किस ओर और कैसा मोड़ लेगा? इस तरह की बातें सोचते-सोचते सवेरा हो जाता है। दिनचर्या में व्यस्त रहते हुए ठीक बारह बजे माया दीदी आ पहुँचती हैं।

उससे दस मिनट के बाद सविता का मोबाइल बजता है। अजय ने सविता और माया दीदी को माँ-बाप का उत्तर नकारात्मक होने की जानकारी दी। विवाह के लिए अब एक सप्ताह मात्र समय रहने के कारण अंत में अजय और सविता भागकर विवाह करने की सलाह करते हैं।

अजय सविता को विवाह के बाद भी कॉलेज पढ़ाने, तीन-चार दिन के बाद डाउहिल लौटने, माँ-बाप के साथ मिलाने का आश्वासन देने के बाद सविता भी राजी हो जाती है। इस प्रकार वहाँ से चार दिन बाद गुरूवार को मुम्बई जाना तय हुआ।

बुधवार सवेरे उठकर सविता नहाती धोती है। अगले दिन घर से निकलकर तीन-चार दिन में लौटने का सलाह-मशवरा होने पर बैग लेते समय शंका उत्पन्न होने की बात ध्यान में रखकर एक बड़े से प्लास्टिक के थैली (झोला) में एक-दो जोड़ी कपड़े और आवश्यक सामान को डालती है। मन में एक प्रकार की खटास थी। माता-पिता से एक बार भी न पूछकर इतना बड़ा निर्णय लिया था उसने। दिन भर इधर-उधर काम करती रही पर आज काम काज में उसकी रूचि नहीं जग रही थी। टी.वी भी खोलकर उसने बंद कर दिया। माँ के साथ अपने परीक्षा परिणाम के बारे में काफी देर तक बातें करती रही। बगल के घर में जाकर साथियों के साथ भी बातें की परन्तु उस निर्णय के बारे में किसी से कुछ भी नहीं कहा।

किसी भी तरह दिन तो बीता, रात बिताना काफी मुश्किल रहा। सवेरे जल्दी उठकर माता-पिता को चाय दिया। घर की साफ सफाई की। लगभग आठ बजे ऊपर के घर जाने का बहाना लेकर अंतिम तैयारी करने के बारे में जानकारी लेने माया दीदी भी आ पहुँची। उनको देखने के बाद सविता ने अपने भीतरी मन में हुए घबराहट के बारे में अपनी भावना व्यक्त की।

'कुछ भी नहीं होगा बहन! अजय अच्छा लड़का है। इधर माँ-बाप को मैं सांत्वना देती रहूँगी। जल्दी ही तो लौटना है। मीरा के साथ अजय का विवाह रोकने के लिए मात्र ऐसा कदम उठाना पड़ रहा है। यह बात तो तुम्हें मालूम तो है।"

माया दीदी के इस तरह के आश्वासन से उसे बहुत हल्का अनुभव हुआ।

'बहन! बताना ही भूल गई। अजय ने आज सवेरे फोन किया था। उसको अचानक जरूरी काम से खर्साङ बाजार जाना पड़ गया। तुम्हें उसका दोस्त धीरज आकर ले जाएगा...। हवाई जहाज का टिकट कट जाने के कारण तुम लोग आगे जा सकते हो और काम खत्म करके ही दूसरी फ्लाइट से अजय भी आ जाएगा।

अभी माया दीदी ने अपनी बात खत्म भी नही की थी कि अजय का फोन आता है... "सविता! मुझे माफ़ कर देना। देखो न कार्यालय का आवश्यक काम पड़ जाने के कारण मुझे आने में एक दो घंटे विलंब हो जाएगा। तुम चिंता मत करो। धीरज के साथ चली जाना.. मैं पीछे आ जाऊँगा। वहाँ मैंने रहने के लिए घर का भी बंदोबस्त किया हुआ है।"

अजय ने धीरज से उसका परिचय एक दिन करवाया था इसलिए उसे उसके साथ जाने में कोई असहज अनुभव नहीं हुआ और वह जाने केलिए राजी हो गई। माँ को उसने यह कहकर कि उसके साथी ने बुलाया है और जल्दी ही आने की बात कहकर घर से चल पड़ी। खर्साङ बाजार के मोटर स्टैंड पहुँचने पर देखा कि धीरज पहले से ही पहुँचकर वाहन रिजर्व करके उसका इंतजार कर रहा था।

इस तरह रास्ते में खाने के लिए कुछ सामान खरीदकर वह वाहन के भीतर बैठ गई। वाहन धीरे से पंखाबारी के रास्ते होकर सिलीगुड़ी की तरफ चल पड़ा।

इधर माया दीदी वहाँ से जल्दी-जल्दी घर लौटकर अजय के साथ फोन में बात कर रही थी-'बधाई हो अजय! अब दूसरा नम्बर लिखो तो। ये लैंडलाइन का नहीं मोबाइल का नम्बर है-74041-420-11!!' परंतु इसमें मेरा हिसाब थोड़ा अधिक होना चाहिए। माल तगड़ा है ना...!'

अजय ने तुरंत उस नम्बर को डायल किया और कहने लगा-

'हैल्लो ss ये कहाँ का नंबर है?

'हैल्लो ये किसका नम्बर है...?

*(**लेखकीय परिचय:** उषा शर्मा सिक्किम की चर्चित कहानीकार हैं। वर्तमान में आकाशवाणी गंगटोक में समाचार उद्घोषिका (नेपाली) पद पर कार्यरत हैं।)*

***

सुलह

रीता सिंह

घड़ी पर नजरें दौड़ाई तो मैं चौक गई। शाम के 5:00 बज रहे थे। मुझे ध्यान आया आज सुरुचि और प्रशांत के साथ मेरा बाहर जाने का प्रोग्राम था। कितनी मुश्किल से यह प्रोग्राम बना था। मैं तुरंत उठ खड़ी हुई और लगभग दौड़ते हुए दफ्तर से निकल पड़ी। लपकते हुए मैं सिटी बस पर चढ़ गई। चांदमारी से गणेशगुड़ी तक पहुंचने के दरम्यान अनेकों कल्पना में खोई रही। आंखों के सामने महाविद्यालय की वह हसीन जोड़ी सुरुचि और प्रशांत की खिलखिलाहटें कानों में गूंजने लगी। सुरुचि तब बीएससी प्रथम वर्ष की छात्रा थी और प्रशांत बीए अंतिम वर्ष का छात्र। दोनों की दोस्ती अजीबोगरीब परिस्थिति में हुई थी। सुरुचि लाइब्रेरी से सीढ़ियाँ पार करती हुई नीचे आ रही थी कि अचानक उसका पांव फिसल गया। नीचे से आते प्रशांत ने उसे न थामा होता तो न जाने क्या हो जाता। इस हादसे के दौरान दोनों एक दूसरे के करीब आ जाते हैं। "गणेशगुड़ी-गणेशगुड़ी नामा आसे" (कोई उतरेगा) कंडक्टर की आवाज से मेरी तंद्रा भंग हो गयी। मैं उतर कर जल्दी-जल्दी पग भरती हुई सुरुचि-प्रशांत के घर की तरफ आगे बढ़ने लगी। दरवाजा खुला था। मैं घर के अंदर प्रविष्ट हुई। कुछ अजीब सा लगा मुझे। सुरुचि और प्रशांत के चेहरे से ऐसा प्रतीत हो रहा था कि दोनों में लड़ाई हुई हो। मुझे देख सुरुचि सामान्य होने का नाटक करने लगी।

"तुम दोनों अभी तक तैयार नहीं हुए?"

"मैं तो तैयार हूं पर सरु का अभी तक हुआ नहीं है," प्रशांत ने कहा।

"तो तुम्हें कुछ मदद कर देनी चाहिए आखिर वह तुम्हारी अर्धांगिनी है।" मैने मजाक करते हुए कहा।

"कोई जरूरत नहीं।"

सुरुचि ने गुस्से भरे लहजे में कहा।

"देख रही हो श्वेता उसे मदद की क्या जरूरत?" प्रशांत ने बुरा सा मुंह बनाते हुए कहा।

"तुम लोग जाओ" अचानक सुरुचि मेकअप बॉक्स को ड्रायर में रखते हुए बोली।

यह क्या कह रही हो सरु ? तुम्हारे बिना हम क्यों जाएंगे। हमारी सुरुचि तो ऐसी न थी।"

"बन रही है।" प्रशांत ने व्यंग्य बाण छोड़ा।

"नहीं प्रशांत तुम्हें ऐसा नहीं कहना चाहिए।" दोनों की फोटो देखकर मैं फिर खो गई अतीत की ओर....।

सुरुचि और प्रशांत धीरे- धीरे एक दूसरे को चाहने लगे थे। पढ़ाई के साथ-साथ दोनों का प्यार भी प्रगाढ़ होता गया। साइंस की छात्रा होने के बावजूद सुरुचि कला में रुचि रखती थी। उसके द्वारा बनायी गयी पेंटिंग कितनी जीवंत लगती थी, साथ ही वह कथक नृत्य में भी निपुण थी।

और प्रशांत !

महाविद्यालय में उससे अच्छी कविता भला कौन लिख सकता था। साहित्य का छात्र होने के कारण वह साहित्य में काफी रुचि रखता था। कई कविताएं गुवाहाटी से निकलने वाले दैनिक समाचार पत्रों में प्रकाशित हो चुकी थीं।

"क्या सोचने लगी श्वेता?" प्रशांत की आवाज़ ने मुझे चौका दिया।

"कुछ नहीं।"

"सुरुचि तैयार हो चुकी है तो चलें?" मैंने कहा।

"बिल्कुल। "प्रशांत ने कहा।

सुरुचि का मूड अब भी ऑफ था। हम तीनों ऑटो रिक्शा द्वारा श्याम मंदिर की ओर चल पड़े। क्योंकि मैंने ही स्थान चुना था। भीड़भाड़ से दूर श्याम मंदिर पहाड़ के टिले पर अवस्थित है जब हम वहां पहुंचे शांत व शीतल परिवेश ने हमारा स्वागत किया। मंद-मंद हवाएं वातावरण में डोल रही थी।

भगवान के सामने माथा टेक कर हम पार्क में आकर बैठ गए। प्रशांत दूसरी छोर पर बैठे प्रकृति के मनोरम दृश्य का आनंद लेने लगा तो मैंने सुरुचि से पूछा।

"क्या बात है सरु? तुम सचमुच बहुत गुस्से में हो।'

"मैं और प्रशांत के साथ नहीं रह सकती। जैसे ज्वालामुखी फट पड़ी।

"क्यों ऐसी क्या बात हो गयी है सरु?" मैंने धीरे से पूछा।

"वह कभी भी मुझे कुछ भी नहीं बताता। कॉलेज से आकर अक्सर घंटो बाहर रहता है। हो सकता है काम से गया हो फिर भी बता कर जाना चाहिए। मैं तो नहीं रोकूंगी न उसे...। तुम्हारे आने से पहले इसी बात को लेकर हमारी झड़प हो रही थी।

"बस इतनी सी बात के लिए चिढ़ी हो। "मैंने समझाने वाले लहजे में उससे कहा- "सरु जिंदगी से तू इतनी जल्दी घबरा गयी। कुछ तो दोनों को अंडरस्टैंड करना होगा।"

"मैं ही सिर्फ क्यों करूं? वह तो कभी नहीं करता। गुस्से में ही वह बोली। मुझे समझते देर न लगी कि दोनों में मिस अंडरस्टैंडिंग हुई है। अत: मैंने उससे कहा- "क्योंकि तुम उसकी धर्मपत्नी हो। घर-संसार की बागडोर तुम्हारे हाथ में है। वैसे भी तुम तो एक अच्छी कलाकार हो। तुम्हें इतना संकीर्ण नहीं होना चाहिए। अपने बचे समय में पेंटिंग में और जान डालो, तुम्हें अच्छा लगेगा।

"संकीर्ण मैं नहीं हालात ने मुझे बनाया है। क्या कभी प्रशांत को इसकी परवाह है? उल्टा समझाते हुए वह मुझसे कहने लगी। कला तो आखिर कला है चाहे पेंटिंग हो या लेखन।"

"एक्जेक्टली"

"प्रशांत कभी मुझे समझने की कोशिश नहीं करता। जुड़े तो हम दोनों कला से ही हैं मगर कभी कोई आग्रह नहीं दिखाता वह। पता नहीं किस मिट्टी से बना है।"

"तुम मुझे गलत मत समझना मैं यही बात तुमसे पूछना चाहती हूं कि-" क्या तुमने कभी प्रशांत की रुचि में दिलचस्पी ली है?"

"क्या मतलब?"

"हो सकता है कि वह भी तुमसे यही उम्मीद रखता हो। कॉलेज के दिनों में वह बहुत कविताएं लिखता था न! तुम उसकी प्रेरणा बन सकती हो। उसकी कलम में जादू भर सकती हो।" देखना फिर कैसे वह तुम्हारे नजदीक आएगा। वही पहले जैसा प्रशांत। कभी-कभी छोटी-छोटी बातों को भी छोड़ना होगा।"

सुरुचि चुप थी। शायद उसे बात समझ में आ गई थी। आसमान पर काले बादल के झुंड तैरने लगे थे। मैंने इशारा किया प्रशांत को। वह हमारी तरफ ही निहार रहा था।

"चलें?" करीब आते प्रशांत से मैंने पूछा।

"समय कह रहा है चलना चाहिए। "उसने सुरुचि की तरफ देखते हुए कहा।

सरु अब भी चुप थी। हम तीनों ऑटो से लौट रहे थे। तीनों चुप थे। सिर्फ ऑटो की आवाज सुनाई पड़ रही थी। और मैं पहले की स्मृति में फिर से खो गयी।

प्रशांत ने एम .ए, एम. फिल. करने के बाद स्थानीय कॉलेज में लेक्चरर के रूप में नौकरी ज्वाइन कर ली थी। उसका सपना साकार हुआ वह बहुत खुश था। उसने फैसला किया कि वह अब सुरुचि से शादी करेगा। सुरुचि भी बहुत खुश थी क्योंकि उसे मनपसंद साथी जो मिला था। शानदार ढंग से दोनों की शादी हो गयी। पर मैं एक जरूरी काम से बाहर गयी थी, इसलिए शादी में शरीक ही नहीं हो पायी थी। अरसे बाद एक

दिन दफ़्तर में सुरुचि का फोन आया। बता रही थी कि उसकी भी गुवाहाटी के किसी स्कूल में नौकरी लगी है। प्रशांत भी यहीं के स्थानीय कॉलेज में ट्रांसफर होकर आ गया है।

मैंने कहा – "अच्छा ही हुआ काफी दिनों से तीनों मिले नहीं थे। तो आज का प्रोग्राम बना था।

"उतरना नहीं है क्या?" सुरुचि का स्वर मुझे वर्तमान में खींच लाया। गणेशगुड़ी आ गया था। हम उतरकर तीनों घर पहुंचे। सुरुचि किचन की ओर चली गयी। मौका पाते ही मैंने प्रशांत से बात शुरू की। "यह सरु कैसे इतनी बदल गयी।"

"बनती है। हमेशा कुछ ना कुछ तर्क लेकर बैठ जाती है।"

"अच्छा एक बात बताओ प्रशांत क्या तुमने कभी उसकी रुचि में ध्यान दिया है?"

"इसकी जरूरत मैंने नहीं समझी।"

"इसी बात का तो रोना है।"

"क्या मतलब?"

देखो वह तुम्हारी अर्धांगिनी है। तुम एक दूसरे के पूरक हो। क्या तुम्हें उसकी रूचि का ख्याल रखना नहीं चाहिए?" वह कुछ नहीं बोला।

"तुम्हें अच्छी तरह पता है कि वह पेंटिंग में कितनी दिलचस्पी रखती है। क्या कभी तुमने उसका हौसला बढ़ाया है? कभी-कभी दूसरों का ख़याल रखना चाहिए।" मैं कहती रही और प्रशांत चुपचाप बैठे शून्य में निहारता रहा। सुरुचि चाय और गरमा-गरम समोसे लेकर ड्राइंग रूम में आ गयी।

"वाह समोसे।" मैने झट से एक समोसा उठा लिया। मुझे महाविद्यालय का वह दिन याद आ गया। हम कुछ लड़कियां सुरुचि और प्रशांत की मुलाकात का एक समोसा लिया करते थे। वह दिन सच में कितना सुहाना था। आसमान पर काले बादल छा गए थे। दोनों से विदा लेकर मैं लौट पड़ी।

एक महीने बाद एक दिन अचानक मेरे दफ्तर में सुरुचि का फोन आया। उसने कल लंच पर आने का न्योता दिया। मेरे लाख पूछने पर उसने नहीं बताया कि यह अचानक प्रोग्राम कैसा? वह सिर्फ खिलखिला कर हंस कर कहने लगी- "कल आना तुम्हें खुद-ब-खुद पता चल जाएगा।" मैं सोच में पड़ गयी।

"क्या बात हो सकती है?" महीने भर पहले वह कितनी बदली-बदली सी लगी थी। मगर आज फिर पहले जैसी सुरुचि कैसे हो गई। जो भी हो कल इतवार है। छुट्टी का दिन, कल पता चल जाएगा। मन को आश्वस्त किया मैंने।

दूसरे दिन जैसे ही मैंने उनके घर में प्रवेश किया। दोनों ने बड़े गर्मजोशी से मेरा स्वागत किया। बड़े खुश नजर आ रहे थे दोनों।

"क्या बात है?" सोफे पर बैठते हुए मैंने पूछा।

"हम दोनों तुम्हारे प्रति बहुत शुक्रगुजार हैं। सुरुचि ने कहा।

"किस बात के लिए?" विस्मय सूचक निगाहों से मैने पूछा।

सुरुचि कहने लगी- "उस दिन यदि तुमने न समझाया होता तो हम कभी एक दूसरे के करीब न होते। जानती हो प्रशांत ने मेरी पेंटिंग की प्रदर्शनी के लिए काफी दौड़-धूप की तथा मेरा हौसला बढ़ाया। एक-एक पेंटिंग पूरी करने में काफी मदद की।"

"और तुमने मेरी मरी हुई भावनाओं को कलम के द्वारा जीवंत कराया।" प्रशांत ने बीच में ही बात करते हुए कहा।

मैं दोनों की बात चुपचाप सुनती रही। दोनों में गजब का तालमेल हो गया था। डायनिंग टेबल पर तीनों बैठकर खाना खा रहे थे। पर मैं एक ही बात सोच रही थी कि मेरे समझाने का असर इतनी जल्दी होगा मैंने सोचा ही न था।

*(**लेखकीय परिचय:** रीता सिंह चर्चित कहानीकार हैं। वर्तमान में पूर्वोत्तर हिंदी अकादमी, असम की अध्यक्ष हैं।)*

***

अदहन में उबलती स्त्री का सच है 'मिनाम'

डॉ. महेश सिंह

पूर्वोत्तर भारत को लेकर हमारी अपनी बनी बनायी कई प्रकार की धारणाएं और मिथ हैं। खासकर वहाँ के आदिवासी समुदाय के संबंध में आम धारणा है कि-'स्त्री और पुरुष दोनों को सामाजिक रूप से समान अधिकार प्राप्त है, और पुरुषों की तुलना में स्त्रियाँ अधिक स्वतंत्र जीवन जीती हैं। लेकिन मोर्जुम लोई का हिंदी में लिखा उपन्यास 'मिनाम' पढ़ने के बाद इन सभी धारणाओं और मिथों पर पुनर्विचार करने की आवश्यकता महसूस होती है। मोर्जुम लोई अरुणाचल प्रदेश के गालो आदिवासी समुदाय से आती हैं। मोर्जुम ने अपने इस उपन्यास में थेरी-गाथाओं की तरह वहाँ के गालो समुदाय की स्त्रियों की दारुण-कथा को प्रस्तुत किया है। सात बहनें और एक भाई का प्रदेश कहे जाने वाले पूर्वोत्तर भारत के राज्यों के बारे में यह कहा जाता है कि वहाँ मातृसत्तात्मक समुदाय है, जबकि इस उपन्यास से पता चलता है कि उस क्षेत्र में भी पितृसत्तात्मक व्यवस्था का वर्चस्व है।

अरुणाचल प्रदेश के लोगों के जीवन यापन का मुख्य आधार कृषि है। यह प्रदेश बहुभाषिक और आदिवासी बहुल राज्य है। इस प्रदेश में जनजातियों की संख्या सर्वाधिक होने के कारण इनकी संस्कृति, जीवन-शैली, भाषा-बोली, रहन-सहन, खान-पान, वेश-भूषा, रंग-ढंग आदि में विविधता का होना सामान्य बात है। अपनी जीवंत-प्रकृति के कारण अरुणाचल के लोक-साहित्य विशेषकर लोकगाथाओं, लोक-गीतों और कथा-साहित्यों आदि का काफी महत्त्व है। कहा जाता है –"अरुणाचली लोक-साहित्य में व्यक्त जीवन-दृष्टि तथा उनमें अनुस्यूत परम्परा-बोध का अभिज्ञान सहज ही हो जाता है। संभाव्य चेतना से संयुक्त अनगिनत अभिदृष्टियाँ भी अरुणाचली जनसमाज इन्हीं से प्राप्त करता रहा है। दरअसल, अरुणाचल का साहित्य इतना समृद्ध और ऊर्जावान है कि वह सदैव अपने जनजातीय समुदाय को लोक-जीवन, नैतिक-मूल्य तथा मूल अस्मिता से जोड़े रखता है।"[1]

मोर्जुम लोयी का उपन्यास 'मिनाम' दो भागों में विभक्त है। पहले भाग में एक आदिवासी लड़की यामी की कथा है। जिसमें लेखिका ने न सिर्फ उसकी कथा कही है, बल्कि कथा के बहाने अरुणाचली लोक-अंचल का विस्तार से परिचय भी कराया है। उपन्यास की शुरुआत अरुणाचल और उसके गाँव-जिले के परिचय से होता है; जिसमें वहाँ की भाषा, वहाँ रहने वाले लोग और समुदाय, उनकी कला-संस्कृति, लोक कथाएँ और लोक गीतों का ज़िक्र है। यामी एक गरीब घर की लड़की है उसके गाँव का नाम मोदी ग्राम है। लेकिन वह ईटानगर में पढ़ती है। कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने के बाद वह अपने गाँव जाती है और पढ़ाई करके सीखे हुए को अपने गाँव में लागू करने लगती है। वह गाँव की दशा देखकर उसे ठीक करने का प्रण करती है। वह गाँव के बंद पड़े स्कूल में बच्चों को इकट्ठा करके पढ़ाने लगती है। महिलाओं को साफ़-सफाई सिखाने

और जागरुक करने हेतु जोश-खरोश से जुट जाती है। उसी में गाँव के सबसे प्रभावशाली परिवार का लड़का तातुम भी पढ़ने आता है। एक दिन तातुम शराब पीकर आता है इस पर यामी उसे डांट लगाती है। इस पर वह नाराज होकर अपने पिता के पास जाता है और कहता है- "आबो, हम नाई पोरेगा... हम शादी करेगा... उस मैडम से ही शादी करेगा। उसने मुझे सबके सामने इंसल्ट किया... मिथुन काटो।" (मिनाम उपन्यास से उद्धृत) इस तरह यामी की शादी उसकी इच्छा के विरुद्ध तातुम कर दी जाती है। इस प्रकार शुरू होता है उसके उत्पीड़न का अनंत सिलसिला, जिसका अंत उसकी मृत्यु के साथ होता है। यामी की दो बेटियां हैं-यापी और याजुम। दोनों ही यामी की तरह प्रतिभाशाली हैं। किसी तरह वे कॉलेज की पढ़ाई पूरी करने के बाद आगे की पढ़ाई के लिए दिल्ली चली जाती हैं। वहीं पर इनकी मुलाकात मिनाम से होती है। मिनाम उन्हें अपनी डायरी देती है- उपन्यास में मिनाम की कथा इसी डायरी के आधार पर है।

उपन्यास के इस भाग में लेखिका ने बड़ी कुशलतापूर्वक यामी की कथा कहते हुए ईटानगर से मोदी ग्राम तक की राजनैतिक, सामाजिक, आर्थिक और सांस्कृतिक व्यवस्था को विस्तार से बताया है। इसमें गालो जनजाति के बच्चों के नामकरण की पद्धति बड़ी रोचक है। गालो जनजाति में एक पीढ़ी के व्यक्ति के नाम के अंतिम अक्षर से अगली पीढ़ी के बच्चों का नाम रखा जाता है। जैसे- तानी-नीतो-तोपो-पोजोम आदि। इसके अलावा इस उपन्यास में गालो जनजाति के तीज-त्योहारों, रीति-रिवाजों का भी विस्तार से परिचय दिया गया है। यहाँ लेखिका की तारीफ की जानी चाहिए की तमाम ऐतिहासिक और सांस्कृतिक विवरण देने के बावजूद यामी की कथा की गति और रोचकता में कहीं ठहराव नहीं आता।

मिनाम की कथा भी यामी की कथा जैसी ही है। अंतर सिर्फ इतना है कि यामी यातना सहते-सहते मर जाती है और मिनाम विद्रोह करते हुए अपने सही मुकाम तक पहुँचती है। मिनाम के पास निर्णय लेने की क्षमता है वह अपने पति के अत्याचारों से तंग आकर न सिर्फ उसे तलाक देती है बल्कि बाद में वह एक गैर आदिवासी से शादी भी करती है। शिक्षा को वह अपना हथियार बनाकर पितृसत्तात्मक समाज की क्रूरता के खिलाफ़ संघर्ष करते हुए पहले वह एक स्कूल शिक्षिका बनती है फिर बाद कॉलेज में प्रोफेसर। मिनाम का जीवन संघर्ष केवल मिनाम का ही नहीं है बल्कि उस समुदाय में दारुण दशा में जीवन जीने वाली हर एक स्त्री का संघर्ष है। मिनाम अपनी डायरी के माध्यम से कहती है- "मैं जहाँ भी जाती हूँ या मुझ जैसे लोग जहाँ भी जाते हैं हमारी कहानी हमसे आगे-आगे जाती है। जो हमारी जिंदगी के सत्य से परे लोगों की सोच और राय पर निर्भर एक कहानी होती है जहाँ हम शोषित महिला न होकर कलंकिनी, पापिन होती हैं.. "(मिनाम उपन्यास से उद्धृत)

मिनाम लोगों के ताने सुन-सुनकर जब तंग आ जाती है तो वह खीझकर उनको जवाब देती है- "हाँ-हाँ-हाँ ! मैं तलाकशुदा हूँ... हाँ मेरी एक बेटी भी है... तो इसमें मेरी क्या गलती है ? तंग आ गई हूँ आप सबके शब्द बाणों से, सबके अमानवीय बर्ताव से, आप सबकी उपेक्षाओं, अवहेलनाओं से, नफ़रत से, अछूत जैसे व्यवहार से, आप सब मुझसे ऐसे पेश आ रहे हैं जैसे मैं कोई शातिर अपराधी हूँ। क्या यह मेरी गलती है ? मैंने अपना गलत जीवन-साथी चुना। तो क्या यह मेरी गलती थी जो मैंने अपनी पढ़ाई छोड़कर उसे पढ़ने के लिए

भेजा ? क्या यह भी मेरी गलती थी कि मेरा पति दूसरी लड़कियों के पीछे पड़ा रहता था। क्या यह मेरी गलती थी कि जो उसने भाई-बहन जैसे पवित्र रिश्ते को कलंकित किया ? क्या यह भी मेरी गलती थी जो उसने देवर-भाभी के रिश्ते को अपवित्र कर दिया। क्या यह मेरी गलती थी जो वह रोज बिना कारण मेरी पिटाई करता था ?"(मिनाम उपन्यास से उद्धृत)

भारतीय समाज के किसी भी समुदाय में स्त्रियों के प्रति यह आम धारणा है कि स्त्रियों में सहनशीलता, त्याग और समर्पण की भावना होनी चाहिए। इस संदर्भ में मिनाम का यह सवाल पूरी आधी आबादी का सवाल बन जाता है- "तुम कुर्बानी-कुर्बानी कहते हो, मुझसे पूछो, प्यार में कुर्बानी देना क्या होता है ! तुम समर्पण-समर्पण करते हो, मुझसे पूछो प्यार में समर्पित होना क्या होता है ! तुम दर्द-दर्द कहते हो, मुझसे पूछो बिना किसी गलती के पिटने का दर्द क्या होता है ! तुम पीड़ा-पीड़ा करते हो, मुझसे पूछो- मार, धोखा, गरीबी, भूख की असली पीड़ा किसे कहते हैं ! ऐसा कोई दर्द, ऐसी कोई तकलीफ़ नहीं जो मैंने न देखी हो... मार मैंने खायी जुल्म मुझ पर हुआ, धोखा मैंने खाया... फिर भी समाज की नज़रों में मैं क्यों गलत हूँ ? गलत तो मैं तब भी नहीं थी जब लड़की पैदा हुई थी... सच कहा जाए तो मेरी जिंदगी में दुखों का सिलसिला मेरे बचपन में ही शुरू हो गया था... पता नहीं क्यों ? मैं अब भी नहीं समझ पा रही हूँ कि मेरे परिवार में मेरी क्या हैसियत थी... क्या मुझे वो सब प्यार मिला जो मुझे मिलना चाहिए ? इस सवाल का जवाब बहुत मुश्किल है।"(मिनाम उपन्यास से उद्धृत)

आगे का यह अंश उपरोक्त वक्तव्य का ही पूरक है –"आज मैं सोचती हूँ काश ! जिंदगी एक किताब होती! तो मैं उन पन्नों को फाड़ डालती जिसमें मेरी नासमझी, पागलपन, भय, पीड़ा, वेदना आदि सभी निराशाजनक घटना-क्रम वर्णित हैं। काश! मैं पैदा नहीं हुई होती! काश! मुझे अच्छी परिवरिश मिली होती! काश! मेरा तलाक न हुआ होता! पर यह जिंदगी है, कोई पुस्तक नहीं... हाँ, मैं एक विषय जरूर हूँ।" (मिनाम उपन्यास से उद्धृत)

तलाक के बाद मिनाम जब एक गैर- आदिवासी से शादी करती है तब भी उसका समुदाय एतराज करता है। उत्तर-पूर्व में आज भी बहु-विवाह प्रचलन में है और सबसे दु:खद बात यह है कि केवल समृद्ध लोग ही नहीं बल्कि शिक्षित लोग भी दूसरी शादी कर लेते हैं। कई तो ऐसे भी जो अपनी पत्नी की कमाई से अपनी पढ़ाई पूरी करके नौकरी पाते हैं। लैंगिक भेद और एक हद तक बाल विवाह के चलन के साथ ऐसे भी परिवार हैं, जहाँ स्त्रियों को एकाधिक पुरुषों से संबंध रखने होते हैं। इस तरह इस उपन्यास में स्त्रियों से जुड़ी ऐसी अनेक जटिल और त्रासद परिघटनाओं के प्रसंग हैं, जो उनके परस्पर संबंधों को भी विषैला बना देते हैं। अपने आपमें यह व्यथा किसी भी स्त्री के लिए अदहन में उबलने जैसा है।

बहरहाल, उपन्यास का अंत सुखात्मक है। यामी की दोनों बेटियां एक कलक्टर और एक डॉक्टर बनकर वापस लौटती हैं और मोदी ग्राम में यामी के सपनों को पूरा करने के लिए उसकी याद में उसकी मूर्ति की स्थापना करती हैं। तातुम अपनी गल्तियों पर शर्मिंदा है। वह अपनी बेटियों को देखने तक के लिए अपनी

नजरें नहीं उठा पाता, लेकिन उसकी बेटियां जब सभा के मंच से यह ऐलान करते कहती हैं- "आज मैं आप सभी के समक्ष अपने पिता से कहना चाहती हूँ 'आबो, हम भी आपसे बहुत प्यार करते हैं।' तब तातुम की आँखों से आँसू की जलधारा फूट पड़ती है।

निष्कर्षतः यह उपन्यास विश्वसनीय और स्वाभाविक तरीके से यामी और मिनाम का ही नहीं, बल्कि अनेक संघर्षशील स्त्रियों के उदात्त और प्रेरक चरित्र को उद्घाटित करता है। इसमें आदिवासी जीवन के प्रकृति से साहचर्य, उनकी जिजीविषा तथा कला-संस्कृति का इतना विवरण है कि वह सब हमारे समक्ष जीवंत हो उठता है। उपन्यास की सफलता इस मायने में भी है कि आदिवासी समुदाय का पितृसत्तात्मक चेहरा कितना क्रूर और अमर्यादित है। अपने समुदाय की कमियों को साफ़गोई से प्रस्तुत करना, किसी भी लेखक के लिए साहस का काम है। लेखिका ने अपने इस कर्तव्य का निर्वहन बहुत ही शिद्दत और ईमानदारीपूर्वक किया है। जिस तरह से लोक-कथाओं और लोक गीतों को कथानक के साथ उन्होंने पिरोया है, वह काबिल-ए-तारीफ़ है। कुछ अनगढ़ता और संरचनात्मक सीमाओं के बावजूद कथा का स्वतः स्फूर्त प्रवाह और भावना पगी भाषा, रचना की ताकत है।

सहायक ग्रंथ सूची :

[1]https://issbaar.blogspot.com/2018/08/blog-post_24.html

[2]लोयी, मोर्जुम (2021) *मिनाम*. नई दिल्ली: बोधि प्रकाशन.

*(**लेखकीय परिचय:** समीक्षक डॉ. महेश सिंह परिवर्तन पत्रिका के संपादक हैं, वर्तमान में झारखंड राज्य में अध्यापन कार्य से संबद्ध हैं।)*

***

Photo: Madhurjya Sarma